रक्त-गुलाल

रक्त-गुलाल

पन्नालाल पटेल

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
(स्वत्वाधिकारी : के० एल० मलिक ऐंड संस प्रा० लि०)
२३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२

शाखाएं
३४, नेताजी सुभाष मार्ग, इलाहाबाद-३
चौड़ा रास्ता, जयपुर

अनुवादक
रमण लाल जैन

मूल्य : ३८.००

स्वत्वाधिकारी के० एल० मलिक ऐंड संस प्रा० लि० के लिए नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२३ दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२ द्वारा प्रकाशित / प्रथम संस्करण १९८०
 / सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली-११००५३ में मुद्रित

दिव्य मां के चरणों में

कार्यालय में बैठे-बैठे,
सचिव के संग 'चौपड़े' देखते-देखते,
बोल पड़े सहसा यों चित्रगुप्त :
'अरे ! पन्नालाल का जीवन-खाता तो,
सन् सैंतालीस मे ही समाप्त होना था,
और तुमने तो यहां अपनी लंबी कलम से,
आयु की लकीर को बढाते-बढाते,
पैंतीस से उठाकर भला,
आने वाले कल को साठ तक पहुंचा दिया है !
फिर से जरा देखो हिसाब को,
उसका जन्म उन्नीस सौ बारह में हुआ था न···?

विनयपूर्वक बीच मे रोककर,
सचिव कहता है :
"बेचारे यमदूत तो सन् सैंतालीस में ही,
डोरी-डंडा लेकर,
समय से पूर्व ही अस्पताल पहुच गए थे !
और चार पायों पर बैठकर चारों यम,
मृत्यु-पास लिए हुए,
पन्नालाल की अंतिम सांस गिन रहे थे;
लेकिन क्या करें प्रभु ?
सर्वोच्च लोक में आशीर्वाद के पैगाम सहित,

आ पहुचा डाकिया तभी;
अब आप ही कहें स्वामी,
पन्नालाल की जीवन-डोरी को,
लबाए बिना छुटकारा कहा है ?"

तो ऐसी हो तुम मा महेश्वरी,
मृत्यु को दूर भगाने वाली,
और भावी कल मे मृत्यु को जीतने वाली,
अर्पण भी करूं तो क्या करूं ?
सच तो यह है मा,
कि कृतज्ञता-ज्ञापन के बहाने
मैं स्वयं ही धन्य होना चाहता हू ! ! !

समर्पण

यह अनुवाद सविनय समर्पित है, विद्यानुरागी राजमाता श्रीमती देवेंद्र कुमारी को, जिनके संपर्क में आकर जाना, कि ममतामयी मा का हृदय, राज-महल से लगाकर एक झोंपडी तक, सर्वत्र, एक-सा ही होता है···।

घुमटा बाजार
डूगरपुर (राजस्थान)

रमण लाल जैन
(अनुवादक)

गलालसिंह के पद-चिह्न

मन पर अंकित गलालसिंह का पद-चिह्न, आज मुझे चार-पाच दशक पहले के अतीतकाल मे खीच ले जाता है। तब मै, डूंगरपुर रियासत के अंतर्गत, सागवाडा में शराब-गोदाम का मैनेजर था। यह, सन् १९२६-२७ इस्वी की बात है और उस समय मेरी उम्र भी चौदह-पंद्रह वर्ष से अधिक नहीं थी।···।

सागवाड़ा मे मैं एक वर्ष तक रहा। इस दौरान मुझे जोगियो के मुख से बारंबार 'गलालेंग' सुनने का अवसर मिला। पहली बात तो यह कि जोगियों का गांव ठाकरडा सागवाड़ा के निकट ही था और दूसरी बात यह कि गोदाम का एक राजपूत सिपाही ठाकरडा का निवासी था। अत: जोगियो की टोली अक्सर उसके यहा आती रहती थी। सिपाही 'साहब' को गीत सुनाने का जोगियो को हुक्म देता और बदले मे जोगियों के मन में भी यह आशा बंधी रहती थी कि 'साहब' से सिर्फ पैसे-दो पैसे नही बल्कि इकन्नी-दुअन्नी मिल जाएगी···।

तंबूरे या रावण-हत्थे पर दो-दो गायकों की जोडी द्वारा गाई जाने वाली 'गलालेंग' की वीरगाथा सुनना मुझे बहुत प्रिय लगता था। कभी-कभी तो मै अपने कुल बारह रुपयों के वेतन मे से उन्हे चवन्नी का एक बड़ा-सा इनाम भी दे देता था।

उस वक्त मुझमें सर्जक या लेखक का तो नामोनिशान भी नहीं था। हां, इतना अवश्य है कि 'गलालेंग' का गीत मेरे अंतर्मन को कहीं छू जाता था।

इसके बाद तो सागवाडा भी छूट गया और धीरे-धीरे 'गलालेंग' को भी भूल गया। उसे इस सीमा तक भूल गया कि जोगियों के मुख से सुनी 'गलालेंग पूरबियो' अनुगूज के सिवाय, कथा की रूपरेखा अथवा उसका कोई भी प्रसंग याद नही रहा।

इस बात को बीते लगभग बारह साल गुज़र गए होगे कि सहसा मैंने पाया कि मैं जैसे एक लेखक बन गया हूं। और जब लेखक बन गया था उन्ही दिनो, उमाशकरजी के यहां, साबरकांठा के लोकगीतों में

वर्णित गलालसिंह की गाथा पुन: सुनाई दी ।

उमाशंकर तथा भूलेश्वर नामक उनके युवा-मित्र, दोनो ही कई बार तान मे आकर ललकारते थे .

तलवारो नी ताली पडे ने,
ढालडिये आभ छंवायो,
गलालसिंग रे पूरवियो !

यकायक समझ गया···सागवाडावाला गलालेंग ही यह गलालसिंह है; वह भी पूरबिया था और यह भी पूरबिया है; इसी के पद-चिह्न साबरकांठा के लोकगीतो में अंकित हैं·· ।

पर ये पद-चिह्न मिल जाने के बाद भी, मन में बैठा गलालसिंह पुन: मुह फेरकर गहरी नीद मे डूब गया ।

उस वक्त मैं नया-नया लेखक भले बन गया था, पर गलालसिंह पर ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की बात तो सोची तक नही थी ।

इसके बाद चौबीस वर्ष और बीत गए । अब मैं पक्का लेखक बन गया था । और चूकि अब लेखक बन गया था इसलिए मन में नयी पद्धति से ऐतिहासिक क्षेत्र में प्रवेश की इच्छा जगी; अथवा यह भी संभव है कि अंतर्मन में सुषुप्त गलालसिंह अब बाहर आना चाहता हो । कुछ भी हो, मुझे यों लगा कि सागवाड़ावाले 'गलालेंग' के ही चरण-चिह्न यहां साबरकांठा तक पहुंचे है; और इसलिए निश्चय ही यह इतिहास-पुरुष, ऐतिहासिक उपन्यास का पात्र बनने के योग्य है ।

पूछताछ और खोज-खबर लेने पर पता लगा कि मोडासा कॉलेज में हिंदी के प्राध्यापक श्री एल० डी० जोशी ने गलालसिंह की संपूर्ण गीत-कथा उतार रखी है । क्योकि श्री जोशी से मेरा कोई परिचय नहीं था अत: मैंने मोडासा कॉलेज के प्रिंसिपल श्री धीरु भाई से अनुरोध किया कि मैं 'गलालेंग' लोकगाथा के आधार पर एक ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की सोच रहा हूं; क्या प्रो० जोशी मुझे 'गलालेंग' देखने की अनुमति देंगे ?

धीरु भाई ने उत्तर दिया कि श्री जोशी स्वयं उसके आधार पर एक ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की सोच रहे हैं । साथ ही प्रो० जोशी ने

ने मुझे लिखा कि मै 'गुजरात-समाचार' मे 'गलालेंग' पर एक लघु-निबंध दे रहा हूं, यदि उपयोगी प्रतीत हो तो उसे देख लेना। इसके अनंतर धीरु भाई ने उस निबंध की एक प्रति भी मेरे पास भेजी।

वैसे तो यह अधूरी-सी रूपरेखा मेरे लिए पर्याप्त थी; परंतु क्योंकि इस लोकगाथा के शोधक स्वय ही उपन्यास लिखना चाहते थे, अतः मुझे लगा कि एक ही विषय और एक ही ऐतिहासिक पात्र पर दो-दो कथाओं की रचना करना निरर्थक है। मन को यह कहकर समझाया भी कि जोशी का उपन्यास पढ़ने के बाद यदि लगा कि कुछ शेष रह गया है तो देखेंगे। इस घटना के बाद भी चार-पाच वर्ष और बीत गए, पर गलालसिंह के किसी ऐतिहासिक उपन्यास में दर्शन नही हुए।

तभी एक चमत्कार हुआ। 'जनसत्ता' के संपादक श्री रमण भाई सेठ ने राजकोट से 'जनसत्ता' का प्रकाशन आरंभ किया। मेरे प्रति अपने निजी मैत्री-संबंध के आधार पर उन्होंने मुझसे पूछे बगैर ही यह घोषणा कर दी कि 'जनसत्ता' में पन्नालाल पटेल की सर्वथा नयी कथा-कृति धारावाहिक रूप से प्रकाशित की जाएगी। फिर मैंने भी सहमति देने के साथ-साथ मन ही मन संकल्प किया कि 'गलालसिंह' ही देना है।

वस्तुतः ऐतिहासिक-उपन्यास, इतिहास की 'ऐरण' पर निर्मित एक काल्पनिक कथा ही होता है। जैसा कि मेरे एक विद्वान् मित्र ने कहा था, "ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास तो आटे में नमक जितना ही होता है।"

तथापि मैंने अमरिया के गीत में चित्रित गलालसिंह के अतिरिक्त, इतिहास के पन्नों मे आवेष्टित गलालसिंह को भी खोजना शुरू किया! लेकिन न तो टॉड के राजस्थान में और न ही डूगरपुर के इतिहास में, गलालसिंह का कोई पदचिह्न मिला। अंततः 'वीर-विनोद' मे ढेबर-जलाशय के निर्माण-प्रसंग का तथा कडाणा में उसकी मृत्यु का उल्लेख अवश्य मिला। इसके बाद तो मैंने समय व स्थान आदि का एक पूरा का पूरा नक्शा तैयार कर लिया।

दिसम्बर १९६८ मे पांडिचेरी जाकर कथा-लेखन का श्रीगणेश

किया। तीन माह की अवधि में लगभग दसेक परिच्छेद लिखने के बाद, जब मार्च में वापस लौटा तो लगा कि उपहार-स्वरूप प्रकाशित होने वाली कृति की चर्चा पर परदा डाल दिया गया है। अतः स्वाभाविक रूप से मैंने भी 'गलालसिंह' की कथा-धारा को वही रोक दिया।

और फिर दो साल बाद यह कृति 'जनसत्ता' मे धारावाहिक रूप से प्रकाशित होने लगी और अंतत· नौ महीने बाद आज वही 'गलालसिंह' 'रक्त-गुलाल' शीर्षक से पुस्तक रूप मे गुजरात के सुविज्ञ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

इस अवसर पर मैं आचार्य श्री धीरु भाई ठाकोर के प्रति तथा जाने-अनजाने मे अत्यंत सहायक सिद्ध होने वाले प्रो० एल० डी० जोशी के प्रति अपना ऋण स्वीकार करता हूं। साथ ही गलालसिह के सबंध में विपुल सूचनाएं देने के लिए मैं श्री के० का० शास्त्री के प्रति भी आभारी हूं। 'वीर-विनोद' जैसे महाग्रंथ के उपयोग के लिए मैं प्राध्यापक श्री भ्रमरलाल जोशी के प्रति भी हार्दिक आभार प्रकट करता हू।

समापन इस विश्वास के साथ करना चाहता हू कि ऐतिहासिक-उपन्यास की रचना की दिशा में मेरा यह पहला प्रयास, साहित्यानुरागी मित्रों को निराश नही करेगा।

पन्नालाल पटेल

१५, प्रज्ञा-सोसाइटी
'साधना'
नवरगपुरा, अहमदाबाद-१

अनुवादक की ओर से

दक्षिण राजस्थान के वागड़-जनपद में जोगियों द्वारा 'तंबूरे' पर गायी जाने वाली इतिहास-प्रसिद्ध लोक-गाथा 'गलालेंग' पर आधारित, इस ऐतिहासिक उपन्यास के लेखक श्री पन्नालाल पटेल गुजरात के प्रमुख कथा-शिल्पियो में से एक हैं। उनकी दो शीर्षस्थ लोकप्रिय कथाकृतियों— 'मलेला-जीव' और 'मानवी नी भवाई' का हिंदी अनुवाद क्रमशः 'जीवी' और 'जीवन : एक नाटक' शीर्षक से साहित्य अकादमी और नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित किया गया है। पन्नालाल पटेल हिंदी-पाठक के लिए कतई अजनबी नही हैं। उनकी कहानियां हिंदी की सभी जानी-मानी पत्र-पत्रिकाओं यथा धर्मयुग, कादम्बिनी एवं सारिका आदि मे प्रकाशित हो चुकी है। उनकी कृतियो पर आधारित गुजराती फिल्मो को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय फिल्म-महोत्सवों मे पुरस्कृत किया गया है।

श्री पटेल जन्म से हिन्दी-भाषी वागड-जनपद के निवासी है। मई १९७७ में वागड-जनपद ने अपने इस सरस्वती-पुत्र के सम्मान मे एक भव्य अभिनंदन-समारोह का आयोजन किया था। इस समारोह की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए मैंने यह अनुवाद-कार्य अपने हाथों मे लिया। 'रक्त-गुलाल' इस दृष्टि से स्वयं में एक अपूर्व ऐतिहासिक उपन्यास है कि यह परंपरित राजसी वातावरण पर आधारित न होकर ग्राम्य-परिवेश पर आधारित है एवं आंचलिक परिधान से आवेष्टित है। इसमें अभिजन-पात्र नही, वरन धरती बोलती है।

जिन विद्वानो और मित्रों ने मुझे इस अनुवाद-कार्य में सहयोग दिया उनमें गुजरात विश्वविद्यालय के हिंदी प्राध्यापक डा० रणधीर उपाध्याय, डा० एल० डी० जोशी, आनंद कुरैशी, नेहरू युवक केंद्र डूगरपुर के

संयोजक श्री सुधाशंकर पंड्या और श्रीमती कंचन पंड्या प्रमुख हैं। मैं पूर्वोक्त विद्वानों और मित्रों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूं। अनुवाद कैसा है, इसका निर्णय तो मैं प्रबुद्ध पाठकों पर छोड़ता हूं; पर मुझे सतोष है कि मैंने इसे प्रवाहमय और प्रामाणिक बनाने की भरपूर कोशिश की है।

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
डूंगरपुर (राजस्थान), जनवरी १९८०

रमण लाल जैन

अनुक्रमणिका

पियोली

सूर्य अभी-अभी ही ढला था। माही-तट की वन-श्री पर विक्रम संवत १७३५ की वासंती हवा लहरा रही थी। तट पर स्थित शक्ति-मंदिर के मुख्य प्रांगण में राजसी ठाट छाया हुआ था। एक ओर जामुन वृक्ष के नीचे दसेक घोड़े और दो ऊंट बंधे हुए थे तो दूसरी तरफ जीर्णोद्धार के लिए प्रतीक्षारत देवालय के ढलवा मैदान के बीचोबीच एक बड़ा-बूढा वटवृक्ष खडा था। उस वटवृक्ष के विशाल चबूतरे पर रेशमी परदों से युक्त एक पालकी रखी हुई थी। पालकी से थोड़ी दूर आठ वाहकों की एक टोली जमी थी। उनके बीच दो-दो चिलमें घूम रही थी। विविध सुरभियों से आपूरित उस हवा में ये चिलमें तंबाकू-गंध घोल रही थीं। चबूतरे के ठीक दूसरे छोर पर ढाल-तलवारधारी दस सैनिकों का एक दल बैठा हुआ था। उनके बीच तंबाकू के नशे जैसी ही भेदभरी बातों का सिलसिला जारी था। यद्यपि आसपास कोई नही था फिर भी उनकी बातचीत झींगुर के स्वर-सी मद्धिम थी।

अपनी चितकबरी दाढी और मूछ के कारण अधेड़-से लगने वाले उस सैनिक ने, तलवार के वार की तरह पहले सैनिक की बात को खचाक से काटते हुए कहा, "सरासर गलत ! दादागुरु वास्तविक साधु कदापि नहीं है !"

"ऐसा !" श्रोता सैनिको की मूंछो के छोर सहसा फड़क उठे। एक स्वर में कहने लगे, क्या बात करते हो ?"

"तुम तो जैसे सब-कुछ जानते हो न !" पहला सैनिक अभी भी मानने को तैयार न था।

"तुम कुछ भी कहो, पर वास्तविकता यही है कि दादागुरु मेवाड़ के राजगुरु है । सुना है कि जब वर्तमान महाराणा राजसिंह का जन्म हुआ था तो इन्ही दादागुरु ने उनकी जन्म-कुडली कटार की नोक द्वारा अपने लहू से लिखी थी । इसके बाद वे तपस्या करने के लिए हिमालय की गोद मे चले गए । कहते है वहा दुर्गा ने उन्हे दर्शन दिया और आशीर्वाद प्रदान कर वापस मेवाड भेजा । मा दुर्गा ने उनसे कहा था कि जिस प्रकार राजसिंह की कुंडली तुमने अपने लहू से लिखी है, ठीक उसी प्रकार से उसका राज्य-काल भी लहू के अक्षरों से लिखा जाएगा । राजसिंह मेवाड़ की धरती को आततायी विधर्मियो के रक्त से सीचेंगे और अततः मुगल-सम्राट को राजपूताने से खदेड देगे । सिर्फ इतना ही नही, मां दुर्गा ने तो यह भविष्य-वाणी भी की थी कि दिल्ली का सिंहासन राजसिंह के हाथों जर्जरित होगा और जिस तेज़ी के साथ मुगल-सम्राट का उदय हुआ था, उसी तेजी के साथ वह भारत-भूमि से अंतर्धान भी हो जाएगा !"

"नाहरसिंह ! मुझे तो मुगल-साम्राज्य के अंतर्धान होने की बात विश्वसनीय नहीं लगती," पहले सैनिक का विरोध पूर्ववत् जारी था ।

"सच्ची बात तो राम जाने राठौड़ ! परंतु उस दिन से दादागुरु राजपूताने के छोटे-बड़े रजवाड़ो मे बराबर घूम रहे है और शक्ति की आराधना करते हुए उन्हें झंझोड़ रहे है", और फिर धीमे स्वर मे जोड दिया, "इस देवालय में तो वे केवल दोपहर या रात ही गुजारते हैं ।"

पहला सैनिक मूछों पर हाथ फेरता हुआ अभी भी जैसे बाल की खाल खींचता हो, यो नाहरसिंह की बात में से झूठ खोज रहा था । उसने अविश्वासपूर्ण स्वर में कहा, "प्रश्न यह है कि यदि राजसिंह की कुंडली दादागुरु ने बनाई थी तो उस बात को बीते कितने वर्ष हुए ? महाराणा राजसिंह के दोनों कुंवर—जयसिंह और भीमसिंह—यदि आयु में तुम्हारे बराबर नहीं तो मेरे बराबर पच्चीसेक साल के तो है ही; तो फिर दादा-गुरु की उम्र कितनी है ?"

"दादागुरु की उम्र तो राम जाने ! पर एक बात कहूं ? आज से लगभग बीस साल पहले मैं नया-नया नौकरी मे लगा था और आज की ही तरह वर्तमान राजमाता के साथ यहां आया था । मैंने तब उनको जैसा

देखा था वैसा ही आज भी पाता हूं । लगता है जैसे कल की ही बात है !"

टोली के तीन युवा सैनिको में से एक भोला सैनिक बोल पड़ा, "ठीक है भाई, ठीक है । शक्ति-साधना की यही तो विशेषता है । अपनी लंबी-चौड़ी कद-काठी और तेजस्विनी आंखो के कारण मुझे तो वे साधु से अधिक एक सुभट सेनापति प्रतीत होते है ।

द्वितीय युवा सैनिक ने भी हामी भरते हुए कहा, "यदि ऐसा नही होता तो राजमाता गलाल बापू को दादागुरु के पास क्यो लाती ?"

तीसरे सैनिक ने जैसे ही बोलने का उपक्रम किया, देवालय के भीतर से दादागुरु की भारी आवाज सुनाई पड़ी, "पियोली मा ! जीर्णोद्धार अवश्य होना चाहिए, पर पहले देश का, फिर मदिर का···" स्वर में तनिक तीक्ष्णता थी जैसे पाषाण से टकराकर भाला गिर पड़ा हो ।

सभी सैनिक तन्मय भाव से हवा में कान लगाए सुन रहे थे, पर जैसे ठहरी हुई आवाज़ मंदिर में ही लंगर डालकर स्थिर हो गई थी । पियोली मां कह रही थी, "कहां मेवाड़ ! कहां जोधपुर ! और उनकी तुलना में कहां हमारा कौर जितना छोटा-सा अलीगढ ?" पचपन वर्ष की आयु में भी भव्य प्रतीत होने वाली राजमाता ने कौर शब्द का उच्चारण करते समय गुलाबी कमल की पंखुडियों जैसी पाच उगलियां मिलाकर कौर का अभिनय किया । फिर भारी निःश्वास के साथ रूठी हुई आवाज़ मे कहा, "हमारी क्या बिसात ? हमे कौन पूछता है ?"

दादागुरु खिलखिलाकर हंस पड़े । उनकी सुधाफेनी को भी भुला दे ऐसी दुग्ध-धवल श्वेत दाढी भी जैसे राजमाता पियोली का उपहास कर रही थी । पियोली मां की बगल में वीरासन-मुद्रा में बैठे हुए कुमार को जैसे अपने पक्ष में मिला रहे हों यों दादागुरु ने कहा, "सुन रहे हो न गलाल ! मां क्या कह रही हैं ?" फिर गंभीर स्वर मे पियोली से प्रश्न किया, "बोलो पियोली मां ! तुम इस खड्गधारी अबोध कुमार को अपने साथ क्यो लाई हो ?" दादागुरु की सागर-सी गहरी-आंखे उस भीतरी कक्ष के हल्के-हल्के उजाले में भाले की नोक-सी दमक रही थीं ।

पियोली की आंखें भी राजपूतनी की शोभा के अनुरूप प्रखर और सतर्क थी । बोली, "जिस प्रकार थाली से भूमि पर मूग बिखर जाते हैं,

उसी प्रकार मुगल-सेना भी सपूर्ण राजपूताने में फैली हुई है। तिस पर मुझे तो फिर तीन रियासतो की सीमा लांघकर यहां पहुंचना था! इसके अतिरिक्त···"

दादागुरु बीच में ही बोल पड़े, "अर्थात् मां की रक्षार्थ ही कुमार को साथ मे लाई हो न ?"

पियोली ने भी सीधा-सा उत्तर दिया, "क्यों नही ? इसीलिए तो लाई हूं···।"

"ठीक है; और मान लो कि तुम पर सचमुच ही विपत्ति टूट पड़े तो···बोल गलाल ! तू ही मेरे सवाल का जवाब दे···क्या तुम उस क्षण में भी मान-सम्मान की अपेक्षा रखोगे जबकि मा पर विपत्ति के बादल मंडरा रहे हो ?"

उग्र स्वभाव का अल्हड़ गलाल, दादागुरु अपनी बात समाप्त करें तब तक के लिए स्वयं को रोक नहीं सका। हंसता हुआ उपहासपूर्ण स्वर में बोल उठा, "दादागुरु ! सिंह के लिए शिकार की और तलवार के लिए विपत्ति की हल्की-सी गंध भी पर्याप्त होती है···।" उसकी गोल-गोल बड़ी-बड़ी गुलाबी आंखों का रंग आवेश के कारण सहसा गहरा हो गया। उसका हाथ भी अनायास तलवार पर पहुंच गया।

हर्षोल्लास को छिपाती हुई दादागुरु की पैनी दृष्टि सतर्क हो उठी। स्वर में तीक्ष्णता घोलकर गलाल से प्रश्न किया, "क्या तुम्हें आततायी यवनों द्वारा पदाक्रांत मातृभूमि की आर्त्त पुकार अब भी नही सुनाई पड़ती ?"

"मां जाने कब देती है दादागुरु ?" मातृप्रेमी गलाल के स्वर में लाचारी के साथ-साथ अपनी मां के प्रति सूक्ष्म शिकायत का स्वर भी मिला हुआ था।

दादागुरु यह सुनकर विस्मय के साथ पियोली की ओर एकटक देखते रहे। उस दृष्टि में प्रश्न, शिकायत, उलाहना एवं स्पष्टीकरण की अपेक्षा एकाकार हो उठी थी।

"विश्वास रखिए दादागुरु ! इतने सारे वर्षो के बावजूद मैं आपकी भावना को नही भूली हूं। आखिर मै यह कैसे भूल सकती हूं कि आपके

आशीर्वाद के फलस्वरूप ही मुझे यह मनचाहा बेटा मिला है ! और मैंने भी उसे केवल स्तन-पान ही नहीं कराया, राजपूती संस्कार भी पिलाए हैं । परंतु विडंबना यह है कि मेवाड़ जैसे बड़े राज्य में कौन हमारी परवाह करता है और कौन हमें मान-सम्मान देता है ? हम नगण्य और महत्त्वहीन जो हैं ! अतः ऐसी स्थिति में आप ही बताइए दादागुरु कि इस कुमार को किसके पास भेजूं ? बिन बुलाए मेहमान की तरह यह किसके यहां जाकर अपने घोड़े का तंग खोले ?" और फिर तुरंत जोड़ दिया, "मेरी यही तो आज तक आपके समक्ष शिकायत रही है···"

दादागुरु को वस्तुस्थिति भांपने में ज़रा भी देर नही लगी । हंसकर कहा, "तब फिर यों सीधी बात कहो न !!"

"मैंने आरंभ में जो बात कही, वह सीधी भी है और टेढ़ी भी···।" पियोली ने भले ही यह बात मधुर परिहास के स्वर में कही थी पर उसके पीछे सतर्कता तो मौजूद थी ही ।

"इसका मतलब ?"

प्रत्युत्तर में राजमाता ने अपनी पूर्व बात को स्पष्ट शब्दों में पुनः दुहराया, "आज से अठारह वर्ष पहले आपने आशीर्वाद दिया था कि तेरी कोख से मनचाहे सुंदर कुमार का जन्म होगा, कि वह एक सच्चा वीर राजपूत होगा । आपकी वरद् आशिष्-वाणी सोलह आने सत्य सिद्ध हुई । पर दादागुरु ! कठिनाई यह है कि मेरा गलाल आभूषण-विहीन स्त्री के समान है···।" और फिर जोड़ दिया, "मेरे उस छोटे-से राज्य में इसका बड़ा भाई इसे आखिर कितनी बड़ी जागीर दे पाएगा ?"

"आखिर तुम कहना क्या चाहती हो ?" दादागुरु पियोली मां के अभिप्राय को समझने की चेष्टा कर रहे थे ।

"गुरुदेव ! आशीर्वाद दो कि इस कृष्ण के समान सुकुमार और देवाधिदेव शिव के समान तेजस्वी कुमार को उसकी प्रतिष्ठा एवं क्षमता के अनुरूप कोई छोटा-सा राज्य मिल जाए और वह सिंहासनाधिपति के रूप में रह सके ।"

क्षणार्द्ध के लिए लगा कि जैसे इस महत्त्वाकांक्षिणी राजमाता पर दादागुरु मन ही मन हंस रहे हैं । उन्होने गलाल पर दृष्टिपात किया और

फिर गहराइयों में लीन अपनी आंखों पर परदा डालकर कुछेक क्षण के मौन के उपरात बोले, "पियोली मा ! अन्य लोगों का भाग्य-लेख तो ललाट पर लिखा रहता है, पर राजपूत का भाग्य तो तलवार पर अंकित रहता है। क्यों कुमार ? बोलो ना ! सहमत तो हो न ?"

पियोली ने अपनी पैनी नाक वाला चेहरा पुत्र की ओर किया। आनंद-विभोर पुत्र की नजरें मा से मिली। जैसे कोई गोपनीय बात कह रहा हो यों बोला, "मैंने तुमसे पहले ही कहा था न ? राजपूत का मान-सम्मान उसकी तलवार में है !"

दादागुरु ऊंचे स्वर में बोल उठे, "शाबाश ! वैसे तो तेरा व्यक्तित्व ही स्वयं में एक परिचय है, किंतु फिर भी एक पत्र लिख देता हूं।" उन्होने समीपस्थ त्रिकोणाकार आले से पूजा-सामग्री की गठरी उठाई और उसमें से एक कागज निकाला। फिर दूसरे छोटे आले में से दवात-कलम उठाकर सर्वप्रथम बड़े-बड़े अक्षरो में राम नाम के कुछ शब्द लिखे। अंत में, गलाल को यह बताने के बाद कि भीमसिंह कौन है और उसकी सेना इस समय कहा है, मां-बेटे को पत्र पढकर सुना दिया। लिखा था :

"चिरंजीव राजकुमार,

इस पत्र का वाहक, अलीगढ़ का चौहान राजपूत अपना ही आदमी है। उसका नाम गलालसिंह है। उसका व्यक्तित्व महान है। समझो कि यथानाम तथागुण है। अग्नि के साथ खेल खेलेगा। उसका स्वागत-सत्कार करना।" इसके बाद मा-बेटे की ओर देखकर पूछा, "कहो, और कुछ लिखना है ?" इसके पूर्व कि मां कुछ कहे, गलाल बोल उठा, "बस, काफी है दादागुरु !" और उसने तुरंत पत्र लेने के लिए हाथ बढ़ा दिया।

भीमसिंह का नाम सुनते ही मां के लिए कुछ भी समझना शेष नहीं रहा। भीमसिंह मेवाड़ के महाराणा राजसिंह का कनिष्ठ पुत्र था। पियोली एक ओर इस परिचय से प्रसन्न थी तो दूसरी तरफ यह भी अनुभव करती थी कि यह परिचय अपर्याप्त है। अतः पियोली मां ने कह ही तो दिया, "यह भी लिख दो न दादागुरु, कि जितना तेज इसकी तलवार में है उतनी सेना इसके पास नही है; इसलिए सेना देखकर गलाल का मूल्यांकन मत करना।"

लेकिन गलाल को मां का यह कथन ठीक नहीं जंचा। मुंह बिगाड़कर मा से कहा, "नही मां, नही ! ऐसा कुछ नही लिखना है;" और तुरंत हाथ बढ़ाकर कहा, "दादागुरु! आप तो बस पत्र मुझे दे दीजिए···।"

पत्र पर ज्यों-त्यों अपनी मुद्रा अंकित कर, दादागुरु ने उसे मोड़ते हुए ऊंची आवाज मे कहा, "पियोली मां ! तुम यह क्यो भूलती हो कि

चंचल नारी के नैन छुपे नही
सूर्य छुपे नही बादल छायो
रणशूरों राजपूत छुपे नहीं
कर्म छुपे नही भभूत लगायो।"

इस आयु मे भी श्यामल कांति से परिपूर्ण एवं रसिकता की साक्षी देती हुई पियोली की बोलती आखें मुग्ध-भाव से उभरी हुई थी। दादागुरु को अपलक निहारते हुए उसने कहा, "केवल कर्म ही नही अपितु सिद्धि एव शौर्य सहित स्वय को भभूत मे छिपाए, आप स्वयं भी तो वर्षो से बैठे हुए है !" आधी पालथी से अपना पैर उठाते हुए राजमाता ने गलाल को संबोधित किया, "उठो कुमार ! प्रस्थान की तैयारी करो।"

पियोली का जन्म गुजरात में और ब्याह राजस्थान में हुआ था। फिर भी वह अभी तक गुजराती ही बोलती थी। गलाल और दूसरे बच्चे यद्यपि घर में गुजराती वोलते थे तथापि उनकी भाषा मे मेवाड़ी का पुट कई बार आ ही जाता था।

आज्ञाकारी गलाल तुरत खडा हो गया। दादागुरु को करबद्ध प्रणाम करने के बाद जैसे ही उसने लौटने के लिए पैर उठाया, मा ने आदेश दिया, "अरे, पास जाकर चरण-स्पर्श कर और दादागुरु से आशिष् माग !"

वह घुटनो के बल दादागुरु के सम्मुख बैठ गया। पैरो मे गिरने के लिए जैसे ही वह नतमस्तक हुआ, दादागुरु ने उसे अपनी बाहुओं में उठा लिया और फिर अपने विशाल वक्षस्थल पर उसका मस्तक टिकाते हुए अत्यंत भावभीने स्वर मे कहा, "पियोली मा का सौंदर्य तो तुझे मिला ही है ! और इसी स्थल पर जगदंबा के आशीर्वाद से तेरे व्यक्तित्व मे शक्ति तथा ओज भी मूर्तिमान हो उठा है, वत्स ! अब देखना यह है कि तू कैसा युद्ध-खेल खेलता है ?" कुछेक पल के लिए कक्ष में सन्नाटा-सा छाया

रहा। दादागुरु मौन थे। उनकी भविष्य-द्रष्टा शुभाकांक्षी आंखें कुछेक पल के लिए गलाल के चेहरे पर टिकी रही; अंत में उसे जाने की अनुमति देते हुए कहा, "वत्स, कामना करता हूं कि तू विजय प्राप्त करे और तेरी कीर्ति दिगदिगंत मे व्याप्त हो···।"

लौटते हुए गलाल को दादागुरु टकटकी बांधे देखते रहे। उसकी ऊंचाई इतनी थी कि उसे लंबा भी कहा जा सकता था। उसका सीना जितना चौड़ा था, कटि-प्रदेश उतना ही क्षीण था। उसके शरीर का पृष्ठभाग भी अतिशय आकर्षक और प्रभावशाली था।

गलाल के जाने के बाद भी कक्ष मे दो-चार पल के लिए नीरवता छाई रही। दादागुरु ने उसका अनुसरण करती हुई अपनी दृष्टि पियोली की ओर घुमाकर प्रश्न किया, "क्यों, कुआरा है न ?"

"मंगनिया तो कई आई है, परंतु मैं अभी इसका विवाह करना नही चाहती।"

दादागुरु ने सपरिहास प्रश्न किया, "न करने के पीछे भी अवश्य कोई राज होगा !"

पियोली ने हुंकारा भरते हुए कहा, "क्यों नही, राज़ तो है ही।" उसने दादागुरु पर एक अर्थपूर्ण दृष्टि डाली और फिर नजरें झुकाकर कहा, "दादागुरु ! जैसा रूप और शौर्य है, वैसा ही ठिकाना भी तो होना चाहिए न ?"

"ठिकाने से मतलब ?"

"किसी बड़े राजघराने की राजकुमारी। दादागुरु ! क्या आप इतना भी नही समझते ?" हालांकि पियोली की दृष्टि मे शिकायत का भाव था, पर साथ ही उसमे विनोद-परिहास का पराग भी घुला हुआ था।

दादागुरु के चेहरे हर विषाद की एक बदली-सी घिर आई। किंतु वह उतनी हीं शीघ्रता से, पक्षी की परछाईं की तरह अतर्धान भी हो गई। दादागुरु जैसे स्वयं से कह रहे हों यो गभीर और मधुर शिकायत-भरे स्वर मे बड़बडाए, "खूब कहा पियोली मां ! सोचती तो तुम खूब हो ?"

"आप ऐसा क्यों कह रहे हैं, दादागुरु ?"

"यदि रजवाड़े की ही इतनी चाह थी तो शक्ति मां से शौर्य मांगकर तो ठीक किया, पर रूप क्यों मांगा ?"

पियोली की इस मांग के पीछे भी एक छोटा-सा इतिहास था। पियोली की एक बडी बहन थी। उसका विवाह अपेक्षाकृत एक बड़े राज्य में हुआ था। किंतु पियोली को बड़ा राज्य देखकर उतनी ईर्ष्या नहीं होती थी, जितनी बडी बहन के सुंदर बेटे को देखकर होती थी। बडी बहन का बेटा सचमुच था भी देवकुमार-सा कमनीय ! जबकि उसका स्वयं का जाया कोई विशेष सुंदर नही था।

दोनों बहनों का एक बार पीहर में मिलना में हुआ। सबने बड़ी बहन के खूबसूरत बेटे की भूरि-भूरि प्रशंसा की। दासियों समेत सबके सब उसे ही प्रेम से दुलारते रहे। स्वाभिमानी पियोली का अहं इस दृश्य को देखकर आहत हो उठा। उसके हृदय में हीन भावना का जन्म हुआ तथा उसे अपना ही बेटा अनाथ प्रतीत होने लगा। दीदी के बातचीत के दौरान पियोली को पता लगा कि बागड प्रदेश में माही नदी बहती है और उस माही के तट पर एक शक्ति-मंदिर स्थित है। उस शक्ति-मंदिर के महंत दादागुरु के नाम से विख्यात है। ये दादागुरु एक बार उस राज्य की यात्रा पर पधारे थे। उन्हीं के दिव्य आशीर्वाद के फलस्वरूप दीदी को देवोपम सुंदर बेटा प्राप्त हुआ था।

अपनी बड़ी बहन के इस इतिहास के आधार पर ही पियोली ने यहां आकर एक·सुदर और शूरवीर बेटे की कामना की थी। अपनी बहन के उस अठारह वर्ष पूर्व के इतिहास को न खोलते हुए, पियोली ने उत्तर देने के स्थान पर प्रतिप्रश्न किया, "दादागुरु ! आप ही बताइए कि इस पृथ्वी पर कौन ऐसी मां होगी जो सुदर बेटे की अभिलाषा न रखती हो ?"

दादागुरु प्रश्न सुनकर हंस पडे, किंतु उस हंसी में करुणा और विषाद का पुट था। क्षण-भर बाद जब वे बोले तो उनकी आवाज में कूट-कूटकर दृढता भरी हुई थी, "तो फिर ठीक है पियोली मां ! वही होगा जो सौदर्य और शौर्य को प्रिय होगा।"

"उन्हें क्या प्रिय होगा दादागुरु ?" यद्यपि पियोली दादागुरु के शब्दों का स्पष्ट अर्थ नहीं समझी थी तथापि उसके चेहरे पर चिंता की एक

बदली फैल गई थी। दादागुरु सीधे तनकर बैठे गए। कहा, "बोलो पियोली! बड़े ठिकाने की राजकुमारी सच्ची है या इतिहास-निर्माता सयुक्ता सच्ची है?"

"मतलब ?"

"किसी भी पुरुष से पूछ लो न! सौंदर्य और शौर्य को तृप्ति कब मिलती है ?"

पियोली ने मधुर हास्य बिखेरते हुए उत्तर दिया, "यदि पुरुष से ही पूछने को कहते हो तो फिर आपसे ही पूछना पड़ेगा ?" पियोली की आवाज़ की अपेक्षा उसकी दृष्टि का कटाक्ष गहरा और निराला था। उसके नयनों से निर्मल परिहास झर रहा था।

"अरे, मुझसे क्या पूछती हो ? गलाल से ही पूछ लो न!" और फिर तुरंत कहा, "उससे पूछने की भी आवश्यकता नही पडेगी; वह स्वयं ही तुमसे पूछने आएगा···।"

"मैं आपका आशय नही समझी, दादागुरु!" पियोली के मस्तिष्क में अभी तक बात सौ फी सदी उतरी नही थी। लेकिन फिर भी वह इतना तो भांप ही गई कि एक दिन स्वयं गलाल ही अपनी प्रिया को ढूढ लाएगा कि वह किसी संयुक्ता का अपहरण करेगा···!"

पियोली परिहास-मिश्रित कठोर आवाज़ में बुदबुदाई, "दादागुरु! आप भी क्या बात करते है? वह क्या समझेगा इन बातों को ?"

"वही ज़्यादा समझेगा इन बातों को;" और फिर पियोली की ओर देखकर आगे कहा, "तुम्हें भी इस बात को अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए···।"

पियोली ने जाने के लिए पैर उठाते हुए कहा, "समझूगी क्यों नही दादागुरु, अवश्य समझूगी। लेकिन शर्त यह है कि वह जयपुर जैसे बड़े राजघराने की बेटी हो तथा संयुक्ता के समान ही मेरे बेटे पर मर-मिटने को प्रस्तुत हो···।" और फिर प्रस्थान के पूर्व घूघट खीचते हुए कहा, "अब आशीर्वाद दीजिए!" पियोली ने नतमस्तक हो हाथ जोड दिए।

दादागुरु हंस दिए। लगा कि जैसे मन ही मन कह रहे हैं : 'इस बेचारी को भ्रम हो गया है कि दादागुरु गोद में आशीर्वाद भरकर बैठे

हैं, कि प्रसाद की तरह हर किसी को जो मांगो वह दे देते हैं···!' फिर व्यक्त रूप से कहा, "पियोली ! तुम भले ही गलाल के रूप और शौर्य को राजसिंहासन एवं ठिकाने द्वारा सुसज्जित करना चाहो, पर मेरा मन कहता है कि प्रेम-विहीन रूप एव शौर्य, आभूषण-विहीन स्त्री के समान अधूरे हैं।" कुछेक पल के मौन के बाद पुनः स्वगत शैली में कहने लगे, "अपने कुंवर के लिए तुम्हारी इस महत्त्वाकांक्षा को कि उसे राजसिंहासन मिले और बड़े राजकुल में उसकी शादी हो, भाग्य-विधाता क्या आकार देता है यह तो भविष्य ही बताएगा···।"

क्षत्राणी पियोली को लगा कि जैसे किसी ने उसके हृदय पर अगारे रख दिए हैं। वह भीतर ही भीतर सुलग उठी। फिर भी उसने अपने आहत दर्प को हास्य मे लपेटकर कहा, "दादागुरु ! आपने मेरे गलाल का बल-पराक्रम अभी नहीं देखा है। मैं राजसिंहासन यो ही नहीं माग रही हूं। उसमे रूप से अधिक शौर्य की प्रधानता है। दरअसल, भय का तो वह नाम तक नहीं जानता···संप्रति वह मेरी ममता की जंजीर से बंधा हुआ है, अन्यथा अब तक तो उसने···।"

दादागुरु अपने आसन से उठते-उठते हसने लगे, "एक ओर तो तुम बड़े राजघराने की गद्दी चाहती हो और दूसरी ओर उसे घर में बाध रखना चाहती हो। ऐसी स्थिति मे रजवाड़ो को पता कैसे लगेगा कि तुम्हारा गलाल कैसा है ?"

"मेरा गलाल आग का दरिया है। इसीलिए तो मुझे उसे बांधकर रखना पड़ता है। वह बारंबार कहता भी है—'हम तो क्षत्रिय-पुत्र हैं; लौटाने की शर्त पर उधार मांगकर जीवन लाए हैं !' अतः उसे तो यह भी नही मालूम कि कहां जीवन अर्पण करना चाहिए और किसके प्राणों का अपहरण नही करना चाहिए···; मेरे हृदय को प्रतिक्षण यह आशंका सालती रहती है कि कही यह बिना सोचे-समझे अपना जीवन न दे डाले। चूड़ावत ने मेवाड की गरिमा की रक्षा के लिए जिस प्रकार प्राणोत्सर्ग किया और उसकी रानी ने जिस प्रकार थाल मे शीश रखकर भिजवाया, वैसा ही अगर कुछ बन पाए तो उसका नाम भी इतिहास में अमर हो जाएगा ! पर दादागुरु ! गलाल अत्यंत तेज और अधीर स्वभाव का

है···उसे···।"

दादागुरु ने पियोली मा को बीच में ही रोककर कहा, "पियोली! गलाल को तुम अपना मत समझो! सामने ये जगदंबा खड़ी हैं···उसे मां जगदंबा का ही पुत्र समझो···और यह मानते हुए कि भारतमाता इसी जगदंबा का ही एक रूप है, उसे उसके आंगन में खेलता हुआ छोड़ दो···!"

"मां भारती के चरणों में ही तो छोड़ दिया है उसे। आपका दिया हुआ पत्र जो उसके हाथ मे है अब! मेरे लाख बाधने पर भी वह अब बंधा नही रहेगा···।" और फिर मां जगदंबा की प्रतिमा की ओर अभिमुख होकर आगे कहा, "उसे जगदंबा का पुत्र मानती हूं इसीलिए तो आपसे इस देवालय के जीर्णोद्धार का निवेदन किया था!"

"सब होगा। एक बार इन विदेशी आक्रांताओं को इस भूमि से खदेड लेने दो···; फिर केवल जीर्णोद्धार ही नही होगा, पियोली मां! वरन् इस माही के कगारों पर नूतन भव्य देवालयों का निर्माण होगा···। इस समय तो राजपूताने का रंग ही दूसरा है। विश्वास रखो, पियोली मां! अततः इस देश का भविष्य उज्ज्वल है···।"

"आपकी कृपा से मुझे सब-कुछ मालूम है;" पियोली ने पुनः उसी मुग्ध-विभोर दृष्टि से दादागुरु की ओर देखा।

किंतु दादागुरु मां की प्रतिमा को श्रद्धा-विभोर होकर निहार रहे थे। एक हस्त में खड्ग और दूसरे में खप्पर-युक्त नरमुंडधारी उस चतुर्भुज रणचंडी को संबोधित कर वे कहने लगे, "मां! यह तेरा दिया हुआ पुत्र है···पियोली की कोख को शीतल करना···उसके मातृत्व को चिरंतन सार्थकता देना···।"

पियोली ने हाथ जोड़कर दादागुरु को प्रणाम किया। ज्यों ही वह चरण-रज लेने के लिए झुकी, दादागुरु ने उसे अपने हाथों पर उठा लिया। आंखो मे आंखें डालकर बोले, "जिस मा ने मां-भारती के उद्धार के लिए गलाल जैसे पुत्र-रत्न को अपनी छाती से दूर कर दिया है, उसके चरणो की धूल तो मुझे लेनी चाहिए···। पियोली! तुम्हें मेरे जैसे संन्यासी की पद-रज उठाने की आवश्यकता नहीं है···।" कुछ क्षणों

के लिए दादागुरु पियोली के मुख को निर्निमेष निहारते रहे; फिर अस्फुट स्वर मे बोले, "मा भवानी से प्रार्थना करता हूं कि वह तुम सबकी रक्षा करे।" और इन शब्दों के साथ ही दादागुरु ने पियोली को द्वार की ओर मोड़ दिया। जाती हुई पियोली अभी भी अपने कंधों पर दादागुरु के राठौड़ी हाथों का स्पर्श महसूस कर रही थी। दादागुरु की आशिष्-वाणी से अभिभूत, वह धीमी गति से द्वार की ओर बढ़ने लगी।

ऐसा प्रतीत होता था कि दादागुरु की दृष्टि जैसे एक ओर पियोली मां और दूसरी ओर मां भवानी के मध्य साम्य स्थापित करने की कोशिश कर रही है। ध्यानमग्न दादागुरु सहसा एकालाप करते हुए बुदबुदाए, 'कैसी है इस अभागे मानव की नियति! इसे यह भी तो नहीं मालूम कि उसे क्या मांगना चाहिए···!!'

प्रणयाकुल अश्व-युगल

गलाल का हृदय-घट हर्षातिरेक से छलक रहा था। मंदिर से बाहर आकर उसने अपने आदमियों को तैयार होने की सूचना दी। पत्र को फिर से पढ़ा और उसे तह करता हुआ सोचने लगा, 'इसे कहां रखू?' घुटनों के नीचे, पिंडलियों तक फैले हुए अंगरखे में दो बड़ी-बड़ी जेबें थी। उसमें रखने का विचार किया। कमर-बंद से चिट्ठी बाधने की परिपाटी भी उसे मालूम थी। मेवाड़ी पगड़ी के किसी पेच में पत्र रखने का विचार भी मन में आया। पर इस विचित्र प्रकृति के राजकुमार को तो जैसे दादागुरु की चिट्ठी कोई रक्षा-बंधन हो यों सिर्फ तलवार पर ही बाधने की सूझी। मूठ से जुड़ी हुई म्यान की डोरी भी रेशमी गुच्छे से सुशोभित थी। यह सुनहरी डोर थी भी दो लडियों वाली।

ऊपर-नीचे चार-चार अंगुल लंबी सोने की बेल-बूटे वाली मखमली आवरण-युक्त म्यान के साथ चिट्ठी बांधने के बाद, उसने सामान से लदे दो ऊंटों को आगे रवाना कर दिया। पियोली मा के पालकी में आ बैठने के बाद उसने दसेक अश्वारोहियों के संरक्षण में पालकी को भी

रवाना कर दिया। स्वयं पीछे रहते हुए कहा, "वकर्तसिंह ! पदचिह्नों का अनुसरण करता हुआ मैं पीछे-पीछे आ रहा हूं। मुझे देर हो जाए तो चिंता मत करना। जरा दादागुरु से मिल लू, फिर आता हूं।"

पालकी में से पियोली बोल उठी, "देर मत करना कुमार !" पेड़ से बंधा गलाल का घोड़ा हिनहिना रहा था। उसकी ओर लक्ष्य कर गलाल ने कहा, "मां, चिंता न कर; मेरा यह घोडा भी भागने के लिए पैर पटक रहा है। थोडा फासला बना रहे तो अच्छा है। दादागुरु से उस स्थान की ठीक-ठीक जानकारी भी ले आऊंगा।"

गलाल की यह दलील सुनकर मां हंस पड़ी; बोली, "लड़ाई पर जाने के लिए घोड़े से ज्यादा तो तू पैर पटक रहा है !" और जाते-जाते मां ने पुनः पुकारा, "जल्दी आना···।"

दादागुरु से भीमसिंह के पड़ाव-स्थल की जानकारी मिल जाने के बाद गलाल को भी ठीक-ठीक अंदाज बैठ गया। वह जानता था कि महाराणा राजसिंह ने मुगल-सम्राट से टक्कर लेने के लिए तीन भागों में सेना भेजी है। उसे यह खबर भी मिली थी कि लश्कर का एक दस्ता तो स्वयं महाराणा राजसिंह के अधीन है और इस समय अरावली की उपत्यकाओ में औरंगजेब का मुकाबला करने के लिए डटा हुआ है। दूसरा दस्ता युवराज जयसिंह के नेतृत्व में अरावली के पर्वत-शिखरों पर व्यूह-रचना किए हुए है; जबकि तीसरा दस्ता भीमसिंह के नेतृत्व में गुजरात की सीमा पर अभी तो सिर्फ़ हवा खा रहा है।

अतः गलाल सोचता था कि यदि दादागुरु ने उसे महाराणा या जयसिंह के पास भेजा होता तो ठीक होता। बस, जाते ही मुगलों के सिर काटने का मज़ा आ जाता···

गलाल के इस अनुरोध और आशय को समझने के बाद दादागुरु ने इस अति उत्साही कुमार की ज्वाला के समान उत्कट इच्छा पर जैसे माही का शीतल जल छिड़क दिया। उसका कंधा थपथपाते हुए दादागुरु ने कहा, "धैर्य रखो बेटा ! जिस प्रकार तुमने मेरा पत्र अपनी तलवार से बाध लिया है वैसे ही यह सीख भी हृदय मे उतार लो :

'उतावला सो बावला, धीरा सो गंभीर।'"

दादागुरु ने गलाल से दो-तीन बार इस उक्ति की पुनरावृत्ति करवाई। उसके कंधों पर हाथ रखकर बारंबार याद दिलाते हुए कुछ दूसरी सीख भी दी। उनकी सीख का सार यह था कि लड़ाई जितनी तलवार से लड़ी जाती है, बुद्धि और युक्ति द्वारा उससे भी अधिक लड़ी जाती है।

सिर पर हाथ रखकर बिदा देते समय उस उग्र युवक के हृदय-पट पर गुरुमत्र जैसे ये शब्द भी अकित कर दिए, "याद रखना कि युद्ध में तलवार, तग और लगाम ये तीनों चीजें सदैव मजबूत रहनी चाहिए—सैनिक का एक पैर आगे और ध्यान पीछे रहता है।" और फिर जाते-जाते आखिर में याद दिलाया, "चतुराई पहले और कटार बाद में। जो काम बल से नही होता वह युक्ति से पूरा हो सकता है !"

और थिरकते हुए घोडे पर सवार होते समय गलाल भी मन ही मन इस सीख को रट रहा था, 'उतावला सो बावला, धीरा सो गंभीर।' 'कटार से चतुराई बड़ी'।

मंदिर का आंगन पार करके जैसे ही गलाल का घोड़ा माही के ऊंचे कगारों पर पहुंचा, वह अपने कान खड़े करके सहसा रुक गया। नदी-तट के हरे-भरे वन मे प्रवाहित हो रही मनमौजी हवा के कारण संपूर्ण हरियाली हिलोरे ले रही थी एवं मन ही मन आत्म-मुग्ध-सी उल्लसित हो रही थी।

क्षितिज-व्यापी वन की हरियाली पर गलाल ने एक प्रफुल्लित दृष्टि डाली। कगारों के मध्य बहते आडे-टेढ़े पानी को ध्यानपूर्वक देखा। घोड़े को स्तंभित देखकर उसे अचरज हुआ और उसने उसके अगले पैरो के आगे यह देखने के लिए नजर डाली कि आखिर क्या कारण है ? मन मे यह प्रश्न भी उठा कि आखिर यह क्यों झिझक रहा है ?

पर नीचे की ओर न तो कोई अवरोध था और न कोई असाधारण ढलान थी। घोड़ा भी यू सजग बना हुआ था कि जैसे उसे कुछ समझ मे नही आ रहा है। वह इधर-उधर देखते हुए नथूने फुंफकार रहा था।

वन की गहराइयों से गलाल को हिनहिनाहट की आवाज़ सुनाई दी। इस अनुमान के आधार पर कि अपने ही घोड़े होंगे, उसने मान लिया कि घोड़े के थम जाने का भी शायद यही कारण है। लगाम खीचकर उसने

उसे आगे बढ़ने का आदेश दिया। घोड़े ने अपने स्वामी के आदेश को स्वीकार तो कर लिया, पर जैसे रोयें-रोयें मे जीवंत और अग-प्रत्यंग में खेलता हुआ आनंद, सामने के तट-वन मे हहराता और प्रतिध्वनित होता हो यों वह हिनहिना उठा, "ही···ही···ही···।"

गलाल को लगा कि घोड़े का आज का मिजाज कुछ अलग किस्म का है। माही के आड़े-टेढ़े कगारों के मध्य मार्ग खोजते हुए घोड़े की गति यों तो धीमी थी, परंतु रोज़ के मुकाबले में गलाल को लगा कि घोड़ा आज अधीर ही नही, उडने की तैयारी में है।

शिकार का पीछा करते समय या लड़ाई के दौरान किसी साहसिक कार्य में कूद पड़ते समय तो निश्चय ही घोड़ा इसी प्रकार से उत्तेजित हो जाता था; और गलाल का अपना अनुभव भी यही था कि जब कभी वह स्वयं शात होता अथवा आज के समान प्रसन्न मुद्रा मे होता था तो यह उम्दा नस्ल का घोड़ा इसी चाल से चलता था, जैसे खेल रहा हो। ऐसे मौकों पर वह फूल की तरह हल्का हो जाता था। पर आज तो न जाने क्या बात थी कि···

सामने के किनारे पर आकर घोड़ा पुन. रुककर खड़ा रह गया। नथुने फड़फड़ा रहा था और यों हिनहिना रहा था जैसे उसने सारा जंगल सिर पर उठा लेने की कसम खा ली है।

गलाल तुरंत समझ गया कि सामने से आने वाली हिनहिनाहट उसके अपने घोड़ों की नही है। यह हिनहिनाहट तो भिन्न दिशा से आ रही थी।

बीहड़ वन में नाक से सूघकर जैसे कुछ ढूंढ़ रहा हो यों वह नील-गाय के जैसा घोड़ा नेवले जैसी संकरी पगडंडी पर से आगे बढा। गलाल अब विशेष रूप से सजग हो उठा। घोड़े को नियंत्रण में रखने की दृष्टि से उसने लगाम पर अपनी पकड मज़बूत कर ली। वन में से गुज़रती हुई, श्वासनली जैसी उस डगर पर उसने दूर तक नज़र डाली। पर वन-पथ के उल्टे-सीधे मोड़ों पर उसे कुछ भी नजर नही आया।

थोड़ा आगे बढते ही गलाल को भेद मिल गया। वह बड़बड़ाया—'सामने से आता हुआ घोड़ा तूफानी लगता है, इसीलिए यह भी मुंहज़ोर

हो गया है।'

अनुमान सच निकला। सामने से एक अश्वारोही आ रहा था और उसका घोड़ा भी बेकाबू प्रतीत होता था।

इसके सिवाय गलाल कुछ और भी भाप गया—'घोड़ा नहीं अपितु घोड़ी है और प्रणयाकुल होकर तूफान कर रही है।' और समीप से देखने पर पता लगा कि अश्वारोही उसी की वय का नहीं, बल्कि तनिक छोटा है। किसी कुलीन घर का मासूम नरवीर लगता था। सिर पर मेवाडी पगड़ी और पगड़ी पर नगजडित सिरपेच जनेऊ की तरह बंधा हुआ था। अंगरखे पर हीरों का हार झूल रहा था। कुल-परंपरा में भी उससे श्रेष्ठतर लगता था। गलाल समझ गया कि इस प्रदेश की किसी छोटी-बड़ी रियासत का राजकुमार लगता है।

अपूर्व था उस मासूम युवक का सौदर्य! गलाल ने अपने सौंदर्य के अलावा ऐसा रूप पहली बार देखा था।

उसके हाथों में बेकाबू घोड़ी देखकर गलाल हसने लगा। परंतु जब उसका स्वयं का घोड़ा ही बेकाबू हो रहा था तो वह इस बेचारे कमसिन युवक को कैसे दोष दे सकता था? उसने आवाज़ लगाकर कहा, "नौजवान! अपनी घोड़ी को संभालो। वह काम-ज्वर से आक्रांत है। अपनी रान के नीचे नियंत्रण मे रखो और लगाम खीचकर पार्श्व मे ले लो। मै अपने घोड़े को निकाल लूगा।" गलाल का घोड़ा बार-बार दोनों अगले पैरो पर खडा हो जाता था। जितना मस्त गलाल का घोड़ा था, ऊंची नस्ल की वह अद्भुत प्रतीत होने वाली काली घोड़ी भी उतनी ही मस्त थी। उस बेचारे की पगड़ी भी उड़ने की तैयारी मे थी।

गलाल ने अधीर-आकुल, वर्तुलाकार परिक्रमा काटते हुए अपने घोड़े को बड़ी मुश्किल से घोड़ी के पास से आगे निकाला। पार करता हुआ वह बोला भी, अब जाने दो आगे!"

आगे बढते वक्त गलाल ने इस कच्चे अश्वारोही की आंखो से, आखें मिलाने का प्रयास किया। पर तलवार की मुठभेड़ की भांति अभी आंखें पूरी तरह मिल भी न पाई थी कि घोड़े की तेज गति के साथ वे भी सर्‌र-सी सरक गईं।

गलाल को आज पहली बार घोड़े पर गुस्सा आया। अपना गुस्सा उतारने के लिए ज्यों ही वह उसे भगाने लगा, उसकी नजर रास्ते मे पड़ी एक चीज पर अटक गई। ध्यान से देखा तो वह तलवार थी। अब उसे अंदाज आया, घोड़ी जिस समय शरारत कर रही थी, उसने उस अश्वारोही के पास से कुछ गिरते हुए देखा था। मन में विचार आया कि आवाज़ देकर सवार को वापस बुलाए। पर तब तक तो वह काफी दूर जा चुका था। इसके अतिरिक्त गलाल ने यह भी सोचा कि बेचारा इस तूफानी घोडे के संकट मे से तो अभी बडी मुश्किल से निकला है, वापस बुलाकर उसे पुनः संकट मे डालना ठीक नही रहेगा !

उसने घोड़े से नीचे उतरकर तलवार उठा ली। तलवार सचमुच आकर्षक थी। हरे मखमल की म्यान ! ऊपर-नीचे बालिश्त-भर लंबाई का स्वर्ण-आवरण ! मूठ पर सुनहरी बेल थी। तलवार आधी खीचकर देखी। महाकाली की जिह्वा-सी पैनी थी। गलाल के हाथों मे वह बहुत छोटी और हल्की लग रही थी।

तलवार को म्यान मे डालता हुआ गलाल बड़बड़ाया—'आखिर तलवारवालें की वय भी तो इतनी ही छोटी है न ! कहीं का राजकुमार लगता है !

गलाल को जोश चढा। अपने-आपसे कहने लगा—'लाओ, इसे दे आता हूं। ज़रा ताना भी मारता आऊंगा कि अरे, क्षत्रिय होकर तलवार खो दी ?

ज्यों ही घोडे पर सवार होने लगा, उसे कुछ देर पहले घटित घोड़ों की टकराहट याद आ गई। हालांकि अभी उसका घोडा नियंत्रण में था, तथापि उसकी पौरुषपूर्ण तनी हुई ग्रीवा अभी भी प्रेयसी की दिशा में मुडी हुई थी। उसका विशाल वक्षस्थल भी कबूतर की गरदन की तरह ही फूला हुआ था। आंखों में एक अजीब प्यास थी और तलब भी वैसी ही प्रतीत होती थी। नासिका की सांस तेजी से चल रही थी। यद्यपि हिनहिनाहट की आवाज़ धीमी थी, पर वह लगातार जारी थी। घोड़े की यह दशा देखकर गलाल तुरंत समझ गया कि उसे घोड़ी की दिशा में

मोड़ा नही कि पवन के पंखों पर सवार हो जाएगा।

गलाल रुका रहा ताकि घोड़ी मदिर तक पहुंच जाए। पर इस बीच वह अपने घोड़े को डांटने लगा, "देख बदमाश! शैतानी कर रहा है? यदि मर्यादा का उल्लंघन किया तो देख लेना यह तलवार!" म्यान वाली उस तलवार को इधर-उधर हिलाता हुआ बोला, "तलवार भी कुआरी लगती है और तेरे ही रक्त की पीठी[1] उसे अर्पित कर दूगा!"

दूर से आनेवाली घोडी की हिनहिनाहट ने घोड़े के पौरुष को चुनौती दी। वह ताव में आ गया। आज तो जैसे वह गलाल की धमकियों पर भी कान देने को तैयार न था। संपूर्ण वनप्रांतर पुनः उसकी हिनहिनाहट से प्रतिध्वनित हो उठा।

अश्वारूढ़ होते ही गलाल ने समय का हिसाब लगाया—'मेरे वहां पहुंचने तक तो उसने घोड़ी को बांध भी दिया होगा।'

लेकिन इसके बावजूद गलाल ने लगाम ढीली नहीं की। नदी के टीले भी अश्व की गति को रोक रहे थे। एक तरफ वह मंदिर के प्रांगण में पहुंचा। दूसरी तरफ वह अबोध युवक जामुन के पेड़ से घोड़ी बांधकर इस तरफ लौटा। उसके हाथ सहसा सूनी कमर पर पहुंचे। आंखें गलाल के हिनहिनाते हुए घोड़े की ओर मुड़ी हुई थीं। हृदय की स्थिति अतिशय द्विधापूर्ण थी। एक ओर तलवार खो जाने की खिन्नता थी तो दूसरी तरफ गलाल को इस ओर आते देखकर इस खयाल से मीठी खुशी भी महसूस हो रही थी कि वह अपने घोड़े पर नियंत्रण खो बैठा है। साथ ही गलाल के पौरुषमय अंगविन्यास की सुषमा देखकर वह हक्का-बक्का-सा रह गया। गलाल के सौंदर्य ने उसे मुग्ध कर दिया था।

पर तभी उसने देखा कि अश्वारोही ने निकट आकर अपनी दाहिनी भुजा उसकी ओर बढ़ा दी है। नोक से पकड़ी हुई तलवार और उस प्रलंब बाहु का सौंदर्य देखते ही वह मासूम युवक समझ गया कि घोड़ी की दिशा में जाने को व्यग्र उसका अंधा बना हुआ घोड़ा संपूर्णतः उसके नियंत्रण में है कि वह उसकी रानों के नीचे जैसे खेल रहा है।

१. चिक्कस; वर-कन्या को लगाने का हल्दी-जौ का आटा और तेल मिला उबटन।

वह सुकुमार मासूम युवक अब पूरी तरह से झेंप गया था। लज्जा की लहरों ने उसे लपेट लिया था। तलवार लेने के लिए बढ़ते हुए उसके सुकोमल चरणो की गति मे, उसकी पतली देहलता मे एवं प्रथम दृष्टि मे, ध्यानाकर्षक उसकी सुरम्य ग्रीवा मे कस्तूरी की सुवास-सी लज्जा की मधुमय गंध व्याप्त हो गई थी···।

तलवार लेने के लिए हाथ फैलाते समय उसने अपनी लज्जा के शिला-भार से दबी जा रही पलको को ज्यों-त्यों कर ऊपर उठाया। गलाल की बड़ी-बड़ी रतनारी आखो से एक मधुर भय के साथ उसने नज़र मिलाई मानो नयन मिलते ही वह जल जाएंगे !

ऊपर से मुहजली बैरन तलवार भी हाथ मे आ-आकर, उछलते हुए घोड़े के साथ-साथ हवा में सरक-सरक जाती थी। अंततः तीसरे प्रयास के दौरान तलवार पकड़ मे तो आई पर साथ में उस अश्वारोही का ताना भी ले आई: 'नौजवान! आज से यह याद रखना कि क्षत्रिय वीर बाहुपाश में बंधी हुई नवयौवना प्रियतमा को भूल सकता है, पर कमर में लटकी हुई तलवार को कभी नहीं भूलता!'

उस मासूम तरुण का हृदय आभार प्रकट करने के लिए तड़प रहा था पर धनुष की कमान जैसा ऊपर का सुंदर-सुगठित होंठ, प्रत्यंचा के समान नीचे के होंठ से कसकर चिपक गया था। अधर-द्वार के पीछे शब्द जैसे बंदी बन गए थे···!

लेकिन यह अच्छा हुआ कि ऐसे विषम क्षणों में भी नयनों ने अनुशासन-हीन होकर, स्वधर्म का पालन करते हुए गलाल की आशामय निर्निमेष दृष्टि के प्रति तीन-चार बार मंद-मंद मुस्कान सहित कृतज्ञता प्रकट की। मासूम युवक के अधर मौन थे पर आंखों को बोलने से कौन रोक सकता था?

गलाल ने घोड़े को घुमा दिया और अनायास बिदा लेते हुए कहा, "जय भवानी!" पीछे से प्रत्युत्तर मिला, "जय भवानी!"

पथरीली भूमि पर पड़ती घोड़े की खड़खडाहट-भरी टापों के मध्य मासूम सवार के शब्द भले ही अटक गए हों, परंतु उस ध्वनि में निहित मंजुल झनकार गलाल के कानों में से होकर हृदय में तत्क्षण बद्धमूल हो गई

थी। उसने संशयपूर्ण आंखों से पार्श्व में देखने की कोशिश भी की। वह कुछ पूछना भी चाहता था। पर प्रश्न अनकहा ही अधरों में रह गया, क्योंकि इस बीच प्रणय-पिपासु घोडा आगे के पैर पगडंडी पर उछालता हुआ और पिछले पैर बायी ओर के पत्थरों पर गिराता हुआ, टेढा-मेढा उछलता एवं शरारत करता हुआ करीब एक फर्लांग की दूरी तय कर चुका था।

फागुन माह में जिस प्रकार फगुहारे होली खेलते हैं, ठीक उसी प्रकार से गलाल का घोड़ा भी चक्कर खाता हुआ और आगे बढने से इनकार करता हुआ सिर्फ गलाल के आंतक के कारण धीरे-धीरे पैर बढ़ा रहा था।

गलाल ने पुनः पार्श्व में एक नजर डाली और उस क्षण मे उसके मन पर से अगम रहस्य का परदा हट गया। मासूम युवक के एक हाथ में तलवार की मूठ और दूसरे में उसका छोर था। कमल-नाल-सी लंबी ग्रीवा को एक ओर झुकाकर अदा से खड़े हुए उस मासूम युवक की आकृति ही जैसे बदल गई थी। कसे हुए अंगरखे में से उभरा हुआ वक्षस्थल झांक रहा था। उसके खड़े रहने की अदा में भी एक अपूर्व और निराली लचक थी। सुदीर्घ ग्रीवा में नज़ाकत की बेल के समान हीरे-मोतियों की माला झूल रही थी। पिंडलियों पर पायजामा भी ढीला-ढीला-सा लगता था। पर इन सबके सौदर्य की अपेक्षा ज्यादा आकर्षण तो उसकी उस दृष्टि-धार में था जो कि उसके मुग्ध-भाव से छलकते हुए नयनों से प्रवाहित होकर गलाल के अल्हड़ हृदय-सरोवर में अनिर्वचनीय वासंती भंवरें जगा रही थी। गलाल बड़बड़ाया—'अरे, तेरी की, यह तो लड़की है! आस-पास के किसी राजा की राजकुमारी लगती है।'

माही नदी की चट्टानों पर होकर आगे बढ़ते समय तक तो गलाल के अंतर्मन में मासूम युवक का परिधान भी बदल गया था। कम घेरे का घुंघरुओं वाला एड़ियों को ढकता हुआ घाघरा, सोने-चांदी के तारों से भरी हुई कटोरियों में चांद-सूरज चमकाती हुई एवं कसी हुई कंचुकी तथा आधे घाघरे को ढकी हुई और शेष को अपूर्व आभा प्रदान करती हुई नये रेशम की ओढ़नी, गलाल के मनोलोक के किसी कोने में फरफरा रही थी।

गलाल को नदी के मध्य में रामैये वाला एक जोगी मिला। उसने

एक तरफ हटकर सादर उसका अभिवादन किया। अभिवादन स्वीकार करते समय उसके मन में उस मासूम युवक के विषय में प्रश्न पूछने की इच्छा भी हुई। पर ऐसी इच्छा मन की धरती पर पहली बार ही अंकुरित हुई थी। प्रथम अवसर होने से अथवा पता नही किसी अज्ञात कारण से, गलाल ने स्वयं का मज़ाक उड़ाया—'किसी राजा की बेटी हो या सामंत की, तुम क्यो पंचायत कर रहे हो बधु ? अरे वह लड़का हो या लडकी, तुम्हें इससे क्या लेना-देना है ? आखिर यह सब तुम क्यों जानना चाहते हो ?'

प्रणय की उस खींचतान वाली भूमि से गुज़रते समय घोड़े ने हिन-हिनाकर एक बार पुन: उस वनप्रातर को रोमांच से भर दिया।

गलाल ने देखा कि सामने से एक सवार घोड़े को पीटता-भगाता हुआ आ रहा है। समीप आते ही उसने घोड़े की गति को धीमा कर गलाल से प्रश्न किया, "ठाकुर ! क्या राह मे तुम्हें कोई सवार मिला था ?"

"उसका रूप-रंग ?"

"जवान, तुमसे भी छोटी वय का।"

"ऐसे तो बहुत मिलते है, कैसे पता चले ?" घोड़ा रोककर गलाल ने कहा, "कोई निशानी बताओ ?"

"कबूतर के रंग की घोड़ी है और सवार भी तुम्हारे जैसा सुंदर है।"

"साफ-साफ कहो, सरदार ! लड़के के वेश में लड़की है न ?"

चालीस वर्ष के उस सरदार का हृदय धड़कने लगा। कहा, "हां भाई साहब ! आपको कैसे पता लगा ?" गलाल के पैरों में सोने का तोड़ा, सिर पर नगजड़ित सिरपैच तथा गले में हार देखकर सवार को वह राजकुमार प्रतीत हुआ। बात करने की शैली भी राजसी और अधिकारपूर्ण लगी। उसने सविनय पुन: पूछा, "आपने बाई साहब को कहां देखा ?"

"तुम्हारी बाई साहब उस मंदिर में हैं और निरापद हैं। पर समय को पहचानो सरदार ! यहा के जंगलों में स्यार तो कम है पर मुगलों की भरमार है। आबरू खोने का वक्त भी आ सकता है !"

सरदार ने महसूस किया कि ज़रूरत से ज़्यादा सीख दी जा रही है। घोड़े को आगे करते हुए कहा, "ठाकुर ! ज़माना देखकर ही तो वेश

बदला है।"

याद आते ही गलाल ने मूल प्रश्न किया, "आप किस राज्य के हैं सरदार ?" उसने यह भी देखा कि जिस राह से सरदार आया था, दूर उसी राह पर से एक पालकी इधर आ रही थी। पर सरदार ने प्रश्न की ओर कतई ध्यान नही दिया। वह कोई पागल थोड़े ही था कि राज्य का नाम बताकर बेपर्दा घूमने वाली राजकुमारी की बदनामी करके खुद ही राज्य की अपकीर्ति करवाता ! उसने जैसे प्रश्न सुना ही न हो यों घोड़े को एड़ लगाई।

गलाल समझ गया। राह पर आगे बढते हुए उसने स्वयं को उलाहना भी दिया—'पहले नाम निकलवाकर समझदारी क्यो नही दिखाई ?'

फिर तो यह सोचकर कि देरी होने पर मा डांटेंगी, उसने घोड़े की लगाम मुक्त छोड़ दी और सरसराती हुई हवा मे गलाल स्वयं ही अटकल लगाने लगा—'इस तरफ डूगरपुर की सरहद है, अतः वह डूगरपुर के राजा या उसके किसी जागीरदार की बेटी होनी चाहिए···।' फिर स्वयं ने ही इस निष्कर्ष का खडन किया—'नही, डूगरपुर का सिसोदिया राजवश आबरू जाए ऐसा जोखिम आमंत्रित नही करेगा। दूसरे भी तो कई राज्य हैं ? इस तरफ बासवाडा है और उधर प्रतापगढ़ है। इस तरफ लूणावाड़ा, रायपुर और कडाणा के राज्य भी तो है···। स्वयं पर झुझलाते हुए अत में उसने कहा—'अरे छोड भी इस माथापच्ची को ! राजा की हो या ठाकुर की, तुझे क्या पड़ी है ?'

इसके पश्चात् वह दादागुरु के पत्र पर विचार करता हुआ मोर्चे पर पहुंचने की उधेड़बुन में उलझ गया। उसकी नुकीली कच्ची मूछों में से हंसी फूट रही थी—'झाली भाभी मेरा मजाक उड़ाती है, मुझे छोकरा समझती हैं···पर अब चखेंगी मज़ा···! देखना यह है कि दादाभाई कितनी सेना और कौन-कौन से सरदार सौपते है ? युद्ध मे यदि शौर्य-प्रदर्शन का अवसर मिला तो एक बार तो झाली भाभी की बोलती बंद कर दूगा··· वे तो दादागुरु का पत्र देखकर ही दांतों तले उंगली दबा लेंगी···।'

मन में झाली भाभी को, घोड़ी और खड्गवाहिनी उस कुमारी का किस्सा सुनाने का भी विचार दौड़ गया। वह तो भाभी के समक्ष यह भी

कहना चाहता था कि यों न समझना कि सिर्फ कोटा राज्य मे ही सुदर लड़किया जन्म लेती है···गुजरात के मेरे ननिहाल में भी, मैं अपनी ही आंखों से एक से एक बढ़कर सौदर्य-प्रतिमाएं देख आया हूं···।

दरअसल गलाल अपने हृदय की गहराई मे उस पुरुष-वेशधारिणी राजकुमारी के प्रति एक ऐसा विचित्र और अनिर्वचनीय आकर्षण अनुभव करता था कि वह झाली भाभी से कहना चाहता था—'भाभी साहब ! वह कुमारी पुरुष-वेश में इतनी अद्‌भुत थी कि यदि युद्धभूमि मे उसके सम्मुख उतरना पड़े तो हराने की अपेक्षा उसके हाथों हारना ज्यादा प्रिय लगेगा···!'

इस प्रकार के विचारों के ताने-बाने में उलझे-उलझे सहसा उसे बोध हुआ और वह बुदबुदाया—'देख गलाल ! भाभी के समक्ष उस कुवरी की चर्चा छेड़ बैठने की मूर्खता मत करना। वरना उल्टे वह तेरा यह कहकर मज़ाक उड़ाएगी कि वाह रे देवरजी ! एक ओर तो युद्धभूमि में जाने की बधाई लेने आए हो और दूसरी ओर उस रूप के टुकड़े का स्तुतिगान करने में लगे हुए हो···!'

इस आशका के साथ ही गलाल ने राजकुमारी के प्रसंग को मन से एक ओर धकेल दिया और भाभी से युद्धभूमि मे जाने की बधाई प्राप्त करने के लिए अधीर हो उठा।

'पहली बधाई भाभी की ओर से आएगी,' इस विचार के साथ ही गलाल की आंखो के आगे एक स्वप्निल दृश्य सजीव हो उठा—गोरे-गोरे शुभ्र चरण, क्षीण कटि, उभरा हुआ वक्ष-स्थल, सुदीर्घ ग्रीवा और हृदय-वेधक कजरारी आंखों वाली झाली भाभी जैसे उसे अनुराग-भरी दृष्टि से निहार रही है···! और गलाल ने पूरी तेज़ी के साथ दौड़ते हुए अपने अश्व को पुनः एक हल्की-सी एड़ मार दी।

माही नदी का संपूर्ण तटीय वनप्रांतर घोड़े की टापों से गूज उठा-पटाक्···पटाक्···पटाक्···पटाक्।

भाभी से उपहार

यह सुनकर कि गलाल बापू युद्ध में जा रहे है, अलीगढ़ की प्रजा इस असमंजस में पड गई कि वह हर्ष मनाए या दुखी हो ? गलाल न केवल राजधानी के लोगों का अपितु समस्त प्रजा का लाडला राजकुमार था। वह जितना खूबसूरत था उतना ही शूरवीर भी था। किसानों की फसल नष्ट करने वाले सूअरों के लिए वह साक्षात् काल के समान भयंकर था। लूटमार करने वाले डाकू-लुटेरे तो उसकी तलवार के प्रिय आहार थे।

एक बार भूखे-भटके पशुओं के समान, मुगल सेना की एक टुकडी इस राज्य में घुस आई। तब गलाल ने ही मोर्चाबदी करके आधी टुकड़ी को समाधिस्थ कर दिया और शेष दुम दबाकर भाग खड़ी हुई।

इसके लिए उसे गद्दीनशीन दादाभाई की फटकार भी सुननी पड़ी। दोनों के बीच एक गभीर झगड़ा होते-होते रह गया। यद्यपि राज्य छोटा था, पर बड़ा भाई एक स्वतंत्र राज्य का अधिपति था। उसे 'राजाजी' की उपाधि मिली हुई थी। पिता द्वारा स्थापित परंपरा के अनुसार वह आस-पास के बड़े-बड़े राज्यों से मेल-मिलाप रखते हुए अपने राज्य का संचालन कर रहा था।

यदि मुगल-सेना कभी आक्रमण कर भी बैठती थी तो वह उसे भी समझा-बुझाकर और प्रसन्न करके रवाना कर देता था।

परंतु स्वतंत्र और अक्खड़ स्वभाव के गलाल को बडे भाई की यह दूध-दही की बनिया-नीति बिलकुल पसंद नही थी।

लगभग चार माह पूर्व मेवाड़ के महाराणा राजसिंह ने चारों ओर दूत भेजकर छोटे-बड़े सभी रजवाड़ों को आमंत्रित किया और हिंदुओं पर थोपे गए जजिया-कर के विरोध में मुगल-सम्राट औरंगज़ेब से युद्ध लड़ने का निर्णय लिया।

दादाभाई की अनिच्छा के बावजूद गलाल, विचार-विमर्श के लिए आयोजित इस सभा में भाग लेने के लिए उदयपुर गया था। स्वयं के राज्य का कोई मान-सम्मान नहीं है, इस तथ्य की उसे वहां पूरी तरह

प्रतीति हुई थी। इस गणना का कारण यह नही था कि अलीगढ़ एक छोटा राज्य है। प्रधानतः तो अलीगढ राज्य की दब्बू नीति ही उस स्थिति के लिए उत्तरदायी थी। लौटने पर इस नीति की तीखी निंदा करते हुए गलाल ने बड़े भाई से कहा, "सबका प्रिय बने रहने का अर्थ है सबकी ढोलक बने रहना! इससे हमे क्या लाभ मिलेगा, दादाभाई? यह सही है कि हमे कोई परेशान न करे। परंतु हमें तो कोई मानता ही नही है और उदयपुर में तो मैंने स्वयं देखा कि हमारे राज्य का कोई भाव तक नही पूछता! वे लोग हमारी नीति को दब्बू लोगों की नीति कहते हैं और हमे जाति-च्युत-सा समझते हैं···।"

गलाल जब दादागुरु का पत्र लेकर पहुंचा तो बड़े भाई को अच्छा नही लगा। परंतु क्योंकि स्वयं पियोली मां ने गलाल को दलबल सहित भीमसिह के पास भेजने का निर्णय लिया था, अतः दादाभाई कर भी क्या सकते थे? भाभियां भी यह सुनकर उल्लसित हो उठीं कि गलाल युद्ध के लिए कूच कर रहा है!

संध्या का समय था। बड़े भाई की तीनों रानियां सास से मिलने महल पर आई थीं। बड़ी रानी झाली ने, परदे की आधी-अधूरी ओट में रहते हुए गलाल से कहा, "गलाल बापू! आप यदि युद्ध से विजयी होकर लौटे तो मैं आपको एक पुरस्कार दूगी!"

"क्या दोगी?" गलाल छत पर बैठा-बैठा भाले की लकड़ी पर लगी हुई चिप्पियों को कसकर बांध रहा था।

"भारी पुरस्कार।"

"आप तो भाभीजी, भारी पुरस्कार में या तो भैस देंगी या हाथी का बच्चा देंगी, अब तो संतुष्ट हो न?"

गलाल ने पक्का करने की दृष्टि से कहा, "देखना भाभीजी, मुकर मत जाना!"

"अच्छा तो एक काम करो देवरजी, अभी से ही मांग लो न?" भाभी देखना चाहती थी कि आखिर यह लाड़ला देवर क्या मांगता है!

गलाल को अब जाकर होश आया कि वह वचन पक्का कर लेने के

लिए तो तत्पर है, पर उसने अभी तक यह तो तय किया ही नहीं कि उसे क्या मांगना है ? तय करने का कार्य इतना आसान भी नही था ।

भाभी झाला-वंश में जन्मी थी । कोटा जैसे बड़े राज्य की इकलौती राजकुमारी थीं । जो चाहें वह देने की स्थिति में थी । पर झाली देने के सवाल पर असमंजस महसूस करे इसके पूर्व तो गलाल मांगने के प्रश्न पर ही दुबिधा मे पड़ गया । हंसकर कहा, "अभी तो मैं युद्ध में पूरी तरह से उतरा भी नही हूं—ऐसी स्थिति में विजय का पुरस्कार क्योंकर मांग सकता हूं ?" तुरंत जोड़ दिया, "भाभीजी ! अभी मांगने पर तो आप भी मुझे मूर्ख ही गिनेंगी न ?"

"ना, ना, बापू ? तुम मूर्ख नही हो ! बहुत चतुर हो । पर क्योंकि तुम बहुत बड़ी लड़ाई में पहली बार जा रहे हो अतः और कुछ नही तो केवल इसी बात पर अपनी बड़ी भाभी से गोठ मांग लो न ?" आगे कहा, "होली भी तो आ रही है !" इस वादविवाद के दौरान गलाल के मन में द्वंद्व जारी था । वह सोच रहा था कि आज नहीं तो कल ही सही, आखिर भाभी से क्या मांगूगा ? उनसे जागीर तो मांगी नहीं जा सकती; नगद अथवा गहने आदि उसे स्वयं नापसंद हैं । माग-मांगकर आखिर क्या मांगा जा सकता है ? श्रेष्ठ नस्ल का घोड़ा मागूं ? तलवार मागू ? भाला या कटार मांगू ? क्या मांगूं ? बंदूक भी मांग सकता हूं !

अपनी इस मीठी दुबिधा से पीछा छुड़ाकर गलाल ने पासा पलटा, "नहीं भाभी ! क्षत्रिय की संतान, किसी से माग ही नही सकती ! स्वयं दादाभाई या पियोली मां से भी पुरस्कार के नाम पर कुछ भी नहीं मांगूगा !"

"बस बापू···तुम एक बार लडाई में हो आओ···मैं तुम्हें बढिया चीज़ दूगी ।"

गलाल के मन मे अब उस चीज़ के पाने से ज़्यादा उस चीज़ का नाम जानने की इच्छा प्रबल हो उठी थी, लेकिन वह चीज़ क्या है ? मालूम तो हो कि झाली भाभी आखिर ऐसी कौन-सी बढ़िया चीज़ देने वाली हैं !

देवर-भाभी के इस रसमय वार्तालाप के समय पियोली मां झाली के पीछे आ खड़ी हुई थी । उनके मन मे भी उस पुरस्कार के विषय में

जानने की उत्कठा थी। धीरे से बगल में खिसककर वे ध्यानपूर्वक सुनती रही।

मुंह में पानी आ जाए ऐसी मिठास के साथ झाली रानी ने कहा, "पुरस्कार के रूप में नही, बल्कि तुम्हारे सम्मान के रूप मे, मैं तुमको तुमसे भी बढ़कर एक सुदर लड़की भेंट करूंगी !"

यह सुनते ही गलाल यू निराश हो गया कि जैसे जिसे वह असली शेर समझकर प्रहार करने गया था वह कागज का शेर निकला हो। "ओ··· हो···हो ! खूब कहा, भाभी जी !"

झाली भाभी को स्वाभाविक रूप से, यौवन, शौर्य और रूप से परि-पूर्ण अपने इस अल्हड देवर से ऐसे ही किसी उत्तर की आशा थी। हंस कर पूछा, "क्यो बापू, क्या हुआ ?"

"भाभी साहिबा। जब मामूली राजपूत के लिए लड़कियों की कमी नहीं है तो फिर मुझ जैसे युवक के लिए तो जितनी चाहूं उतनी लड़कियां प्रस्तुत है !" सचमुच गलाल के लिए लड़कियों का अभाव नहीं था। इस अल्प वय में ही कई जागीरों से मंगनियां आ चुकी थी।

पियोली मा जानती थी कि झाली बहू को अपने पितृ-कुल पर घमंड है। बेटे के इस उत्तर से वे अतिशय प्रसन्न हुई। वे स्वयं भी झाली रानी के घमड पर प्रहार करना चाहती थी। मन में शब्द भी प्रस्तुत थे कि 'बहूरानी जी ! तुम तो पुरस्कार देने के स्थान पर लेने की भूमिका बना रही हो।' पर झाली को बोलते सुनकर चुप रह गई।

देवर के उत्तर से झाली के मन में जैसे क्रोध उफन पड़ा। परदे की ओट में उसकी दुग्ध-धवल आंखें चमक उठीं। गर्दन थोडी बाहर निकाल-कर कहा, "स्त्री-स्त्री में अंतर होता है, देवर जी ! चूड़ावत सरदार की पत्नी भी स्त्री थी और जगत में दूसरी स्त्रियां भी हैं !"

गलाल को वह ताजी कहानी याद थी। चूड़ावत सरदार की नव-विवाहिता प्रिया ने पति के मन का मोह उखाड़ फेंकने के लिए स्वयं का सिर काटकर युद्धभिमुख पति के पास भेजा था।

पियोली मां के मन में यों भी इस अभिमानी बहू के प्रति दंश का भाव तो था ही और इस प्रसंग से तो जैसे उन्हें प्रहार करने का अवसर

मिल गया। आगे आकर सनसनाते हुए ये शब्द सुना ही तो दिए, "बहू-रानी ! यह मत भूलो कि पुरस्कार के रूप में मिली बहू लौंडी के बराबर मानी जाती है। मूछ पर ताव देने वाले महाप्रतापी राजाओं को मुर्दा मानकर संयुक्ता ने एक पुरुष-प्रतिमा को हार पहनाया था सो उसी का नाम मानुषी है और उसी का नाम पुरुष का पुरुषार्थ है !" आखिर गलाल भी तो चौहान कुल का था न !

खूबी की बात यह थी कि पियोली मां ने अपने पितृ-पक्ष के बड़े आदमियों की जान-पहचान के ज़रिये झाला वंश की इस राजकुमारी को बहू के रूप मे प्राप्त किया था। पर मिल जाने के बाद अब वे उसके प्रति ईर्ष्या का भाव रखने लगी थीं और उसे नीचा दिखाना चाहती थी।

म्यान मे से कटार के समान झाली रानी चौक में से बाहर निकली और सासजी की मर्यादा का ध्यान रखते हुए उनके स्थान पर गलाल को संबोधित किया, "मै भी देखूगी, देवरजी, कि इस युग में कौन स्त्री आपके पुरुषार्थ पर मुग्ध होकर आपके पुतले को हार पहनाती है ?" और सतरंगी ओढ़नी में से धनुष की प्रत्यंचा जैसी भौंहें तानकर उसने पीठ फेर ली। जाती हुई झाली रानी के पैरों में स्वर्ण-नूपुर झनझना उठे।

घायल सिहनी के समान क्रोध से उफनती हुई पियोली मां के मुख से सहसा ये शब्द फूट पडे, "याद रखना, झाली रानी ! पुतले को नही, बल्कि मेरे गलाल के मुर्दे को भी वीरांगनाएं वरमाला पहनाएगी !" बोलने के बाद ज्यो ही पियोली मां को अमंगल-सूचक 'मुर्दा' शब्द का बोध हुआ, वे जीभ काटती हुई सहसा मूक हो गईं।

मां द्वारा भाभी को इस प्रकार छेडा जाना गलाल को बिलकुल अच्छा नही लगा। जब से उसमें समझदारी आई है तब से उसे कई बार मा का व्यवहार ज़िद्दी ही नही, वरन् कठोर भी लगता रहा है; पर इस डर से कि मां को कुछ कहने पर वह कहीं उसी पर गुस्सा न कर बैठे, वह ऐसे अवसरों पर मां के समक्ष छोटा और अनजान बना रहता था।

पर आज वह कुछ कहने ही जा रहा था कि दो-चार पल के मौन के उपरात मां ने पुनः बडबड़ाना शुरू कर दिया, "चूड़ावत की रानी चतुर और पक्की थी ! वह जानती थी कि एक ओर तो महासागर-सी विशाल

सेना लेकर स्वयं मुगल-सम्राट, रूपनगर की राजकुमारी से विवाह करने जा रहा है और दूसरी ओर अंजुलि-भर सेना लेकर उसका पति उसे रोकने जा रहा है। इसलिए यूं भी सती तो होना ही है, फिर क्यों न अभी से अपना सिर काटकर नाम कमा लूं···?"

गलाल मां की इस बडबड़ाहट से क्षुब्ध हो उठा। वह वहां से उठकर द्वादशवर्षीय अनुज गुमान के आवास की ओर चलता बना···।

सच तो यह है कि गलाल की आत्मा को न तो संयुक्ता की तलाश थी और न ही वह किसी बड़ी रियासत का गद्दीपति बनने का अरमान रखता था। वह तो इसके विपरीत अपने प्राणों की प्रतीक इस उक्ति को कई बार दुहराता रहता था : 'हम क्षत्रियों के बेटे तो लौटाने की शर्त पर जीवन उधार मांगकर लाए हैं !'

अगर गलाल के मन में सचमुच राज्य और सिंहासन का मोह होता तो उसे पाने के लिए उसके पास राज्य की समग्र सेना थी जो दादाभाई की अपेक्षा उसे अधिक चाहती थी। इस हिसाब से तो पिता के सिंहासन पन आरूढ़ होना उसके लिए बायें हाथ का खेल था। अलीगढ़ के सिंहासन पर अधिकार स्थापित करना उसके लिए उतना ही आसान था जितना कि मक्खन में से घी निकालना। छोटे भाई द्वारा बड़े भाई को अपदस्थ कर पिता की गद्दी का अपहरण करना, नैतिकता में कहीं भी बाधक नही बनता था। ऐसा तो प्राय: होता रहता था और इसे एक प्रकार से महज़ राजनीति का खेल माना जाता था।

इसके सिवाय यह भी उल्लेखनीय है कि उसके अपने राज्य के इर्द-गिर्द जो अनेक राज्य थे उनमें कई इतने दुर्बल थे कि गलाल यदि चाहता तो उन्हें आसानी से हस्तगत कर सकता था। वह युग जिसकी लाठी उसकी भैंस का था। पर इस ज़िंदादिल युवक के मन में गद्दी की तृष्णा नहीं थी। इतना ही नहीं, वह नाम कर जाने की अभिलाषा भी नही रखता था। उसे तो बस सच्चे अर्थ में क्षत्रिय जीवन जीना था। वह बस यूं ही, 'कुछ नहीं' के रूप में जीना नहीं चाहता था। और फिर इसमें भी यदि विदेशी आततायियों से लडने का मौका मिले तो स्वर्ण से ज्यादा पीला और क्या हो सकता था?

और ऐसा जीवन जीने के लिए दादागुरु के पत्र ने अभी तक की रुद्ध जीवन-दिशाओं के सभी द्वार चट से खोल दिए थे।

दादाभाई ने राज्य के लश्कर मे से केवल दो सौ घुड़सवार और तीन सो पैदल सैनिक यानी कुल पांच सौ सैनिक ही दिए थे। तीन सौ घुड़सवार गलाल के पास पहले ही से थे। इस प्रकार मेवाड के पक्ष में एकत्रित राजपूताने के हजारों सैनिकों में ये आठ सौ सैनिक आटे में नमक के बराबर थे।

पर गलाल को इसकी ज़रा भी चिंता न थी। अगर पियोली मां ने उसे अपने तीन सौ सैनिकों के साथ अभियान की अनुमति दी होती तो वह भी उसके लिए पर्याप्त होती।

मात्र आठ दिन के पूर्वाभ्यास मे गलाल ने रात-दिन एक करके आठ सौ सैनिकों को, एक धागे में पिरोए हुए मनकों की तरह पूर्णतया अनुशासनबद्ध कर दिया था।

अपने से तीन साल बड़े वक़्तसिंह को उसने सेना का भार सौंपा। वक़्तसिंह ने सूबेदार, फौजदार एवं जमादार-हवालदार इत्यादि की कार्यकुशलता की जाच प्रारंभ कर दी।

और पियोली मां द्वारा राजपुरोहित से निकलवाए गए शुभ मुहूर्त के अनुसार सोमवार की प्रात.वेला आ खड़ी हुई।

पूर्व मे अरुणोदय की पहली किरण के साथ ही नगाड़े पर कूच का डंका बज उठा। गलाल ने राजपुरोहित से मंगल आशीर्वाद प्राप्त किया। महल के दुर्ग से विदा देते हुए तीनों भाभियों ने कुकुम-तिलक लगाकर पुष्पहार पहनाए और देवर की बलैयां ली। महारानी झाली ने तो गलाल के गले मे सुनहरी डोर वाली कटार भी जनेऊ की तरह पहना दी।

गलाल उस प्रियदर्शिनी कटार को हाथ में लेकर उससे खेला भी। कटार की हाथीदांत की मूठ हीरों से जड़ी हुई थी। मखमली म्यान पर सोने की ज़री का काम था। वह ऐसा लगता था जैसे उस पर स्वर्ण-धूलि छिटक दी गई हो।

झाली भाभी की इस प्रिय भेंट ने गलाल को गद्गद कर दिया। उसने खखारकर कहा, "झाली भाभी! आशीर्वाद दो कि मैं तुम्हारी

भेंट को आलोकित कर सकू।"

तुम स्वयं ही मां के आशीर्वाद हो, देवर जी !" झाली के नयनों मे राग उभर आया। बलैया लेते हुए कहा, "शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर जल्दी लौटना, बापू !" बोलते-बोलते गला भर आया।

झाली भाभी की कटार को देखते-देखते गलाल को शक्ति-मंदिर की वह कमनीय तलवार और उसे धारण करने वाली वह रूपसी याद हो आई। केवल इतना ही नहीं, स्मृति के साथ-साथ हृदय में यह भावना बद्धमूल हो गई कि वह प्रियदर्शिनी राजकुमारी जैसे पांच-सात वर्ष छोटी भाभी की ही प्रतिकृति है···।

जाने-अनजाने गलाल का हृदय यू महसूस करने लगा कि जैसे कटार के पीछे वह छोटी-सी तलवार भी विद्यमान है और भीमसिंह की छावनी वाले गुजरात के उस सीमांत प्रदेश में पुन· उस कुमारी से भेंट होने वाली है···उसके मन में एक अनाम मिलन-प्रतीक्षा जाग रही थी···।

पियोली को एक ओर जहा झाली रानी के ये उपहार-आशीर्वाद पसंद थे तो दूसरी तरफ देवर-भाभी की यह आत्मीयता, यह आतरिक राग मन के किसी कोने को कुरेद रहा था···।

दादाभाई को भी झाली रानी और छोटे भाई के बीच का यह मीठा संबंध खटक रहा था···।

राजमहल से लगाकर उत्तर में स्थित ढोली दरवाजे तक का वह संपूर्ण राजमार्ग लोगों ने अशोकवृक्ष के पल्लवो और फूलो के तोरणों से सजाया था। मुहल्लेवार जैसे कोई प्रतियोगिता आयोजित की गई हो। यो स्थार-स्थान पर धनुषाकार दरवाजे खड़े किए गए थे और उन्हें एक-दूसरे से बढ-चढकर सजाया गया था। यू भी, गलाल नगर की ललनाओं में बहुल-बहुत लोकप्रिय था। वह नगर की रमणियो की आंखों का तारा था और आज तो फिर वह स्वयं हिंदू धर्म की प्रतिष्ठा के प्रतीक, मेवाड़ के महाराणा की सहायता पर जा रहा था। अतः अनेकानेक स्त्रियों ने तो संदूको में से जरी की साड़ियां निकालकर मंडप-रचना के लिए सहर्ष दे दी थीं और मुहल्लों के नवयुवकों ने रात-रात-भर जागकर उन्हें दरवाज़ों एवं पोल के आगे के मंडपों पर सजाया था।

राजपथ के गवाक्षो और अटारियो मे जल्दी सुबह से ही पुष्प-गुच्छ गुलाल-भरी थालियां, अक्षत की कटोरिया और गुलाबजल की झारियां तरतीब से सजा दी गई थी। स्त्रियो और बालकों के मध्य अभिनंदन-कार्य का बटवारा भी कर दिया गया था। बड़े घरो की युवतियां कीमती कपडों और आभूषणों से सजधजकर चादी की थालियो मे कुकुम एव अक्षत लिये द्वार-द्वार पर स्वागत करने के लिए खड़ी हुई थी। उनके पास कलश लिये कुमारिया और पुष्प-मालाए लिये युवतिया भी जमा थी।

वैसे तो राजधानी के नागरिकों के लिए छोटी-बडी लडाइयां और सैनिको का आवागमन कोई नयी बात नही थी। परंतु महाराणा के पक्ष मे मुगल-सम्राट से युद्ध लडने के लिए तो अलीगढ़ की सेना पहली बार ही कूच कर रही थी और वह भी सर्वप्रिय गलाल बापू के नेतृत्व में !

ज्यों ही निशान-डके के साथ गलाल की सेना राज मार्ग पर अग्रसर हुई, राजधानी की सपूर्ण हवा ही जैसे बदल गई। यद्यपि यह आठ सौ सैनिको का छोटा-सा अभियान था, पर अलीगढ की प्रजा ने तो इस प्रकार का अभियान पहली बार ही देखा था। अशोक-पल्लवों के तोरणों और रंग-बिरंगे द्वारो के ऊपर अट्टालिकाओं के झरोखे और गवाक्ष सुंदर वस्त्रा-भूषणो से सजे हुए बच्चों की उपस्थिति के कारण हिलारें लेती हुई फूल की क्यारियों के समान प्रतीत होते थे। अटारियो पर से गुलाल के बादल उड रहे थे, फूलो की अनवरत वर्षा हो रही थी और वातावरण में चारों तरफ गुलाव जल की फुहारों की खुशबू फैल गई थी। बड़े-बड़े मडपों के आगे साक्षात कामदेव के अवतार के समान इस कुमार को कुकुम का तिलक लगाकर और उसे हार पहनाकर आकर्षक रग-बिरगे परिधानों से सजी हुई नगर-रमणियां आज जैसे स्वयं को धन्य मान रही थी।

और यह सब देखकर दादाभाई के मन मे अपने अनुज के प्रति एक सहज विराग भाव जाग रहा था।

गलाल भी अभिभूत-सा सोच रहा था, नगरजनों द्वारा अर्पित यह मान-सम्मान ग्रहण कर जिस शान के साथ मैं गाते-बजाते प्रस्थान कर रहा हूं, उसी के अनुरूप यदि युद्ध मे पुरुषार्थ प्रदर्शित कर लौट सका तब तो इसकी सार्थकता है !"

पर इस विचार के साथ ही उसे याद हो आया कि अभी भीमसिंहजी की सेना तो गुजरात की सीमा पर महज चौकसी करती हुई ऊंघ रही है, ऐसी स्थिति मे झाली भाभी की कटार को नाम-भर के लिए भी किसी शत्रु की बलि कैसे मिल सकती है ?

ज्यों-ज्यों गलाल की सेना पश्चिम की ओर बढती गई, त्यों-त्यों उसकी यह निराशा की अनुभूति भी गहरी होती गई। युद्ध करने को बेचैन हाथ निराशा के कारण ठंडे होते जा रहे थे ।

पर साथ ही गलाल का हृदय यह सोचकर आशान्वित हो उठता था कि जिस समय वह दादागुरु से पत्र लेकर रवाना हुआ था उस समय उस प्रियदर्शिनी युवती के ही सर्वप्रथम दर्शन हुए थे। वह निरंतर यह सोचकर मन को आश्वस्त कर रहा था कि कुछ भी हो, शकुन तो अच्छे हुए हैं। संभव है उस कुवरी से ही पुनः कही भेंट हो जाए ! यह आवश्यक नही कि वह शक्ति-मंदिर के आस-पास के ही किसी राज्य की हो ! जब मैं स्वयं सुदूर उत्तर से दादागुरु से मिलने आया था तो फिर यह भी तो संभव है कि वह भी पाटण की ओर से आई हो···!"

जो भी हो, पर उस मनमोहक शकुन को याद कर गलाल फिर से उत्साहित हो उठता है। कुंवरी की स्मृति उसकी मूर्छा को दूर कर देती है। उसकी चेतना आशा की नयी धूप में नवजीवन के आह्लाद से अनुप्राणित हो उठती है। वह मन ही मन कहता है—'तू देखना तो सही ! मां ने कई बार कहा है कि शकुन दीपक के समान होता है··· फिर तुझे तो मूर्तिमान दीपशिखा के शकुन हुए थे···क्यों गलाल ? ठीक है न ?'

फूलकुवर

गलाल को यह सोचकर गहरी निराशा अनुभव होती थी कि उसे युद्ध नही करना है, अपितु सिर्फ चौकसी करनी है। निराशा की इस मनःस्थिति में एक ओर यदि वह उस शुभ शकुन की स्मृति से आशा, बल और

उत्साह प्राप्त कर रहा था तो दूसरी ओर वह मासूम युवा सौंदर्य भी गलाल का पता लगाने की तलाश में लगा हुआ था।

तलाश तो उसने मिलन-क्षण से ही आरंभ कर दी थी, उसकी तलाश की अपनी सहज सीमाएं थी। पहली बात तो यह कि वह स्त्री थी और ऊपर से फिर कडाणा की राजकुमारी! इसलिए आखिर तलाश के दौरान भी वह किस हद तक गहराई मे जा सकती थी? उसने उस मुजरा करनेवाले जोगी से पूछा था, "तेरा जिस सवार से सामना हुआ वह कौन था, जोगी? क्या तू उसे पहचानता है?"

प्रश्नकर्ता के कोकिल-कंठ से ही जोगी भाप गया कि वह लड़का नहीं लड़की है। पर जैसे कुछ समझा ही न हो यो अबोध बनकर उसने चर्चा और आगे बढ़ाई। सविनय उत्तर दिया, "नही पहचानता, बापू!"

"तू कहां का निवासी है?"

"सागवाड़ा के पास जो ठाकरडा गांव है न, वही का!"

"इतनी दूर से यहां आया है?"

"हां बापू! बांसवाड़ा से लौट रहा हूं।"

"किन-किन राज्यों में फेरी लगाता है?"

"डूगरपुर, बांसवाड़ा, देवलिया और प्रतापगढ़। और इस तरफ लूनावाड़ा, कडाणा और रामपुर—इन सभी राज्यों में घूमता रहता हू।"

"अच्छा! रजवाड़ों में घूमता है? क्या करता है?"

"गाता हूं बापू! यही मेरा धंधा है" और साथ ही जोगी ने गर्व सहित जोड़ दिया, "आपकी अनुकंपा से मेरा नाम राजा-महाराजाओं और जागीरदारों में सुपरिचित है।"

"तुम्हारा नाम?"

"अमरिया है, बापू"

"अरे हां, मैंने भी एक बार तेरा गीत सुना है," कहते-कहते उस. सुंदर मुख पर स्मरणजन्य आह्लाद का प्रकाश फैल गया।

इसे देखकर अमरिया को प्रसन्न होकर यह पूछने का साहस हुआ—"बापू! आप किस राजवंश के कुलदीपक हैं?"

वह स्त्री अवश्य थी। पर थी तो आखिर राजपुत्री न! उसने इस प्रकार

प्रतिप्रश्न किया जैसे अमरिया का प्रश्न सुना ही नहीं है, "तब तो तू राजकुल के सदस्यों को भी पहचानता होगा ?"

"पहचानता हूं" और फिर तुरंत जोड दिया, "पुरुषों को तो पहचानता हूं, पर शेष रनिवास को तो परदे की ओट में रहकर ही सुनता है न बापू!" अमरिया जैसे अंतर की आखो के आगे कडाणा का राजदरबार आयोजित कर यह देखने का प्रयास कर रहा था कि इस राजकुमारी को शायद कही देखा हो !

कुंवरी ऐसे स्वर में बोली जैसे आधी बात स्वयं से और आधी जोगी से कह रही है, "तब तो, हां ! वह सरदार, शायद तूने जो राज्य गिनाएं हैं उनसे बाहर का प्रतीत होता है, नही ?"

'ऐसा ही लगता है, बापू ! शक्ति मां के देवालय में तो मेवाड़-जोधपुर से लगाकर सोरठ-कच्छ तक के राजागण आते है। सबको मैं पहचान सकता हूं ?"

वास्तव में कुवरी कुछ आगे भी पूछना चाहती थी। पर इतने में तो वह सरदार सामने तट पर चढ़ता हुआ दिखाई दिया। अतः उसने अपनी बातचीत को संक्षेप में निपटा दिया, "ठीक है, कडाणा आना। दरोगा से कहना कि फूलकुंवर दी ने मुझे गीत गाने के लिए बुलाया है।"

अमरिया ने हर्ष प्रकट करते हुए कहा, "अवश्य कुंवरी दी ! यही से सीधा कडाणा आऊंगा !" हाथ के रामैये के समान अमरिया की हृदय-वीणा के तार भी इस निमंत्रण की हवा से जैसे झनझना उठे···गूंजने लगे···।''

"ठीक है," कुंवरी ने जाते-जाते पीछे देखकर एक बार पुनः आग्रह किया, "जरूर आना !"

अमरिया को निमंत्रण देते समय तो फूलकुंवर के मनोलोक में गीत सुनने की इच्छा ही अग्रस्थान पर थी। पर महल में पहुंचने के उपरांत ज्यों-ज्यों वह तलवार का प्रसंग याद आता गया और उस आकर्षक अश्वा-रोही का स्मृति-चित्र धुंधला होने के बजाय क्रमशः साफ होता गया, त्यों-त्यों फूलकुंवर के मन-प्राण भी अमरिया की अधिकाधिक प्रतीक्षा करने लगे।

उसने यह गणना भी कर डाली कि यदि घोड़ी की पीठ पर यात्रा करने में इतने दिन लगते हैं तो पैदल-यात्रा में अधिक से अधिक कितने दिन लगेंगे ? ड्योढ़ी-दरोगा और राजमहल के प्रवेश द्वार-रक्षकों को भी यह आदेश दे दिया कि यदि अमरिया जोगी आए तो उसे रोकना मत।

गीत-वीत तो एक तरफ रहा, फूलकुवर तो भावी व्यूह-रचना पर विचार करने लगी—'क्यों न इस घुमक्कड़ आदमी से ही कहा जाए कि यदि वह कामदेव के अवतार जैसे उस राजकुमार का अता-पता लगा ले तो उसे भारी इनाम दिया जाएगा।'

दूसरे दिन फूलकुवर ने इस योजना में भी संशोधन कर डाला—'मात्र इनाम का वचन देना ही पर्याप्त नही है; उसे कुछ पहले से ही दे देना चाहिए, इससे उसके पैरों मे गति रहेगी।'

तीसरे रोज़ तो उसने इनाम की चीज भी निश्चित कर ली—'सोने का यह हार देखते ही वह खुश हो जाएगा···नही ?'

चौथे रोज़ हार के अतिरिक्त यह भी तय किया कि 'इसके सिवाय ऊपर से उसे कहूंगी कि यह इनाम तो महज राह-खर्च के रूप मे है··· वास्तविक इनाम तो तब दूगी जब तू राजकुमार का सही-सही पता ढूंढ लाएगा।'

गणना के अनुसार दिन बीत जाने पर भी जब अमरिया नही आया तो फूलकुवर ने ड्योढी-दरोगा और द्वार-रक्षकों के पास बार-बार दासी भेजकर पूछताछ करवाई, "जोगी को किसी ने रोका तो नही था?···सब प्रहरियों को बराबर सूचित तो कर दिया था न ? जोगी का नाम अमरिया है···चाहे फूलकुंवर को गीत सुनाने की बात कहे या फिर मुजरा करने की बात कहे; कुछ भी क्यो न कहे पर उस अमरिया जोगी को कोई रोकेगा नहीं और ड्योढी के पहरेदार मुझे तुरंत उसके आगमन की सूचना देंगे।"

प्रतिक्षण पैदल यात्री अमरिया की बाट जोहती एक युवती ! युवती भी और राजकुमारी भी। राजकुमारी एक विरहिन के रूप मे। वह यह भी भूल गई कि उसने किस प्रकार यात्रा-काल की गणना की थी। दिन बीतते गए और इसके साथ-साथ अमरिया पर उसका रोष क्रमशः बढ़ता

गया—'कुछ भी हो, आखिर है तो भिक्षु जाति का न ? रास्ते मे पड़ने वाली जागीरों मे भटक गया होगा अथवा क्या भरोसा लूनावाड़ा जैसे राज्यों मे आटा मांगने चला गया हो···फिर तो बस समझ लो कि एक महीने पर बात गई।'

बेचारे अमरिया को क्या पता था कि फूलकुंवर उसके गीतों को सुनने के लिए इस कदर लालायित और परेशान है ! यदि उसे यह पता होता तो वह बीच की जागीरों में एक पंथ दो काज करने के लिए नहीं रुकता।

यदि उसे सहज रूप से यह गंध मिल गई होती कि कडाणा की राजकुमारी कुंआरी है, और उससे पूछे गए अधूरे प्रश्न के पीछे प्रेम की चिनगारी छुपी हुई है, तब तो फिर उससे कहने को कुछ शेष भी न रह जाता। वैसे भी वह स्वयं एक कवि-जीव था। उसके ध्यान में यह बात आते ही कि वह दो राज्यों के कुवर-कुंवरी के मिलन में पुल बन रहा है, माध्यम बन रहा है, स्वतः ही वह जोगी से तुरंत हस बन जाता और आठ दिन की जिस यात्रा को विरहाकुल फूलकुवर ने चार दिन की अनुमानित कर लिया था उसे वह सत्य सिद्ध कर दिखाता।

परंतु आठ दिन के स्थान पर अमरिया आखिर पंद्रह दिन में पहुंचा।

उसने डरते-डरते महल के दरवाज़े की ओर कदम बढ़ाए। मन में शब्द भी सजो रहा था—'कहूं कि बाई साब ने मुझे गीत···'

पर उसके कुछ कहने के पूर्व ही जोगी की बाट जोहती पहरेदार की आश्चर्यचकित आखें अमरिया के कंधे पर लटके हुए रामैये की घुंघरुओं से भरी हुई धुनकी पर जा टिकी और साथ ही उसके मुख से प्रश्न निकला "क्यों रे ! तेरा नाम अमरिया जोगी है न ?"

"हां सा'ब !"

सिपाही को गुस्सा तो ऐसा आया कि उसी क्षण पीट डाले। पर, बुद्धि उसकी मदद पर आई; होंठों पर आई हुई गालियां उसने दबा दीं; कहा, "इतने दिन से कहा मरा था ?"

ठीक उसी समय चौकी का जमादार कोठरी में से बाहर निकला, "चल, जल्दी चल, मेरे पीछे-पीछे आ।"

अमरिया पल-भर के लिए पसोपेश में पड़ गया—'मुझसे कोई भूल-गुनाह तो नहीं हुआ ?' इस प्रकार की शका सहित उसने अपने अतीत का भी सिंहावलोकन किया ।

जमादार ने पुनः कहा, "चल भले आदमी ! बाई सा'ब रोज़ तेरे लिए पूछती हैं।'

ड्योढ़ी पर भी उसकी यही गति हुई। मुख्य दरोगा कचहरी से बाहर निकला । भीतर द्वार में देखकर ऊपर अटारी पर दृष्टि डाले कुछ समय तक प्रतीक्षा में खड़ा रहा । कोई दासी न दिखने पर पास में लटकी हुई डोरी खींचकर ऊपर की घंटी बजाई । उत्तर के रूप मे झरोखे में दासी उपस्थित हुई । उसने दासी से कहा, "बाई सा'ब से कहो कि अमरिया जोगी आया है !"

"ठहरना जरा ! खबर देती हूं । "दासी की सड़ाक् से सरकती साड़ी द्वार पर प्रतीक्षा में खड़े अमरिया से जैसे कह रही थी कि वह कितनी शीघ्रता के साथ गई है !

अमरिया का सिर चकराने लगा । प्राण अधरों पर आ गए थे—'भगवान जाने, अब क्या होगा ? तेरे नाम की इस हाय-तोबा में तुझे दुपट्टे मिलते हैं या जूतों की बौछार !'

दासी से अमरिया के आगमन का शुभ संवाद सुनकर पंद्रह दिन से बेचैन फूलकुंवर के मन मे एक बार तो इन शब्दो सहित जूते लगवाने का विचार भी उत्पन्न हो गया—'आने का वचन देकर इतने दिन कहां रहा भिखारी ! क्या प्रतीक्षा करवा-करवाकर···।'

पर फूलकुंवर के हर्ष-विह्वल नर्तन करते हुए हृदय ने अमरिया के इस अक्षम्य अपराध को दूसरे ही क्षण माफ कर दिया । सुखासन पर से वह अप्रत्याशित-सी खडी हो गई । उठने के साथ ही लहंगे की झालर पर लटके हुए सोने-चादी के घुंघरू इस प्रकार कलनाद कर उठे जैसे पक्षियों का झुंड कलरव कर उठा हो !

परंतु पाचेक पल बाद ही पक्षियों का यह कलरव मौन में परिणत हो गया । दुनियादारी का बोध जैसे फूलकुंवर की कौड़ियों जैसी लंबी-लंबी आंखों मे आ बैठा हो यों कृत्रिम रोष के साथ उसने कहा, "कहां है वह

भिक्षुक ?"

"नीचे खड़ा है, बाई सा'ब।"

"ठीक है, तुम जाओ, मैं सदा को भेजती हू।" और फूलकुंवर पुनः हृदय थामकर सुखासन पर बैठ गई। मन पर नियंत्रण रखते हुए, दबे स्वर में सदा को पुकारा, "कहां गई, सदा ?"

"आई बाई सा'ब !" सदा ने पार्श्व के कमरे मे से प्रवेश करते हुए कहा।

अभी तक फूलकुवर ने अपनी प्रिय दासी सदा को भी दिल का राज नही बताया था। पर अब उसे लगा कि सदा का विश्वास अर्जित किए बिना काम नही चलेगा। उसने सदा से कहा, "देख, अमरिया जोगी आया है। मां से पूछ कि गीत सुनने के लिए उसे ऊपर बुलाऊं ? यदि हां कहें तो ऊपर ले आना।"

"ऊपर, बाई सा'ब ?" तीसेक वर्ष की सदा ने आश्चर्य के साथ प्रश्न किया। सदा भांप गई थी कि शक्ति-मदिर से लौटने के बाद से फूलकुवर बेचैन है। अमरिया के लिए होने वाली बारंबार की पूछताछ ने उसे अचरज मे डाल दिया था और अब स्वयं नीचे जाने के बदले अमरिया को ही ऊपर बुलाने का अनुरोध सुनकर सदा दंग रह गई।

अमरिया के भजन-गीतों के समान ही मदारियों के खेल, नट-नटनियों के करतब, जादूगरो के तमाशे और भवाइयो के नाटक आदि सभी प्रकार केप्रदर्शनों का आयोजन ड्योढी के अंदर विशाल प्रांगण में या तीनों तरफ स्थित लबे-चौड़े बरामदों मे ही होता था और जालीदार बड़े कमरे में बैठकर अंतःपुरवासी उन्हे देखते-सराहते थे। इसलिए सदा अपनी अब तक की उमर मे पहली बार जोगी को ऊपर बुलाने का प्रस्ताव सुनकर यदि चौंक उठी तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं थी।

मात्र इतना ही नही, सदा ने एक और नयी बात भी देखी थी। फूलकुंवर सामान्यतः वार-त्यौहार या कौटुंबिक समारोह के मौके पर ही घाघरा-ओढ़नी धारण करती थी; अन्यथा वह चूड़ीदार पायजामा और छाती-बंध पर सिर्फ कुरती ही हर वक्त पहने रहती थी। सिर पर ओढ़नी तो केवल तभी ओढती थी जब पिता जी इस तरफ आ जाते थे। पर

आज तो वह अभी से ही घाघरा, कंचुकी और ओढ़नी धारण करने लगी थी।

परमार-कुल मे जनमे उसके पिता कालूसिंह और पच्चीस वर्ष की आयु के उसके सौतेले भाई अनूपसिंह का स्वभाव-संस्कार देखते हुए कहा जा सकता था कि सस्कृत ग्रंथों की अध्येता और शिकार की शौकीन फूलकुवर की आत्मा इस कुल में भूली-भटकी ही आ गई है। न सिर्फ फूलकुंवर बल्कि सोलंकी वंश की उसकी विदुषी मा सोनलदे भी जैसे गुजरात से भटककर भूल से ही परमार-कुल के कालूसिंह के आश्रय में आ पड़ी थी। कुछ भी हो, यह स्पष्ट था कि एक तरफ कालूसिंह और अनूपसिंह तथा दूसरी तरफ फूलकुवर और सोनलदे के स्वभाव और संस्कारो मे आमने-सामने के क्षितिजो जितनी दूरी थी। दोनों मे जमीन-आसमान का अंतर था। अनूप मे पिता के गुण उतरे थे तो फूलकुंवर मे मा के।

फूलकुवर मे मां के गुण उतरने का असल कारण यह था कि सोनलदे के साथ पीहर से आया हुआ शंकरदेव कामदार जितना उद्भट विद्वान था उतना ही आर्य-संस्कारो का पक्षधर एक देशभक्त ब्राह्मण भी था। इस विद्वान और संस्कारी ब्राह्मण के संरक्षण में शिक्षा प्राप्त करने से फूलकुवर के चरित्र में भी उदात्त भावनाओं का समावेश हुआ था। उसी ने उसे शस्त्र-प्रयोग सीखने को उत्प्रेरित किया था। शंकरदेव ने ही उसमें यह भावधारा प्रवाहित की थी कि भारत की हर नारी को आत्म-रक्षा की कला सीखनी चाहिए।

उस छोटे-से कडाणा राज्य के तीरंदाजों में फूलकुंवर प्रथम श्रेणी की तीरंदाज मानी जाती थी। वह निर्विवाद रूप से तलवार चलाने में अपने भाई से भी बढ़कर थी।

जीवन के ठीक इसी मोड़ पर उसे गलाल मिला। गलाल ने तलवार के प्रसंग में उस पर जो ताना कसा था उसे तो वह भूल गई, पर जिस प्रकार से उसने अपने तूफानी बेकाबू घोड़े पर बायें हाथ से नियंत्रण रखते हुए, नोक की ओर से तलवार पकड़कर अपनी दायीं भुजा उसकी ओर फैला दी थी, वह भुजा जैसे आज भी उसे बारंबार कह रही थी—

'तलवार तो केवल ऐसी ही भुजा में शोभा देती है।'

गलाल की अद्‌भुत छटा, उदारता और रसिकता देखकर, वह भी जाने-अनजाने चारों ओर के लोकमत से सहमत होकर स्वयं जैसे कह रही थी—'तुम्हारा सारा का सारा कडाणा ही ऐसा है! वह ज़्यादा से ज़्यादा बस लुटेरों से लड सकता है। सेना से युद्ध करना उसे नही आता।'

प्रणयातुर उत्तेजित घोड़े पर योद्धा की अदा मे बैठे हुए गलाल के स्मृति-चित्र के साथ-साथ जब उसका ताना याद हो आता था तो वह फूल-कुंवर के कुआरे मुग्ध-हृदय में प्रणय की एक पागल आंधी का सृजन कर देता था! वह अनुभव करती कि जैस वह उस योद्धा के बाहुपाश में दबी-दबी उसके वक्षस्थल में सिमटती जा रही है। प्रणय के क्षीरसागर में उसकी युग-युग की प्यासी आत्मा जैसे अनंत गहराई में डूबती जा रही है और वह कह रहा है—'भुजाओं में लिपटी हुई इस रूपसी को भुलाया जा सकता है, पर···!' जागती आंखों मे भी ऐसे ही दिवास्वप्न तैरने लगते थे।

और बस उस दिन से उसने जैसे तलवार को लजाना ही छोड़ दिया था। साथ ही उसने गलाल के ये शब्द भी—'कमर मे कसी हुई तलवार को कभी नही भुलाया जा सकता'—स्मृति-पट के एक कोने में धकेल दिए थे!

'बाहुओं मे लिपटी सुदरी' वाक्यांश याद आते ही उसका संपूर्ण शरीर एक सुंदरी में बदल जाता था और फिर नाना प्रकार की मधुर-मधुर कल्पनाओं के अंतरिक्ष में विहार करने लगता था। कल्पनाओ के उस सुषमा-लोक में एक कल्पना यह भी थी कि जैसे वह स्वयं सौदर्य और ऐश्वर्य की प्रतिमा-सी सजधजकर खड़ी है और अश्वारूढ गलाल की बांहें उसे जमीन से उठा रही है। उसकी कमर को गलाल के हाथो ने घेर लिया है और उन हाथों में मुक्त लगाम है और इसी स्थिति में वह पवनवेगी घोड़ा उड़ता जा रहा है···उड़ता जा रहा है!

ऐसी ही कल्पनाओं के आधार पर फूलकुवर ने एक निश्चय कर लिया था—'अमरिया जब आएगा तो उसे एक पत्र भी दूंगी और पत्र मे उस तलवार-चोर से विनती करूंगी कि तूने जिस प्रकार से मेरा चित्त चुरा लिया है, वैसे ही मुझे भी पूरी की पूरी चुरा ले तो अपने नारीत्व को

कृतकृत्य मानूगी !'

एक प्रकार से वह कलम-दवात लेकर लिखने भी बैठ गई थी। पर जीवन में इस प्रकार का वह पहला प्रसंग होने की वजह से वह क्षुब्ध हो उठी थी, एक अनाम-अज्ञेय झिझक ने उसे रोक दिया था। लिखने को कुछ सूझता ही न था। मन भी उसे डराने लगा—'आठ-आठ दिन बीत जाने पर भी अमरिया का कुछ अता-पता नही है···ऐसी स्थिति मे पत्र लिखकर उसे संभालने-छुपाने की मुसीबत क्यों मोल ले रही है ?'

अमरिया के आते ही उसके मन में पत्र लिखने की दबी हुई इच्छा पुनः करवटें बदलने लगी। मन ही मन पछता भी रही थी कि पहले से लिख रखा होता तो कितना अच्छा होता !

परंतु जब अमरिया से बातचीत करने का अवसर मिलना भी दूभर हो रहा था तो पत्र लिखने-संभालने का प्रश्न ही कहां पैदा होता था ? और तो और, उसकी विश्वासी दासी भी आंखें फाड़-फाड़कर पूछ रही थी, 'ऊपर, बाई सा'ब ?'

फूलकुंवर की लंबी ग्रीवा जिस प्रकार तन गई थी उसी प्रकार से उसका गोरा चेहरा भी सतर्क हो उठा था। बोली, "हां, हां, ऊपर ! मुझे उससे बातचीत करनी है।"

आशंकित सदा कहना चाहती थी—'आप मांगने वाले आदमी से बात करेंगी, बाई सा'ब ?' पर वह फूलकुवर की सरसता और उसके स्वाभिमानी स्वभाव से परिचित थी। वह तुरंत ही समझ गई कि उस दिन वह जब 'बा' के साथ शक्ति-मंदिर गई थी तभी वहीं कादंबरी की कथा में वर्णित घटना-सा कुछ हो गया लगता है !

खुद फूलकुवर ने ही संस्कृत-साहित्य मे से महाश्वेता, कादंबरी और शकुतला की कहानियां, सदा जैसी दासियों को सरस शैली में सुनाई-समझाई थीं। सदा ने स्वयं से ही प्रश्न करने की अदा से पूछा, "उस जोगी से आखिर आप क्या बात करेंगी ?"

पर स्वय फूलकुंवर भी नही जानती थी कि वह उस जोगी से क्या बात करेगी ? कहा, "तू सुन लेना कि क्या बात करती हूं ?" और फिर धीरे से जोड़ दिया, उसे एक खोज-कार्य सौपना है।"

सदा का सदेह सत्य में बदल गया, "लगता है, बाई सा'ब का हृदय किसी ने चुरा लिया है।"

स्वय सदा भी गहरे सोच में डूब गई। महारानी 'बा' से तो वह ज्यादा नही डरती थी। लेकिन स्वयं राजा इतना क्रूर और हृदयहीन था कि तनिक-सा भी संदेह हो जाने पर सबसे पहले दासियों और दासियो में भी उस पर आफत आएगी, क्योंकि वह फूलकुवर की विशेष कृपापात्र दासी थी। सदा को इसमें जरा भी सदेह नही था। राजा इतना क्रूर-कठोर है कि सिर काटने मे भी विलंब नही करेगा।

दूसरी तरफ उसे यह भय अर्थहीन भी लगता था। स्वयं राजा ही सोनलदे से डरता प्रतीत होता था। फूलकुंवर के जन्म के बाद से तो वह कदाचित् ही भूल से सोनलदे के आवास मे आता था। अनूप की मा जब उसे छ. साल का छोडकर स्वर्ग सिधारी तो सोनलदे ने उसके पालन-पोषण का भार स्वयं अपने कधों पर उठाना चाहा था। पर कालूसिह ने उलटे उपहासपूर्वक यह कहलाया था कि "मुझे उसे ब्राह्मण नही बनाना है।"

युवा आयु की संस्कार-प्रिय सोनलदे ने प्रत्युत्तर में कहलाया था, "ठीक है, आपकी इच्छा; भले ही उसे लुटेरा बनाइए।"

अनूप मे अपने पिता के गुण उतरे थे। उसे राजा की अपेक्षा लुटेरे के अवगुण विशेष रूप से विरासत में मिले थे। वह भी मुश्किल से ही कभी-कभार सौतेली मा के महल पर आता था। प्रसंगवश यदि फूलकुवर उसे अपने यहां बुलाती भी थी तो उसे लगता था जैसे चीटियां चढ गई हैं और वह सोचता रहता था कि कब भोजन समाप्त हो और वह उस देवा-लय जैसे महल से कब बाहर निकल जाए!

सारांश यह कि सदा यह अच्छी तरह से जानती थी कि राजा और कुवर दोनों ही मा-बेटी से दबते है।

फूलकुंवर, अपने पिता और भाई के साथ संबंधों का जो स्वरूप था, उसके आधार पर यह अवश्य सोचती थी कि स्वयं के विषय में अथवा मां के विषय में जरा भी सदेहास्पद बात अगर पिता के कानों तक पहुंचेगी तो वे तिल का ताड़ करके झपटे बिना नहीं रहेंगे। पर साथ ही बिना

अपराध किसी से डरना-दबना उसके स्वभाव मे नही था। उसने सदा से कहा, "निर्भय होकर जोगी को बुलाओ। यहीं दालान मे बैठकर गाएगा और 'बा' समेत सब सुनेंगे।"

सदा ने ऊपर से ही दरोगा से कहा, "दरोगाजी! जोगी को ऊपर आने दीजिए। यही बैठकर वह 'बा' और बाई सा'ब को गीत सुनाएगा।" अपनी गांठ से कुछ और भी जोड़ दिया, "बाई सा'ब के सिर में दर्द है, वे नीचे नही आ सकेंगी।"

दरोगा स्वाभाविक रूप से हिचकिचाया। पर अमरिया जैसे आदमी को ऊपर भेजने मे उसे कोई आपत्ति महसूस नही हुई। जीना दिखाते हुए कहा, "जा भाई, जा, तलवार और गठरी को तो यही छोड़ दे और ऊपर दालान में बैठकर गीत सुना आ! बाई सा'ब का आदेश है।"

अमरिया को राजे-रजवाड़ों और महलो के रनिवासो का अच्छा-खासा अनुभव था पर उन तमाम अनुभवों में से कडाणा का अनुभव सर्वथा भिन्न प्रकार का था। स्वयं दरबार मे कालूसिंह को उसने दो-तीन बार अपने गीत सुनाए थे। पर उसे हर बार यह आशका सताती रहती थी कि मदिरा के नशे मे चूर राजा गीत सुनकर रीझेगा या रूठेगा! एक बार ऐसा हुआ भी था। अमरिया ने लुटेरे का एक ऐतिहासिक गीत आरंभ किया और कालूसिंह ने मुंह फुलाकर कहा, "अवे ओ जोगी के बच्चे! तूने मेरी उपस्थिति में लुटेरे का गीत गाने का दुस्साहस कैसे किया? तू अपने मन में समझता क्या है? मेरे महल मे और मेरी ही उपस्थिति मे लुटेरे का गीत!"

और फिर लकड़बग्घा जैसे कालूसिंह को अनुनय-विनय करके मनाते-मनाते अमरिया के बदन से पसीना छूट गया था।

हालांकि गीत सुनने के बाद इसी राजा ने उसे तीन पहरावों समेत सोने का एक कड़ा भी पुरस्कार में दिया था, पर एक बार तो अमरिया आसन्न संकट की विभीषिका की कल्पना करके कांप उठा था। अतः राजा के बिगड़ पड़ने की याद पुरस्कार से भी अधिक ताजा थी।

अतीत की इन खट्टी यादों में खोए हुए अमरिया को ऊपर से फूलकुवर की यह प्रतीक्षा असमंजस में डाले हुए थी।

द्विविधाग्रस्त अमरिया को रनिवास में प्रवेश का एक आदेश मिला। अमरिया का मन ही नहीं, बल्कि उसके पैर भी आसन्न संकट की कल्पना से कांप रहे थे। साध्वी जैसी सोनल 'बा' की कीर्तिगाथा से तो वह परिचित था,·पर राज्य तो उसी कालूसिंह परमार का था, जो लोक-जिह्वा पर लुटेरे के नाम से प्रसिद्ध था। इनकार भी करे तो कैसे? मना करने पर तो बस, सिपाही पैरो से जूते निकालें, इतने भर की देर थी। दोनों तरफ खतरा था।

"अंबा मां की जय" के साथ अमरिया ने पहली सीढ़ी पर कदम रखा। डरते-डरते पैर रखता हुआ अमरिया अंदर ही अंदर बड़बड़ा रहा था—'भाई, सिंह अच्छा, पर लकड़बग्घा बुरा!'

अमरिया की आत्मा एक कवि की आत्मा थी। सिंह से उसका आशय मेवाड़-मारवाड के राजाओं से था और लकड़बग्घे से उसका अभिप्राय ऐसे राजाओं से था जो न तो पूर्णतः राजा थे और न पूर्णतः लुटेरे।

परंतु जैसे ही उसने ऊपर पहुंचकर दालान मे आसन ग्रहण किया, और परदे की ओट में बैठी हुई रानी मां और बाई सा'ब को प्रणाम कर अपने रामैये पर घुघरुओं वाली धुनकी त्वरित गति से फेरना शुरू किया, अमरिया सिंह भी भूल गया और लकड़बग्घा भी; और जैसे मां सरस्वती के दरबार में गा रहा हो यो मुग्ध-भाव से एकरस होकर मीठे स्वर में गाने लगा:

पेला प्रणाम माता सरस्वती चरणे
दुजा प्रणाम मारा गुणियल दातार ने···

(पहला प्रणाम मां सरस्वती के चरणों में निवेदित करता हूं और दूसरा प्रणाम मैं अपने गुणवान दातार को समर्पित करता हूं···।)

अमरिया की मधुर गीत-लहरी से सारा महल गूजने लगा! ऊपर दासियां और नीचे सिपाही एकाग्रचित्त होकर खड़े-खड़े सुनते रहे···सुनते रहे···!

स्वप्न-कथा

अमरिया का स्वर जितना मीठा था, उसके गीत भी उतने ही अद्भुत थे, कोई वीर-रस का तो कोई भक्ति-रस का !

इसी समय की चूडावत की वीरगाथा को भी उसने काव्य मे संजोया था। मुगल-सम्राट से संघर्ष करने को निकले हुए नवविवाहित चूडावत सरदार के मनोभावों का अपूर्व रीति से चित्रण करते हुए, उसकी युवा रानी की भावनाओं को वाणी प्रदान करते हुए उसने एक क्षत्राणी की असली खुमारी को इस प्रकार से साकार किया था कि सिर काटकर अर्पित करने वाली क्षत्राणी के आत्मोत्सर्ग पर श्रोतागण स्वतः ही वाह्-वाह् कर उठते थे। और फिर सुदीर्घ और सघन केशराशि से सुशोभित प्रिया का सिर गले में लटकाए हुए उस रौद्ररूपधारी योद्धा का चित्र शब्दो में रूपायित करती हुई एव साक्षात् यमदूत की तरह बादशाह की सेना को मौत के घाट उतारने वाले उस राजपूत वीर का अभिनदन करती हुई, अमरिया की हृदयस्पर्शी वाणी अपूर्व शक्ति और ओजस्विता प्रकट करती थी।

चूड़ावत का गीत सुनकर फूलकुवर न केवल अपने चित्त-चोर को भूल गई, बल्कि चूड़ावत के स्थान पर अपने चित्त-चोर को स्थापित कर वह स्वयं उसकी रानी बन गई। कल्पना-लोक मे उडती हुई वह सोचने लगी कि जैसे वह स्वयं ही मोहग्रस्त वीर पति को सिर काटकर अर्पित कर रही है और इस प्रकार अपने पति के लिए प्रेरणा-स्रोत बन गई है।

कल्पना-लोक से जब वह वास्तविकता के धरातल पर आई, तब भी उसका मन कह रहा था—'वह सुदर्शन राजपूत वीर न जाने उसे कब मिलेगा ? भारत मां की रक्षा के लिए विदेशियों से युद्ध करने के लिए जाते समय वह स्वयं अपने योद्धा पति की कमर में कब तलवार बांधेगी या उपहार के तौर पर कटार लटकाएगी ? वह दिन कब आएगा जब वह ढाल से सुशोभित, इस्पाती कंधों पर स्थित उस झिलमिलाते दिव्य ललाट पर चुंबन-तिलक लगाकर उसे विदा देती हुई कहेगी, 'पधारो मेरे राजा !

इस समय तो केवल चुबन ! आलिंगन तो तभी मिलेगा जब शत्रुओं के रक्त से नहाकर घर लौटोगे !'

गीतो का कार्यक्रम समाप्त होते ही जोगी को एक जोड़ी पहरावा (स्वयं का उतरा हुआ) और दस रुपये इनाम देने की घोषणा करके सोनलदे उठ खडी हुई। उससे कुछ समय पहले ही उठी हुई फूलकुवर को एक युक्ति सूझी। अमरिया को संबोधित कर कहा, "बैठ जोगी, मैं तुझसे एक गीत की रचना करवाना चाहती हूं।" साथ ही खुद उसने मां की सम्मति भी मांग ली, "क्यों मां, ठीक है न ?"

स्वाभाविक रूप से मां क्षण-भर के लिए हिचकिचाई। पीछे मुड़कर मंद-मंद स्मित बिखेरते हुए उसने पूछा, "कौन-सा गीत, बेटी ?"

प्यार मे पागल नारी जब प्रेम-पथ पर कदम बढाने का निश्चय करती है तो उस समय लोग उसकी चेतना को भले ही पागल कहें, पर यथार्थ मे तो उसकी चेतना प्रज्ञा-स्वरूप धारण कर लेती है। फूलकुंवर ने मा से कहा, "एक रात, मैंने स्वप्न देखा था। उस स्वप्न को गीत में बंधवाना चाहती हूं !"

अनुभवी सोनलदे समझ गई, युवा-पुत्री की आंखों में प्रणय के रेशमी सपनों के अतिरिक्त और कौन-से स्वप्न हो सकते है ? और उसने होंठों ही होंठों मे हंसकर आगे पैर बढाए। पर जाते-जाते यह चेतावनी भी दी, "देख फूला ! बाहर दुनिया में अपनी चर्चा नही होनी चाहिए !"

"ऐसा भी कभी हो सकता है, मां ?" यो कहकर फूला ऐसी मीठी हंसी हंस दी कि जैसे घंटियां बज उठी हों ! मां की पीठ पर जड़ी हुई उसकी सीपियों-सी आंखें जैसे कह रही थीं—'ऐसा वहम तुम्हे कैसे हो गया, मां !'

"बैठ, जोगी ! मैं अभी आती हूं", इतना कहकर वह अंदर चली गई। जैसे अभिसार के लिए जाना हो यो अपने ही हाथों से केश धोकर उसने उन्हे सजाया-सवारा ! ओढनी भी बदल दी और उस पर इत्र लगाकर चिक के पास रखे हुए सुखासन पर आ बैठी।

चंपा-कली सी अपनी उंगली चिबुक पर रखकर कुछ समय तक तो वह विचार करती रही कि बात को किस प्रकार प्रस्तुत किया जाय ?

इस बीच दासियां भी अपने-अपने कार्यों में जुट गई थीं।

सदा भी चिक से बाहर जोगी से ज़रा दूर कटहरे के सहारे बैठकर फूलकुवर की कंचुकी पर मोर टाकने लगी, एक ऐसा मोर जिसने अपने पर फैला रखे थे। इस प्रकार से बैठने का प्रयोजन यह था कि इस गोपनीय वार्ता को अन्य कोई न सुन पाए और कोई यदि इस ओर आए तो बाई सा'ब को सावधान कर दे।

फूलां ने दबी हुई आवाज में अमरिया से कहा, "सुन अमरिया कवि ! स्वप्न तो कहने भर का है, इसे सत्य समझना। इसके शब्दो पर कम, संकेतों पर अधिक ध्यान देना !" फिर स्वर बदल कर, स्वप्नाविष्ट-सी ध्यानमग्न होकर गले में पड़ी माला से खेलती गई और बोलती रही, बोलती रही—"धुंधली-सी एक शाम थी वह। मैं पुरुष वेश में कबूतर के रंग की घोड़ी पर बैठकर दर्शनार्थ शक्ति-मंदिर जा रही थी। घोड़ी उत्पात करने पर उतारू थी और तभी सामने से एक अश्वारोही आया ! वह सौदर्य का अवतार था, रूप की प्रतिमा था ! सिर पर सिरपैच बंधा था और राजकुमार-सा लगता था। उसका घोड़ा भी बिफरा हुआ था। राह हालांकि संकरी थी, पर उस राजपूत वीर ने अपने घोड़े को यों निकाल लिया जैसे वहां सिर्फ वही काबू में रखे हुए घोड़े को ले जा रहा हो ! मेरी बात समझ गया न, कवि ?"

"हां, बाई सा'ब ! आप तो बस कहती जाओ !" अमरिया भले ही उस वक्त कडाणा के अंतःपुर मे बैठा था, पर उसकी अंतरात्मा तो, उसने स्नान करते समय माही नदी के कगारों मे जो दृश्य देखा, उसके साथ तारतम्य स्थापित कर रही थी। कबूतर के रंग की घोड़ी पर सवार एक युवक शक्ति-मंदिर की ओर गया था। दूसरा सवार, एक तलवार कमर मे और दूसरी हाथ में लिये नदी के पथरीले रास्ते पर तहलका मचाता हुआ विद्युत् गति से उसके पीछे-पीछे शक्ति-मंदिर की ओर गया था। वह जितनी तेज़ी से गया था उतनी ही तेज़ी से क्षण-भर में लौट आया था। उसने उसके प्रणाम भी किया था। जिस दिशा में वह सवार गया था उसी दिशा से एक और अश्वारोही शक्ति-मंदिर की ओर···।

कुछ पल के मौन के बाद फूलां ने पुनः बोलना आरंभ किया, "पर

वह अश्व को भगा ले जाने वाला युवक थोड़ी ही देर में शक्ति-मंदिर की ओर वापस लौटा और कबूतर के रंग की घोड़ी के सवार की ओर तलवार बढ़ाता हुआ बोला···" फूलकुवर सहसा सचेत हुई। हृदय मे खलबली मचाते हुए शब्दों को दबाकर अश्वारोही के उद्गार के स्थान पर दूसरी सूक्ति कही—'एक राजपूत वीर सब कुछ भूल सकता है, पर कमर पर लटकती हुई तलवार हर्गिज नही भूल सकता!' वह घुड़सवार उस घोड़ी के सवार को तलवार देकर लौट गया। जाते समय उसने घोडी के सवार से जय-भवानी कहा। यह संभव है कि चार गज की दूरी पर बैठे हुए अमरिया ने फूलां की आह सुन ली हो। फूलां सांस खींचकर कहने लगी "कवि! अब स्वप्न को सत्य मे बदल दो न!" क्षणभर थमकर पुनः बोली, "पता लगाओ कि स्वप्न का अश्वारोही कहां का है और यदि मिल जाए तो पूछ आना कि तुमने तलवार भले ही लौटा दी, पर कमरबंद लौटाना अभी शेष है···। मेरी बात तुम समझ तो गए हो न?"

"स्वप्न की पूरी कहानी समझ गया हू, बाई सा'ब!" अमरिया अपने गेरुए रंग के साफे को ठीक करता हुआ स्वगत की तरह बोला, 'आपने यदि शक्ति-मां के मदिर में यह स्वप्न-कहानी कह सुनाई होती तो मैं वही से यह भेद जान लेता बाई सा'ब!' उस दिन की घटनाओं को याद करता हुआ वह पुनः बोला, "नदी में स्नान करते समय मैंने एक पालकी और दसेक घुड़सवार शक्ति-मंदिर से आते हुए देखे थे। वह उन्ही में से एक होगा बाई सा'ब!"

"स्वप्न तो उड़ गया है, फिर तू कैसे खबर लाएगा?"

"दादागुरु हैं न!" अमरिया ने कहा।

फूलकुंवर को विश्वास दिलाने के लिए वह आगे कहना चाहता था—'मैं कई राजघरानों में दादागुरु के सदेश लाता हूं और ले जाता हूं!' पर एक गोपनीय घटना थी। अतः उसके स्थान पर उसने सिर्फ़ इतना ही कहा, "दादागुरु यों तो बच्चों से भी बात करते हैं···मै उन्हीं से पूछ लूंगा कि वह किस राज्य का राजकुमार है?"

फूलकुंवर यह सुनकर हर्षित हो उठी।

"अब जाकर पूछ ले, कवि! पता लाने पर मैं तुझे खुश कर दूगी,"

और उसने अपने गले का हार निकालते हुए प्रसन्न स्वर में सदा को पुकारा, "सदा, यहां आओ, अमरिया को पुरस्कार दो।"

अमरिया तो जैसे उसके हाथ में सांप का बच्चा आ पड़ा हो यों चौंक पड़ा, फिर उसे खयाल आया कि इनाम जितना बड़ा होता है, जान को भी उतनी ही जोखिम मे डालना पड़ता है। यदि कालूसिंह को उसका पता लग जाए तो वह सिर लिये बिना नही रहेगा। वह फूलां 'ना' से कहने जा रहा था, परंतु उसने महसूस किया कि 'हां'-'ना' कहने पर बात बढ जाएगी।

दादागुरु द्वारा सौपे जानेवाले दौत्य-कार्य के कारण उसमें साहस और जोश भर गया था और इसी कारण उसमें थोड़ी जागृति भी आ गई थी। परिणामस्वरूप 'हां' या 'ना' कहे बगैर उसने उस सर्प-शिशु को सीधा अपनी जेब में खिसका दिया।

रावण हत्थे को कंधे पर रखते हुए कहा उसने, "मां भवानी की कृपा हुई तो आज से दसवें दिन लौटूंगा।"

फूलां ने जैसे कान में कहा, "इसे तो तुम मात्र राह-खर्च समझना, खबर लाने का इनाम तो शेष रहेगा।"

पीठ फेरते हुए अमरिया बोला, "आपका काम पूरा हो जाए तो मेरे लिए बस यही लाख रुपयों का इनाम है, कुवरी जी !"

अमरिया जब द्वार पर पहुंचा तो फूलकुवर द्वारा प्रेरित सदा ने दारोगा को बुलाकर पुनः अमरिया को याद दिलाने के लिए यह कहा—इस जोगी से कहो कि यदि इनाम लेना है तो बाई सा'ब के सापने की घटना पर गीत-रचना करके अधिक से अधिक दस दिन में लौट आना !"

अमरिया में जैसी काव्य-प्रतिभा थी वैसी ही भिक्षाजीवी की चतुराई भी थी। दरवाज़े के बाहर जेब में से चिलम निकालकर दारोगा से तंबाकू मांगते हुए वह कहने लगा, "राजा लोगों को क्या मालूम कि कविता कोई अमरिया की प्रजा तो नहीं है कि आदेश देते ही उपस्थित हो जाए ! बस बिना सोचे दे दिया आदेश कि दस दिन में कविता बना लाना ! पर भाई, कविता का स्वभाव तो ऐसा है, दारोगा साहब, कि उसे आना हो तो चिलम पीते-पीते ही आ जाती है और न आना हो तो भले ही रामैये के तार

घिस-घिसकर टूट जाएं, 'तू···मैं और मैं···तू···' बस इसके आगे कविता कुछ जवाब नही देती है सा'ब !"

फिर तो उसने दारोगाजी और पहरेदारों को भी विशेष रूप से एक मधुर गीत सुनाया।

'जय भवानी' के जयघोष के साथ अमरिया ने प्रस्थान किया। मार्ग में वह फुसफुसाने लगा—'यदि सरस्वती प्रसन्न हो जाएं तो बस जाते ही शक्ति-मंदिर में बैठ जाऊंगा···!'

अमरिया को घर छोड़े एक महीना बीत गया था, पर इस बार तो कडाणा आने के पहले का सारा भ्रमण एक प्रकार से निरर्थक और निष्फल ही रहा था। उसे कुछ भी तो नहीं मिला था ! रजवाड़ों के ठाकुर-जागीरदार बादशाह के विरुद्ध युद्ध में उतरे हुए मेवाड़ के महाराणा के साथ फंसे हुए थे। लोगों के मन भी अशांत और उलझे हुए थे। कोई युद्धग्रस्त मनःस्थिति का, तो कोई भयग्रस्त मनःस्थिति का शिकार था। ऐसी स्थिति में रिक्त-हस्त-सा घर की ओर जाने की तैयारी करने वाले अमरिया पर जैसे शक्ति मां प्रसन्न हुई हों यों कडाणा का सामने से निमंत्रण मिला ! और यह निमंत्रण इतना सफल-सार्थक रहा कि प्रसन्न-चित्त अमरिया मन ही मन कहने लगा—'घर की औरत हार देखते ही अपना विरह का रोष भूल जाएगी और इसके साथ मुझे भी गले लगा लेगी—भले ही फिर वादे से कुछ अधिक दिन क्यों न हो जाएं ! राह-खर्च के रूप में ही जब छः-सात गद्याणक[1] का हार मिला है तो फिर कार्य-सिद्धि पर तो न जाने क्या-क्या मिलेगा ?

कडाणा आते समय उसने वैसे भी कपड़ों की गठरी शक्ति-मंदिर में रख दी थी इसलिए यों भी उसे उस गठरी को लेने के लिए तो जाना ही था। पर साथ ही दादागुरु से यदि उस सलौने राजपूत वीर का नाम भी मिल जाए तो क्या कहना !!—'तब तो फिर तेरा भाग्य ही खुल जाएगा, अमरिया !'

आधे तोले की तौल (प्राचीन)।

अमरिया जोगी

अमरिया जाति से रावल यानी जोगी था। उसका मुख्य काम ढोल-शहनाई बजाने का था, पर रामैये पर उसका हाथ खूब जम गया था। अतः उसने भी रावल जाति के अन्य लोगों की तरह 'भर्तृहरी' का धंधा अपनाया। यह धंधा यों तो बारहमासी माना जाता था, पर इसमे खास आमदनी कपडों की ही रहती थी और वे भी पुराने और उतरे हुए। गांवों में फेरी लगाने पर किसान लोग 'पायली-अर्धपायली' भर अनाज भिक्षा के रूप में दे देते थे।

लेकिन अमरिया का कंठ-स्वर इतना मधुर था कि एक-दो स्थानों पर अपनी प्रशंसा सुनने के बाद तो उसने सिर्फ छोटे-बड़े रजवाड़ों को ही पकड़ना शुरू किया था। गाते-गाते गीत की लय में डूब जाने पर वह अपनी ओर से भी ललकारने लगता था। उसकी ये स्वरचित पंक्तियां कभी-कभी लोगों को खूब पसंद आ जाती थी। पर बाद मे गीत का नशा उतर जाने पर वह गीत की उन स्वरचित पंक्तियों को भूल जाता था। इसीलिए अमरिया ने गांव के एक ब्राह्मण के पास अक्षर-ज्ञान प्राप्त करके स्वयं के गीतों का सृजन और लेखन आरम कर दिया।

फूलां से बिदा लेकर रास्ते-भर अमरिया ने हिसाब लगाया—'तीन दिन के भीतर मंदिर तक पहुंच जाऊंगा और यदि दादागुरु से बात का पता लग जाए तो पहले सीधा घर जाऊंगा। कपड़ों की गठरी भी रख आऊंगा और बीवी-बच्चों की खबर भी लेता आऊंगा···।'

अधेड़ अमरिया की दो पत्नियां थीं। पहली बाल-बच्चों वाली थी। अभी दो साल पहले वह एक और जवान पत्नी ले आया था। बल्कि यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि वह स्त्री स्वयं ही पत्नी बनकर आई थी।

अमरिया की कल्पना में, अपनी इस यात्रा मे नयी पत्नी रमण करती रही—'युवा पत्नी से कहूंगा कि सोने के हार से तेरी छाती तो भर गई पर कमर अभी भी खाली है। इसलिए वापस जाना है और इस बार तो

मुंह मांगा इनाम लूगा—'राह खर्ची के रूप में सोने का हार दिया आपने बाई सा'ब ! तो पुरस्कार के रूप में एक हल्का-सा सोने का कंदोरा दे दीजिए न, ताकि मेरी घरवाली भी जीवन-भर आपका गुणगान गाती रहे···।'

अमरिया का हृदय अभी भी जवान था। वह स्वभाव से ही युवा-हृदय था। उसकी मन की आखों के आगे द्वितीय लावण्यवती पत्नी आ खड़ी हुई। अमरिया की भुवनमोहिनी रसिकता पर मुग्ध होकर दो साल पहले वह स्वयं आई थी। खूबसूरत तो वह पहले से थी ही और ऊपर से अमरिया ने उसे रानियों-ठकुरानियों के इत्र-सुवासित परिधान—झालर-युक्त घाघरे, मयूर-चित्रित कंचुकियां और घुंघरुओं वाली साड़ियां पहना-कर तथा छोटी-बडी रानियों के सौंदर्य के साथ उसके सौंदर्य की तुलना करके उसे रसिक-प्रिया भी बना दिया था। वह बोलना भी सीख गई थी—'मुझे कोई रानी-वानी नही बनना है ! मुझे तो इस जोगी की जोगिन ही बने रहना है !!'

अमरिया ने राह में ही अपनी उर्वर कल्पना-शक्ति द्वारा इस रसमयी पत्नी-प्रिया को अतर की आंखो के आगे प्रत्यक्ष खड़ा कर दिया। उसे लगा कि उसकी पत्नी की कजरारी आंखो में मीठी मधुर वासना और अंधे प्यार का सागर लहरा रहा है, उसके पर्वत-शिखरों-से उत्तुंग उरोजों पर सोने का एकलड़ी हार झूल रहा है, पृष्ठ भाग को उभारता हुआ, नितंब पर वही स्वर्ण-कंदोरा अठखेलियां कर रहा है और चुंबनों से आक्रांत उसके लजीले नयन, अधर और कपोल अरुणिम आभा से दमक उठे हैं···।

रंग-बिरंगी इंद्र-धनुषी भावनाओं से निर्मित कल्पना-प्रसूत प्रिया को देखकर अमरिया इस कदर विरहाकुल हो उठा कि जैसे सचमुच ही उसकी प्रिया उसके समक्ष है और वह बेचैन है। पर आखिर क्या करता बेचारा ! मन के पास कल्पना के तो पंख थे, पर पैरों में वैसी गति नही थी !

अमरिया का कल्पना के घोड़ों पर आरूढ़ नशा जब अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गया तो स्वाभाविक रूप से वह शिखर से छूटे शिला-खंड की तरह नीचे की ओर लुढ़कने लगा। वह हताश होकर एकालाप करने

लगा—'भले आदमी ! शक्ति-मंदिर में कई राजपुरुष आते-जाते हैं···और लड़ाई छिड़ने के बाद से तो कई राजरानियों का भी तांता लगा रहता है, वे निरंतर आती-जाती रहती है···कोई यदि अपने पति की सुरक्षा के लिए जगदंबा की मनौती लेने आती है तो कोई दादागुरु का आशीर्वाद ग्रहण करने के लिए दौड़ रही है। कोई भविष्य के बारे मे पूछने को आता है तो किसी के मन में बेटे की साध है···ऐसी स्थिति में इतने दिन बाद दादागुरु तुझे कैसे बताएंगे कि वह कुंवर अमुक राज्य का हैं और उसका नाम यह है ! बल्कि संभावना यह है कि दादागुरु तुझे ही मूर्ख सिद्ध करेंगे। वे तो यही कहेंगे कि सुंदर तो सभी राजकुमार होते है, तलवार तो सभी बांधते हैं और घोड़े पर भी सभी बैठते हैं···!!'

अमरिया ने चार दिन का रास्ता तीन दिन में तय कर लिया। माही में नहा-धोकर जब वह शक्ति-मंदिर का ढाल चढ़ने लगा तो उसे लगा कि बहू की लचकती हुई कमर में से सोने का कंदोरा सरक रहा है। वह सोच रहा था—'जैसे माही नदी नीचे प्रवाहित हो रही है वैसे ही शक्ति-मंदिर में लोक-सरिता प्रवाहित हो रही है···; दादागुरु तुझे कहा से लाकर पता देंगे ? उलटा मजाक करेंगे ! अपनी ही आंखों से प्रत्यक्ष देख ले न ! आज इस समय भी कितने घोड़े बंधे हुए हैं ! पालकियों की भी कमी नहीं है। एक यहां है तो दूसरी वहां···बूढ़े बरगद के नीचे···!'

अमरिया ने सर्वप्रथम मां भवानी को प्रणाम किया, और फिर चौक में बैठकर रामैये के तार ठीक करता हुआ मां भवानी को रिझाने की तैयारी करने लगा। उसका मन भी एकालाप कर रहा था—'इस बीच दादागुरु भी अकेले हो जाएंगे···राज पाने की कोशिश करूंगा। यदि तिल में तेल दिखा तो ठीक···वरना···।'

'कौनसा गीत गाऊं ?' इस प्रश्न पर विचार करता हुआ जब यह लोक-कवि गीतों के बादलों में भटक रहा था ठीक उसी समय जैसे यकायक बिजली चमकी। उसके आनंद की सीमा न रही; ऊंचे स्वर में बोल उठा—'क्यों भूलता है अमरिया ? क्या चंदावत का गीत सुनकर दादागुरु ने नहीं कहा था कि एक पहर पहले गाया होता तो कुछ इनाम

भी मिलता !"

परंतु उस समय तो अमरिया ने दादागुरु के इन शब्दों का यही अर्थ लगाया था कि शायद दादागुरु मंदिर से गए हुए राजकुल के यात्रियों की बात कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त उसके मन में उस समय इनाम के प्रलोभन से ज़्यादा इस बात की कीमत थी कि दादागुरु उसके गीतों के बारे में क्या अभिमत रखते हैं ? इसलिए इस कवि ने इनाम की बात बिना सोचे, दादागुरु का अपने गीत के विषय में स्पष्ट अभिमत जानने के लिए प्रश्न किया था, "ठीक बन पडा है न, दादागुरु ?" अमरिया उन्हें दादा कहकर ही पुकारता था। "कोई भूल-वूल हो तो बता दीजिए ! अगर आपको पसंद तो सारी दुनिया को पसंद !"

दादा ने भी इस कवि-आत्मा की उसकी सिद्धि के अनुरूप प्रशंसा की और उसे इन शब्दों द्वारा प्रोत्साहित किया, "समझ में नही आता, अमरा, कि शूरवीर का शौर्य बढ़कर है या तेरे जैसे कवि की कविता ?"

आज भी अमरिया ने दादा के पूर्वोक्त कथन को याद करते हुए अपूर्व उल्लास और उत्साह के साथ चूड़ावत का गीत आरंभ किया :

धरती माता फरती जावे
काल नी ओढणी ओढी जीयुं
सत्तरसे ने तीस संवते,
पालवघूघरी तूटी जीयुं।···
पालवडे थारी सोना घूघरी
जोबनवंती राणी जीयुं
कलियुग मां भूलुं पडेलु,
चंदावतरु जोडुं जीयुं
अमरशाही थी धरती टांक्युं,
चंदावत थारूं नामे य जीयुं···

(काल की ओढ़नी ओढ़कर धरती माता जैसे परिक्रमा कर रही है··· संवत् सत्रह सौ तीस में धरती माता के दामन का घुंघरू टूट गया··· तेरे दामन में किसी नवयौवना राजरानी के समान सोने के नूपुर झन-झना रहे हैं···चंदावत की जोडी जैसे इस कलियुग में भूल से आ गई

है…चंदावत-दंपती ने धरती पर तेरा नाम अमिट अमर स्याही से अंकित कर दिया है…।)

मालूम होता है कि अमरा आया है !" दादागुरु की भीतर से गूंजती हुई आवाज़ सुनाई दी ।

"हा, दादा !" रामैये के सुर में अपनी आत्मा को खेलता छोड़कर अमरिया ने कहा ।

"जारी रख, हम भी सुनेंगे ।" यों कहते हुए दादागुरु बाहर आए । उनके साथ एक वणिक् जैसा कोई आदमी था । आभूषणों से लगता था कि वह ऐश्वर्यशाली है ।

दादागुरु छोटे चबूतरे पर और महाजन नीचे फर्श पर बैठ गया। और अमरिया उस दिन से भी अधिक हृदयस्पर्शी लहजे मे गीत गाने लगा केवल एक पंक्ति थी और उसे गाने के बाद रामैया की धुन के कारण पुनरावृत्ति की अपेक्षा भी नहीं रहती थी :

अल्लड़ अंग मा जोबन झूले…
पीठ मध मध में के जीयुं
समणांनी सुरादूयू सरखी
नेणले माझम रात्यु जीयु…

(अल्हड़ अंगों में यौवन लहरा रहा है जैसे अंगराग की सुगध महक रही है । स्वप्न सुराहियों के समान नयन रतनारे हो उठे हैं…)

दादागुरु ने अपने सुगठित शरीर को चूने की पलस्तरवाली दीवार पर टिकाते हुए कहा, "उस दिन का पुरस्कार आज मिलेगा, अमरा !"

अमरिया यह सोचकर मन ही मन खुश हो रहा था कि दादा को आज भी उस दिन की पूरी घटना याद है और उसने पुनः अपनी कवि-आत्मा को गीत में विसर्जित कर दिया रमण करने के लिए :

धरती स्वर्ग ना भेद भूलाया
चांदा सूरज सरखा जीयुं
समणां नी आ मोझुं जोइ ने
वींधी वेखणी बीफरे जीयुं

(धरती और स्वर्ग का अंतर समाप्त हो गया। चांद और सूरज भी एक

जैसे हो गए हैं। स्वप्न की यह तरंग, यह आनंद देखकर शत्रु नियति जैसे बिगड़ कर सब कुछ तहस-नहस कर देती है···)

इसके बाद उसने अपने गीत मे रूपनगर की कुवरी प्रभावती के सौदर्य का वर्णन किया। सौदर्य-लोलुप औरंगज़ेब किस प्रकार दल-बदल सहित विवाह के लिए रवाना हुआ, इस प्रसग को भी उसने गीत में जोड़ दिया और अंत में किस प्रकार से प्रभावती ने महाराणा राजसिह के पास निमंत्रण का प्रतीक श्रीफल भेजा एवं महाराणा ने उसे स्वीकार-अस्वीकार करने का सारा भार किस प्रकार छोटे-बड़े सभी सरदारों के मध्य 'सिरपैंच' की तरह सुशोभित चंदावत सरदार पर डाला आदि विविध प्रसंगों का नाटकीय शैली मे निरूपण करता हुआ अमरिया हृदय-विदारक वियोग के प्रसंग पर आ पहुंचा।

ठीक उसी समय ढलती धूप पर नजर डालता हुआ वह महाजन उठ खड़ा हुआ, "आज्ञा दीजिए, दादागुरु!"

"कैसा लगा अमरा का गीत?" दादागुरु भी उठ खड़े हुए।

"अमरिया का नाम तो सुना था, दादागुरु! पर गीत तो आज पहली बार सुना।" महाजन ने जेब मे हाथ डालते हुए कहा। चांदी के दो सिक्के देते हुए वह फिर बोला, "कभी सागवाड़ा आओ तो मेरे यहां भी अवश्य आना।"

"ओ बापा! आप सागवाड़ा के हैं, यह तो मुझे अब पता चला है!"

"सागवाड़ा के नगर-सेठ हैं।"

"पहचान लिया, दादा! अभी तक गीत सुनाने का सौभाग्य ही नहीं मिला था, पर अब ज़रूर आऊंगा बापा!" अमरिया उठ खड़ा हुआ और आस-पास के वातावरण में से जैसे संगीत की स्वर-लहरी समेट रहा हो यों रामैये की घोड़ी गिराई तथा उसे इस प्रकार कंधे पर रख लिया कि चांदी के घुघरुओं से भरी हुई धुनकी आगे रह सके, और खड़ा-खड़ा दादागुरु के एकांत की प्रतीक्षा करने लगा। जैसे ही दादागुरु मुख्यद्वार से वापस मुड़े उसने तत्काल सीधा प्रश्न किया, "दादा! जब पिछली बार मैंने यह गीत सुनाया था तब भी आपने कहा था और आज भी

आपने कहा कि उस दिन का बकाया इनाम आज मिलेगा। सो बताइए कि पिछली बार वह ऐसा कौन दानवीर था ?"

लगा कि दादा विस्मृति के गर्भ में से याद करने की कोशिश कर रहे हैं। पांच-दस क्षण विचार करने के बाद बोले, "हां, याद आया। उस दिन तुझे निश्चय ही बड़ा इनाम मिलता···हाथ का कड़ा या···क्या पता, अंगूठी ही दे देता !"

"दादा ! वह कौन था ?" अमरिया के चेहरे पर कृत्रिम खुशामद का भाव टपक रहा था।

"था एक दूर का राजकुमार।"

"हां दादा ! एक पालकी और दसेक सवार आगे-आगे गए थे और थोड़ी देर बाद उनके पीछे-पीछे सुंदर राजकुमार लाल रंग के घोड़े पर बैठकर गया था···शायद वही होगा, दादा !"

"हां, वही···" दादागुरु विचारमग्न हो गए।

"दादा ! वह किस राज्य का राजकुमार था ?"

"अलीगढ़ का। सुना है नाम कभी ?"

"हां दादा, वहां तो सिसोदिया कुल का राजा···।"

"नहीं, चौहान कुल का राजा है।"

"राजा का नाम, दादा ?"

"लालसिंह तो स्वर्गवासी हुए। बड़ा कुंवर शासन करता है। इसे तो बहुत हुआ तो जागीर मिलेगी···।" पियोली मां का अनुरोध याद आते ही दादागुरु उदास हो गए।

"कुवर का नाम दादा ?"

"गलालसिंह। बहुत साहसी है। इतना साहसी कि चाहे तो एक दिन में कडाणा और लूणावाड़ा का सर्वनाश कर दे।"

अमरिया मन ही मन मुस्कराया। उधर कडाणा की कुंवरी तो वियोग के गीत रच रही है और इधर दादा उस कुवर के हाथों कडाणा का सर्वनाश कराने की सोच रहे हैं ! और उसने पुनः प्रश्न किया, "वह कुंवारा है न, दादा ?"

दादा अब सजग हो गए। अमरिया पर पल-भर दृष्टि टिकाकर

हंसते हुए बोले, "क्यों रे ! गलालसिंह के विवाह पर गीत लिखना है या और कोई रचना करनी है ?"

अमरिया को क्षण-भर के लिए लगा कि जैसे वह पकड़ लिया गया है। उसने फीकी निस्तेज हंसी हंसते हुए झूठ का घोड़ा आगे बढ़ाया, "नही, दादा ! मैंने तो यह सोचा कि···।"

एक बार तो मन में आया भी कि सच-सच कह दिया जाय। पर यह खयाल आते ही कि एक कुंआरी कन्या का प्रणय-आख्यान और वह भी एक राजपुत्री का, दूसरों के आगे प्रकट करना स्वयं में एक पाप है, उसने वह विचार त्याग दिया। और फिर बनावटी खांसी खांसकर दादागुरु के आगे किए गए पाप-डंक को दबाते हुए बोला, "गीता तो क्या लिखूगा दादा, पर अवसर मिले तो चंदावत वाला गीत उन्हे सुनाना ज़रूर चाहूंगा, बस !"

दादागुरु यू बोलने लगे जैसे किसी अतल गहराई से बोल रहे हों, "चंदावत से भी गलाल का गीत सवाया होगा, अमरा ! मुझे तो वह कुंवर कोई देव-पुरुष लगता है। और कमरे की ओर कदम उठाते हुए जोड़ दिया, "ऐसे शूरवीर धरती पर ज़्यादा दिन नहीं टिकते !"

दादागुरु की पाट के समान चौड़ी पीठ की ओर ताकता हुआ अमरिया इस मानव-पर्वत की खोह मे से भयानक गर्जना जैसी भविष्यवाणी सुनता हुआ अवाक्-सा खडा रह गया।

कमरे में पैर रखने के पूर्व दादागुरु ने पुनः कहा, "कभी घूमते-घामते अलीगढ़ भी हो आना। इस समय तो वह आततायियों को अपनी तलवार का स्वाद चखाने युद्धभूमि के लिए प्रयाण कर चुका होगा।"

जो अमरिया नाम मिल जाने से खुश हो गया था, वही अमरिया यह समाचार सुनकर पुनः निराशा की ओर ढलने लगा।

दादागुरु के कार्यकर्ता ने जब उसे भोजन करने के लिए खिचड़ी दी तब भी वह निराशा से विमूढ़ प्रतीत होता था। अमरिया के मन में रह-रहकर यह प्रश्न उठता था—'दादागुरु ने यह क्यों कहा कि ऐसे शूरवीर धरती पर ज़्यादा दिन नहीं टिकते ?' शेष कमी इस सूचना ने पूरी कर दी कि गलालसिंह युद्ध के लिए प्रयाण करने वाला है।

अमरिया को गलालसिंह का नाम तो मिल गया, पर उसे लगा कि मिलना न मिलना सब बराबर है ! उसकी चेतना शून्य में डूबी जा रही थी !

भीमसिंह से भेंट

एक के बाद एक मंज़िल तय करती हुई गलाल की सेना आगे बढ़ती गई। आखिरकार सफर के दसवें दिन उसे भीमसिंह की छावनी दूर से दिखाई दी। छोटी-छोटी गिरिमालाओं के मध्य फहराती हुई केसरिया रंग की ध्वजाएं देखकर वक़्तसिंह ने शुभ-संवाद सुनाया, "गलाल बापू ! छावनी आ गई !"

"चलता-फिरता ऊंट नीम से बंध गया, वक़्ता भाई !" गलाल हंसा।

वक़्ता भाई गलाल के निहितार्थ को नही समझ सके परंतु इतना तो वे समझ ही गए थे कि गलाल बापू कटाक्षपूर्वक बोल रहे हैं। पूछा, "ऐसा क्यों कहते हो, बापू ?"

"मालिक तो समझता है कि ऊंट बंधा हुआ है। चिंता की कोई बात नहीं और ऊंट समझता है कि नीम की पत्तियां खूब मिल रही है।"

फिर भी वक़्ता भाई को कुछ भी समझ में नहीं आया। गलाल का वाक्य उनके मस्तिष्क मे एक अनबूझ पहेली बना रहा। पुनः पूछा, "ऊंट कौन और मालिक कौन ?"

गलाल कोई कवि तो था नही कि अर्थ और भाव के अनुरूप भाषा का प्रयोग करता। तथापि उसने अपने कथन को यथासंभव सम्यक् रूप देने की कोशिश की, "लोग तो समझते हैं कि गलाल बापू युद्ध में गए है और हम लोग यहां 'मजे की रोटी खाओ और छावनी में पड़े रहो' की कहावत चरितार्थ कर रहे हैं।"

उन्होंने यात्रा में राह-पर्यंत अरावली की पर्वतमालाओं में लड़े जा रहे युद्ध की कहानियां सुनी थी···राणाजी ने अरावली की तलहटी का संपूर्ण

भू भाग पहले से ही खाली कर दिया है; शाहज़ादा अकबर पचास हजार सैनिकों सहित उदयपुर की ओर बढ़ रहा है; वह जहां भी जाता है गाव के गांव उजाड मिलते हैं; शाहज़ादा की खुशी की सीमा नही है; सेना भी मस्ती में है और बगैर मेहनत के मिला हुआ लूट का माल उड़ा रही है; सूने वीरान नगरों और खुले हुए किलों पर दिल्ली का झंडा फहरा रहा है और बिना किसी रुकावट के शाहजादा अकबर अप्रतिरोध्य गति से उदयपुर की ओर बढ़ता जा रहा है···।

लेकिन कल ही खबर मिली कि जयसिंह ने अकबर की सेना पर छापा मार कर उसके पचास हजार सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया है; कुछ रसोई पकाते हुए मारे गए तो किसी स्थान पर राजपूत सैनिको की तलवार को जैसे बकरे ही मिल गए। चौपड़ खेलने वाले चौपड़ पर ही चारों खानें चित हो गए; जो सामना करने के लिए उठ खड़े हुए उनमें से किसी के पास तलवार थी तो ढाल नहीं थी और कोई-कोई तो बिना तलवार के सिर्फ ढाल लेकर ही घूम रहे थे। कितने ही लालची सैनिक छावनी मे मुकाम करके आस-पास के गांवों में हाथ साफ करने निकल पड़े थे और छावनी पर धावे की खबर सुनकर वही से नौ-दो-ग्यारह हो गए···। आज सुबह खबर मिली कि अकबर छोटी-सी फौज लेकर देबारी की तरफ भागा है और जयसिंह उसका पीछा कर रहा है। देखना है अब क्या होता है ?

ये समाचार रोज़ के रोज़ तो मिलते नही थे। गलाल ने अटकल भी लगाई कि इतनी दूर से समाचार आने में कम से कम दसेक दिन तो लग ही जाते होंगे।

भीमसिंह की छावनी के निकट पहुंचने पर पुनः समाचार मिले कि जयसिंह ने शाहज़ादा अकबर को गोगुंदा की गिरि-श्रृंखलाओं में चारों तरफ से पूर्णतया घेर लिया है; अब शाहज़ादा के सामने मृत्यु है या समर्पण है अथवा उसे भूख के कारण प्राण देने होंगे !

यह सब सुनकर 'लड़ ले या लड़ने वाला दे' जैसे स्वभाव के गलाल का रक्त उबलने लगा और उस उबाल में से यदि निराशा जनमी तो यह स्वभाविक ही था। उसने वक़्ता भाई से कहा, "जिस समय भीमसिंह

के नाम का यह पत्र लेकर चला था, उस समय धर्मांध विधर्मियों द्वारा खंडित किए गए शक्ति-मंदिर की दशा देखकर मैंने मन ही मन कहा था, 'मां ! धर्मांध अत्याचारियों के रक्त से तेरा खप्पर भर दूंगा और राजपूताने की धरती का जीर्णोद्धार कर स्वदेश को आततायियों से मुक्त करके पुनः तेरे दर्शन करने आऊंगा !" एक भारी निःश्वास खींचकर तुरंत यह जोड़ा, "पर हम लोग तो यहां नीम से बंधे हुए हैं, वकता भाई !"

"आप भूल रहे है, बापू ! भीमसिंह भी आपके जैसे स्वभाव वाला तेजस्वी रणवीर है। उसे यों नीम से बंधे रहना ज्यादा समय तक अच्छा नहीं लगेगा; देख लेना आप !"

"अच्छा !" गलाल तनिक प्रसन्न हो उठा।

वकता भाई ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा, "ऐसा नहीं लगता कि आप भीमसिंह के इतिहास से परिचित हैं !"

"दादागुरु कहते थे कि वह एक रईस-दिल योद्धा है।"

"बस, इतना ही न ?" यह कहकर वकता भाई ने छावनी की अंतिम चौकी आने पर अपने सैनिकों को रुकने का आदेश दिया और गलाल से कहा, "हम लोग यहीं रुककर भीमसिंह को अपने आने की खबर देंगे। बाद में मैं तुमसे, बिना किसी प्रकार की उतावली के, विस्तार से बात करूंगा।"

वक़ता भाई ने अपने अधीनस्थ सेनाधिकारी को बुलाया और उसे मुकाम की सूचना देकर रवाना किया।

गलाल ने कहा, "पत्र लेकर तुम्हें ही जाना है, वकता भाई; मुझे एक बार भीमसिंह का इतिहास सुना दो।"

घोड़ों पर से उतरकर उन्हें सैनिक के हवाले किया और फिर दोनों एक सघन छायादार हरे पेड़ के नीचे बैठ गए।

वक़ता भाई ने कहा, "महाराणा राजसिंह के दोनों कुंवर—भीमसिंह और जयसिंह—थोड़े-थोड़े समय के अंतर से पैदा हुए थे। पहले भीमसिंह का जन्म हुआ। बाद में जयसिंह का। महाराणा जयसिंह की मां के प्रति विशेष अनुरक्त थे। अतः हालांकि जयसिंह बाद में पैदा हुआ था तथापि उसे कड़ा पहनाकर युवराज के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया गया।

महाराणा बाद में भोले-अनजान बनकर कहने लगे कि भूल हो गई है। परंतु कड़ा पहना दिए जाने के कारण अब कोई उपचार-उपाय शेष नही रहा था। अतः भीमसिंह की मां भी अब क्या कह सकती थी ?

"पर ज्यो-ज्यों दोनों भाई बड़े होते गए त्यों-त्यों राणाजी को यह चिंता अधिकाधिक सताने लगी कि चूंकि भीमसिंह के साथ अन्याय हुआ है, अतः वह देर-सबेर कभी न कभी अपने सौतेले भाई से बदला लेगा। दोनों कुंवर सयाने हो जाने के बाद एक रोज़ जब राजमहल के उपवन में खेल रहे थे, राजसिंह ने भीमसिंह को निकट बुलाकर उसके कान में कहा, 'लो बेटा, इस तलवार को छुपाकर ले जाओ और काट डालो जयसिंह को और इस प्रकार दूर कर दो अपनी राह के इस कांटे को !'

"भीमसिंह अत्यंत सयाना कुंवर था। पिता का आशय समझने में विलंब नही किया। दुखी स्वर में कहने लगा, 'पिताजी, मैं बड़ा हूं या छोटा, पर दरअसल आपका पुत्र हूं। इसलिए मैं अपने भाई को पथ का शूल क्यों मानू ? फिर भी यदि आपको मुझ पर विश्वास न हो तो मैं इसी क्षण उदयपुर छोड़ देता हूं और आपके सम्मुख शपथ लेता हूं कि आज से मेरे लिए देबारी गिरिमार्ग के जल की एक बूंद भी हराम है...।' "

"अच्छा ? उदयपुर छोड़ दिया ?" गलाल के अचरज का ठिकाना नही था।

वक़ता भाई ने कहा, "उसी पल अपने महल में जाकर, रिसाला तैयार कर भीमसिंह घोड़े पर सवार हो गया। धरती धूप से सुलग रही थी और वह उस भरी दुपहरी में निकल पड़ा। राह में प्यास लगने पर पानी मंगवाकर जैसे ही पीने को हुआ तभी याद आया कि यह तो अभी भी देबारी मार्ग है और मैंने पानी की एक बूंद तक न छूने का प्रण लिया है। बस फिर क्या था, तुरंत चांदी का प्याला फेंक दिया और प्यासे ही प्यासे देबारी गिरिमार्ग पार करके तृषा बुझाई।"

"अच्छा तो इसी कारण वे उदयपुर से बाहर रहते हैं !"

"यही कारण होगा बापू ! यूं वह बहादुर भी तुम्हारे समान हैं। जब

से दादागुरु ने भीमसिंह के नाम पत्र दिया है, तब से मैं बराबर कह रहा हूं कि जैसे तुम वीर हो वैसा ही तुम्हें सरदार भी मिला है। मैंने सुना था कि भीमसिंह उदयपुर का परित्याग करने के बाद दादागुरु के पास भी गए थे। उनके पास कुछ समय तक रहे थे और फिर यह लड़ाई आरंभ होने पर दादागुरु ने ही उन्हे युद्ध में शामिल होने के लिए भेजा था। दादागुरु के हृदय में युवराज जयसिंह की अपेक्षा इस दरिया-दिल भीमसिंह के लिए ज्यादा सम्मान है।"

गलाल यह इतिहास सुनकर अत्यंत प्रसन्न हो उठा। दादागुरु की गहरी अंतर्दृष्टि के प्रति भी उसका आदर भाव बढ गया। उसने कहा, "इसीलिए दादागुरु कहते थे कि तेरे जैसे नवयुवक के प्रशिक्षण के लिए भीमसिंह ही एक सुयोग्य पुरुष है। सिर्फ युद्ध की तालीम ही काफी नहीं है। जीवन के शस्त्रागार मे त्याग और उदारता के असली फौलादी शस्त्र भी होने चाहिए!"

गलाल भीमसिंह से मिलने को अधीर हो उठा। उसने वकता भाई को दादागुरु का पत्र देकर उसी वक्त रवाना किया और कहा, "तुम्हारे आने पर ही रोटी खाऊंगा—तुम्हारे साथ···।"

गलाल को ज्यादा समय तक प्रतीक्षा नहीं करनी पडी। सैनिको ने अभी आधी रोटी खाई ही थी कि वक़ता भाई का अश्व दिखाई दिया। उनके साथ एक सैन्य अधिकारी भी था। वकता भाई ने उस अधिकारी को छावनी मे सूबेदार के पास भेजा। वह स्वयं गलाल के तंबू की ओर मुडा। गलाल को न केवल वकता भाई वरन् उनका घोड़ा भी हर्षोल्लास-मय दिखाई पडता था। निकट पहुचने पर छलाग मारते हुए वक़ता भाई ने कहा, "दादागुरु का पत्र देखते ही 'कहा है वह राजकुमार' कहते हुए वे गद्दी पर से उठ खड़े हुए। फिर मुझसे कहा कि अभी ही उनको ले आओ।" वक़ता भाई ने कमर की तलवार खोलते हुए कहा, "चलो, हम लोग रोटी खा लें···।"

गलाल का इरादा इनकार करने का था, पर सहसा वक़ता भाई का खयाल आ गया। आदेश दिया, "ले आओ रोटी!"

चांदी की दो थाली लिये दो भाई उपस्थित हुए। थाल में रोटी और

कटोरी मे हिरन की तरकारी थी। तीसरा सेवक पानी की झारी और दो गिलास लिये बापू के हाथ धुलाने के इरादे से खडा रहा। परंतु गलाल ने तो थाली उठाकर सीधी गोद में रख ली और बगैर हाथ धोए भोजन पर टूट पडा। वकता भाई ने जैसे-तैसे हाथ धो लिये।

गलाल के भोजन-पात्र भले ही चांदी के हों, पर वह मूलतः एक सैनिक था और इसके अतिरिक्त उसके मन में यह विचार भी था कि भीमसिंह जैसा उदार-हृदय सरदार उसकी प्रतीक्षा मे बैठा है! ऐसी स्थिति मे वह कैसे आराम के साथ भोजन कर सकता है? वकता भाई को भी उसका अनुसरण करते हुए उतावली करनी पडी। वकता भाई का भोजन समाप्त होने के पहले ही गलाल हाथ धोकर पगडी बांधने लगा।

गलाल के कारण वक़ता भाई को भी जमाकर पगड़ी बांधने की आदत पड गई थी। परंतु आज तो यद्यपि सेवक ने सामने दर्पण रखा था तथापि गलाल बापू ने अंतिम दो-तीन पेच लगाते समय ही दर्पण में देखा था।

गलाल एक अतिशय शौकीन जीव था। वह अपने साथ कपडों से भरे हुए दो-तीन संदूक लाया था। इत्र-मजूषा भी साथ में थी। नौकर द्वारा खोले गए संदूक में से उसने सोने के बेलबूटों वाला ऊंची किस्म का गुलाबी अचकन पसंद किया।

गलाल ने पोशाक पर इत्र लगाते हुए वक़ता भाई से कहा, "मां कहती है कि लडने जाता है उस वक्त भी इत्र लगाता है!"

वकता भाई को मां की बात उचित लगी, "फिर आपने क्या जवाब दिया बापू?"

" 'हम ठहरे क्षत्रिय-पुत्र! हम तो लौटाने की शर्त पर अल्पकाल के लिए जीवन लाए हैं!' यह कहकर मैंने मा से कहा कि जीवन की इस धरोहर को हर तरफ से जी लेना चाहता हूं! क्यों वकता भाई, मैंने गलत तो नहीं कहा न?"

गलाल जब भी जीवन उधार मांग लाने की बात कहता था तब अन्य संबंधियों के समान वक़ता भाई भी बेचैनी महसूस करते थे और इस वक्त

तो वह और भी ज़्यादा बेचैनी महसूस कर रहे थे; क्योंकि गलाल युद्ध के मोर्चे पर जा रहा था। वकता भाई ने व्यथित स्वर में कहा, "उधार मांगा हुआ जीवन है, इसीलिए इसे सभालकर रखना ज़रूरी है बापू ! यूं ही लापरवाही से खो देने पर उधार देनेवाले को क्या जवाब दोगे ?"

गलाल को वक़ता भाई की बात ठीक तो लगी पर पसंद नहीं आई। कमर पर कसी तलवार के ऊपर झाली भाभी की कटार धारण करते हुए कहा, "आत्मा का स्वभाव घोड़े के जैसा होता है—छूटा नहीं कि स्वामी के यहां पहुंचा नहीं···वक़ता भाई, जल्दी करो न ! तुम्हारी देरी से ही देर हो रही है। हम तो अब तैयार है···।"

वक़ता भाई ने सूबेदार को बुलाकर कूच का आदेश देते हुए कहा, "यह सरदार तुमको अपने साथ ले जाएगा——यह जो स्थान बताए वहीं पर पडाव डालना। मैं और बापू कुंवर साहब से मिलकर छावनी मे आ मिलेंगे।"

गलाल के साथ-साथ वक़ता भाई भी अश्वारूढ हुए।

भीमसिंह की जिंदादिली के विषय में सुनने के बाद, ऐसे व्यक्ति के संरक्षण में उसे रखने के पीछे दादागुरु की दूरदर्शिता और उसके प्रति उनकी ममता याद आ गई। गलाल अब धैर्यवान होने की कोशिश कर रहा था। युद्ध के लिए छटपटाती हुई अपनी आत्मा को वह समझाता था···मैं यह नहीं मानता कि अकबर की पराजय मुगल-बादशाह की पराजय है। अकबर की सेना के हारने का मतलब औरंगजेब की सेना का हारना है, ऐसा सोचना स्थिति का अधूरा एवं अपूर्ण मूल्याकन नही है क्या ? अरावली की भूलभुलैयां में महाराणा जाल डाले बैठे हुए हैं और यदि वह बादशाह को हरा भी दें तब भी युद्ध का अंत थोड़े ही होता है ? उसका नाम औरंगजेब है, वह घायल चीते की तरह पुनः हमला करेगा !

रास्ते में गलाल, भीमसिंह के विषय में वक़ता भाई से और अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहता था, पर उसका घोडा एक 'राशवा' आगे का आगे बना रहता था। लगता था कि घोड़े ने भी अपने मालिक की अधीरता और व्यग्रता को पहचान लिया था।

भीमसिंह के तंबू के आगे नग्न तलवार का पहरा था। पहरेदार ने दूर

से ही तलवार की आड़ द्वारा गलाल को रुकने का इशारा किया।

वक़्ता भाई ने भी कहा, "बस बापू ! यहीं तक।"

पर स्वाभिमानी गलाल को यह अच्छा नही लगा। तंबू अभी भी लगभग बीस हाथ की दूरी पर था। उसने उत्तर दिया, "तुम रुको, मैं जाता हूं।"

अश्वारोही गलाल को इस तरफ बढ़ता देखकर दोनो प्रहरी सावधान हो गए। एक ने उसे ललकारा भी, "बस, वहीं पर रुक जाओ, ठाकुर ! "

पर गलाल ने इस चेतावनी को अनसुना कर दिया। सतर्क खड़े प्रहरियो ने गलाल की तेजस्विता, भव्यता, प्रभावोत्पादकता एवं सुंदरता देखकर अनुमान लगाया, "कोई अच्छे घराने का प्रतिष्ठित जागीरदार प्रतीत होता है।" तथापि दोनों प्रहरी तंबू के प्रवेश-द्वार के आगे आमने-सामने तलवार खीचकर सावधान होने की मुद्रा मे खड़े रहे।

घोड़े पर से कूदकर गलाल ने हाथ के इशारे से प्रहरियों को शांत रहने का संकेत दिया और उनकी ओर कदम उठाते हुए अधिकार की आवाज़ में आदेश दिया, "कुंवर साहब से कहो कि अलीगढ़ का राजकुमार गलालसिंह आपसे मिलना चाहता है।" गलाल को मेवाड़ी भाषा प्रिय थी पर बोलना उचित नहीं जंचता था।

इसके पूर्व कि अदर गया हुआ पहरेदार पूरी बात कहे, उत्साह से सराबोर हृष्ट-पुष्ट भीमसिंह अपने आसन से उठकर खड़ा हुआ। भीमसिंह की गर्दन पर घुघराले बाल झूम रहे थे। कान में मुरकिया थी तो गले में हीरों का हार था जो कि रेशमी कुरते पर पुष्पहार-सा सुशोभित हो रहा था। पायजामा भी रेशमी था। उसने गलाल की ओर हाथ बढाया।

गलाल ने भीमसिह के हाथ में अपना हाथ दिया। भीमसिंह ने देव-कुमार के समान प्रियदर्शी गलाल का हाथ पकड़कर उसे पूरी तरह अपने वक्षस्थल पर खींच लिया। गलाल यद्यपि ऊंचाई में लगभग भीमसिंह जितना ही था तथापि उसका शरीर अपेक्षाकृत छरहरा लगता था।

और फिर गलाल के दोनों हाथों को अपने हाथों में लेते हुए, जैसे उसकी मनमोहिनी निर्दोष सूरत को अपने सामने रखकर, ध्यानपूर्वक

देखने की मुद्रा में भीमसिंह बोला, "अलीगढ़ का ऐसा स्वरूपवान कुमार मेरी मदद पर आया, इसे मैं अपना परम सौभाग्य मानता हू, कुमार !"

वह उसका हाथ पकड़े हुए उसे तंबू में ले गया। लबी-चौड़ी गद्दी पर तकिये के आगे बैठते हुए भीमसिंह ने गलाल को अपने पास बैठाया। एक तकिया देते हुए कहा, "इतमीनान से बैठ जाओ कुमार।"

गलाल अभी तक समझ नही पाया था कि इस गंभीर आदर-सत्कार का आखिर क्या आशय है ? उसने तो माना किया था कि बहुत हुआ तो प्रवेश-द्वार पर कोई बड़ा सरदार उसे लेने आएगा और ज्यादा से ज़्यादा यही किया जा सकता था कि भीमसिंह जैसा मेवाड़ का प्रतापी राजकुमार खड़ा होकर उसका अभिवादन करे। और इसमें भी यदि वह हाथ मिला लेता तो बस हद हो जाती। इससे अधिक की न तो उसने कामना की थी और न अपेक्षा ही। पर यहां तो खद भीमसिंह चलकर उसके सामने आया था।

आज जीवन में पहली बार जाना कि स्वागत किसे कहते हैं ? ऐसे स्वागत की तो अल्हड गलाल ने कल्पना तक नहीं की थी। थोड़ी देर तक तो वह विस्मय-विजड़ित-सा बल्कि अपने जीवन को धन्य-धन्य मानता हुआ अवाक्-सा खड़ा रहा।

भाव-विभोर भीमसिह ने तकिये का सहारा लेते हुए पुनः उसका ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया। गलाल की सुंदर पोशाक और इत्र की महक का मज़ा लेते हुए परिहासमय स्वर में कहा, "लगता है, तुम जैसे बरात में आए हो !" फिर सहसा कुछ याद आते ही कहा, "आप मेरे से छोटे हो न इसीलिए...!"

गलाल को शिष्टाचार और शिष्टाचार की भाषा की कोई खास जानकारी नहीं थी। अपने अब तक के जीवन मे उसे ऐसी शिक्षा ग्रहण करने की कभी ज़रूरत ही महसूस नही हुई थी। बोला, "मुझे 'आप' की अपेक्षा 'तुम' संबोधन ज्यादा प्रिय है, कुवर सा'ब !"

"कुवर सा'ब नहीं, दादाभाई कहो। हां तो..." कहते-कहते भीमसिंह एकाएक गंभीर हो गया। दाहिना हाथ दाढी पर रखकर पूछा, "तुम्हारा युद्ध-सबंधी अनुभव कैसा-कितना है, बापू ?" वह गलाल की प्रियदर्शी मासूम

सूरत और उसकी बराती की वेशभूषा को अब भिन्न दृष्टि से देख रहा था।

गलाल इस प्रश्न के अंतर्निहित भाव को समझ गया। प्रथम प्रश्न को ध्यान में रखते हुए उत्तर दिया, "राजपूत के बेटे के लिए तो युद्ध ही बरात है, दादाभाई!" दरअसल वह कहना चाहता था कि राजपूत युवक का एक पैर रनिवास में और दूसरा रकाब में रहता है। पर भीमसिंह ने उससे छोटे भाई का संबंध जो स्थापित कर लिया था, अतः कुछ कह न सका।

उसके पहले ही वाक्य से भीमसिंह उसे पहचान गया। मन ही मन सोचा—'लड़का बहुत तेज़ लगता है!' जैसे इस लड़के से कुछ सीख रहा हो यों वह प्रसन्न-वदन सिर हिलाते हुए स्वगत-सा बड़बड़ाया—'समझ-भरी बात है। राजपूत के लिए तो युद्ध ही बरात है!

तदुपरात भीमसिंह ने उससे अपने युद्ध-अनुभवों एवं दादागुरु के विषय मे चर्चा की। गलाल के कुल, कुटुंब, राज्य-विस्तार एवं भौगोलिक स्थिति के बारे मे भी पूछताछ की। इस याद को भी ताज़ा किया कि अलीगढ़ में चौहान-कुल का शासन है···।

छावनी के मुख्य व्यवस्थापक को बुलाकर गलालसिंह का परिचय कराया। यह हिदायत भी दी कि तंबू इत्यादि जिस किसी वस्तु की ज़रूरत हो उसे तुरत मुहैया कराया जाए। सिर्फ इतना ही नहीं, भीमसिंह ने उसे नियमित रूप से अपने साथ भोजन करने रहते का निमंत्रण भी दिया।

परंतु गलाल ने उसे साभार वापस ठेल दिया। कारण भी प्रस्तुत किया, "मेरे साथ मेरे राज्य के दो-तीन ठाकुर भी हैं। मेरे लिए उन्हें अकेला छोडना मुनासिब नहीं होगा।"

गलाल की आधी बात तो ठीक ही थी। दादाभाई के दिए हुए पांच सौ सैनिकों में पचास घुडसवारों के साथ उसके अपने राज्य के दो ठाकुर भी शामिल हुए थे। इसके अतिरिक्त वक़ता भाई तो खास काका का बेटा होने के साथ-साथ एक जिगरी दोस्त भी था। इसलिए उसने भीमसिंह के साथ भोजन करने का यह मान-सम्मान भी जाने दिया।

गलाल ने यदि अपने अंतर में गहराई से झांककर देखा होता तो पता

चलता कि उसे अपने सरदारों से अलग होना इसलिए नापसंद था कि वह वस्तुतः अपनी निजी स्वतंत्रता छोड़ना नहीं चाहता था। यही नहीं, छोटा होने के बावजूद भी वह अपने निजी दरबार का ठाट जारी रखना चाहता था।

भोजन का प्रस्ताव रखते समय भीमसिंह के मन में यह भावना भी थी कि इस प्रकार वह गलाल का सम्मान कर रहा है और केवल दो-चार रजवाड़ों के राजाओं को जैसा सम्मान दिया है, वैसा ही इस कुमार को भी प्रदान कर रहा है। पर गलाल ने जब कारण प्रस्तुत किया तो भीमसिंह ने हंसकर उसे और भी अधिक गौरव प्रदान किया, "ठीक है, तुम अपना दरबार जारी रखो।"

इस प्रश्न पर निर्णय लेना अभी शेष था कि युद्ध की व्यूह-रचना में गलाल को कौन-सा स्थान दिया जाए। शीघ्र स्थान देना संभव भी न था। संपूर्ण व्यूह की रचना हो चुकी थी। भीमसिंह के दायें-बायें पार्श्व में दो बड़े राजा थे। सब से आगे वह स्वयं था और पीछे का व्यूह भी एक स्वाभिभक्त निष्ठावान सरदार को सौंप रखा था। अब तो केवल युद्ध आरंभ होने पर या कोई नयी परिस्थिति उत्पन्न होने पर ही गलाल को विशेष दायित्व सौंपा जा सकता था। इसके अतिरिक्त इस समग्र विचार-विमर्श और निर्णय के पूर्व गलाल की वीरता और युद्ध-कुशलता से परिचित हो लेना भी इतना ही आवश्यक था।

भीमसिंह ने गलाल की परीक्षा लेने का निर्णय भी ले लिया। इधर-उधर की बातों के बाद गलाल को बिदा करने के वक्त भीमसिंह ने कहा, "शाम को दरबार आयोजित कर आपका परिचय दूंगा और सुबह शिकार पर जाऊंगा।" भीमसिंह ने गलाल का लहजा अपनाते हुए हंसी-विनोद भी कर लिया।

और फिर भीमसिंह इस नौजवान के कंधों पर हाथ धरे उसे दरवाज़े तक पहुंचा आया। संतरियों को आदेश दिया, "सबको कह दो कि बापू जब चाहें तब आ सकते हैं।"

गुप्तचर के वेश में

गलाल का व्यक्तित्व इतना भव्य और मनमोहक था कि पचास हजार सैनिको की उस छावनी मे वह छोटे-बड़े सभी के लिए चर्चा का विषय बन गया था। सायंकालीन दरबार में भीमसिंह ने जिस उत्साह के साथ उसका परिचय दिया उसके फलस्वरूप वह राजाओं और जागीरदारो के बीच जाने-अनजाने ही ईर्ष्या का पात्र बन गया।

तीसरे दिन शिकार के दौरान उसने निशान बेधना शुरू किया और भीमसिंह के मुख से 'शाबाश', 'कमाल कर दिया बापू!' आदि शब्दों की बौछार होने लगी। भीमसिंह के मुख से ये प्रशस्तिसूचक शब्द सुनकर प्रचंड शूरवीरों के लिए भी गलाल जैसे एक कांटा बन गया, एक स्थायी चुनौती बन गया। परतु जिन सैनिकों के साथ गलाल का मान-सम्मान या उसके अधिकार टकराते नहीं थे, उनके बीच तो उसकी कीर्ति की महक फैल गई थी। पर गलाल की युद्ध के लिए आकुल-व्याकुल आत्मा, प्रशंसा की भूसी खाकर शांत होने वाली नही थी। युद्ध के लिए भूखा पेट, प्रशंसा की शब्द-रोटियों से भरने वाला नही था।

उत्तर दिशा मे बादशाह के साथ हुए युद्ध में राजपूतो की जीत का समाचार सुनकर गलाल का गरम खून उबलने लगा। उसने वक़्ता भाई से कहा भी सही, "कहीं ऐसा न हो कि अपनी तलवार प्यासी ही रह जाए!"

एक बार मौका मिलने पर उसने भीमसिंह के आगे भी अपना सताप प्रकट किया, "दादाभाई! हम तो हिरन ही मार खाएंगे न?"

भीमसिंह को गलाल का आशय समझने में देर न लगी। कहा, "तुम्हारी बात सही है।" कुछ पल ठहरकर भीमसिंह ने पुनः कहा, "कुछ उपाय सोचना चाहिए···।"

गलाल ने कहा, "अकबर हार गया। दिलेर खां भाग गया। औरंगज़ेब तो अपनी बेगम को भी छोड़कर, दुम दबाकर भाग खड़ा हुआ है। अब लड़ने को बचा ही कौन है, दादाभाई?"

"तुम भूलते हो, बापू! बादशाह के पास बेशुमार फ़ौज है। वन में

जिस प्रकार असंख्य पेड़ है, वैसे ही उसके पास स्थान-स्थान पर सेना है और चींटीदल के समान उसके उस अंतहीन लश्कर का कोई अंत नहीं है। उसके कई सैन्य-दल दक्षिण में लड़ रहे है। दिल्ली मे भी कई सैन्य-दल पड़े-पड़े रोटी खा रहे हैं। दूर की क्या कहें, अपने राजस्थान में भी चित्तौड़गढ़ मुगल सेना से भरा हुआ है और अजमेर की भूमि तो प्रबल मुगल-वाहिनी से दबी जा रही है···।"

"पर ये सब सैनिक अब यहां तक नही आएंगे, दादाभाई! यहां आने में तुक भी क्या है? अब तो उन्हें पहली विजय वही अर्जित करनी होगी जहां वे हारे हैं।"

"तुम्हारी यह बात ठीक प्रतीत होती है।" मूंछ को बल देता हुआ भीमसिंह विचारमग्न हो गया।

थोड़ी देर बाद गलाल ने उदास स्वर में कहा, "दादाभाई, अपनी सेना भी पड़ी-पड़ी आलसी होती जा रही है।"

भीमसिंह को हंसी आ गई। बोला, "तुम्हारा कथन सही है। हिरनों को ही मारकर वे खा रहे है। पर आखिर लड़ना किससे है बापू?" मुस्कराकर प्रश्न किया, "तुम और मैं लड़ लें, बापू?"

"दादाभाई, लड़ने के लिए शत्रुओं की कमी नही है। उस तरफ सपूर्ण सोरठ प्रदेश प्रतीक्षा कर रहा है तो इधर गुर्जरदेश भी अपनी हवेली संभालकर बैठा है। परंतु ये सब लड़ाइया तो जैसा कि अभी आपने कहा, आपके और मेरे बीच की लड़ाई के समान हैं।"

"कैसे?"

"वे भी औरंगज़ेब की धर्मांधता के शिकार और हम भी।"

"ओह! समझा मैं।" और मूछो में हंसकर तुरंत जोड़ दिया, "तो इनमें से कोई आततायियों का समर्थक राज्य ढूंढ निकालो न!"

गलाल तो पहले से ही ढूढ़कर तैयार बैठा था और इसीलिए आज उसने भीमसिंह के आगे यह प्रसंग छेड़ा था। उसने सहर्ष कहा, "आपकी आज्ञा की देर है, पास में ही एक ऐसा राज्य मौजूद है, दादाभाई!"

"कौन-सा राज्य?"

"ईडर।"

"ओ···ईडर मे कोई नवाब है। तुमने ठीक कहा। किस वंश का नवाब है, बापू ?"

"यह तो नही मालूम कि गोरी वंश का है या तुगलक वंश का, पर है एक धर्मांध आततायी राज्य।"

भीमसिंह ने सविनोद हंसते-हसते कहा, "खैर, काले-गोरे से क्या मतलब ! धर्मांध विधर्मी राज्य है, यही पर्याप्त है। मालूम करो कि उसके पास कितनी सेना है।" क्षणभर रुककर कहा, "तुम्हें मालूम है न कि ईडर का किला भी चित्तौड के किले के समान अभेद्य है ?"

"हां, वैसा ही मज़बूत है, दादाभाई ! यदि मेवाड़ में चित्तौड, तो गुजरात में ईडर का क़िला मशहूर है।"

"तो फिर ?" भीमसिंह गलाल के सम्मुख ताकता रहा, जैसे पूछ रहा हो कि तुम कहना क्या चाहते हो ?

"किले को ध्वस्त करने का मजा तो तभी है जब वह अभेद्य और अटूट हो। आप आज्ञा दें तो मैं खुद जाकर जानकारी ले आंऊ।"

भीमसिंह ने सहर्ष उसे जाने की आज्ञा प्रदान की, "ठीक है, तुम स्वय ही जाकर पक्की खबर लाओ।"

उसी रात गलाल ने वक़ता भाई से मंत्रणा के बाद, अपने सरदारों से कुछ दिन के लिए छुट्टी प्राप्त की और सवेरे-सवेरे वकता भाई और अन्य चार साथियो सहित प्रयाण कर दिया।

गलाल के साथ एक रंगास्वामी था जो विभिन्न प्रकार के वेश-परिवर्तन में निपुण था। स्त्री की भूमिका भी वह अपूर्व कुशलता के साथ निभा सकता था। आवाज़, चाल और अदाओं के अतिरिक्त मुंह पर बढ़ी हुई दाढ़ी-मूंछ भी इतनी आज्ञाकारी थी कि चाहने पर उससे वह एकसाथ मुसलमान और ठेठ कुलीन राजपूत भी बन सकता था। अद्वितीय थी उसकी अभिनय एवं वेश-परिवर्तन की कला !

दूसरा साथी एक नगारची नौजवान था। वह नगाड़ा बजाने में जितना निपुण था, लड़ने मे भी उतना ही माहिर था। और वलमजी नामक एक अधेड़ आदिवासी भी उसके साथ था। वह दौड़ने मे और दुर्गम से दुर्गम ऊंचाई पर चढ़ने मे अत्यंत पटु था। चौथा सैनिक धीरसिंह भी एक

होशियार और सहासी सरदार था।

सारी राह गलाल के मस्तिष्क में तरह-तरह की विचार-लहरियां उठती रही। दादागुरु ने उसे कहा था, "करामात कटार से भी बड़ी है।" और इसलिए वह करामात का प्रयोग भी करना चाहता था। एक विचार यह भी सूझा कि मुसलमान का वेश धारण कर ईडर के नवाब हुसैन से मिला जाए और उससे अकबर के नाम पर मदद मांगी जाए। और यदि वह इस्लाम धर्मानुयायी के रूप मे सहायता देना स्वीकार कर ले तो बदले में उसे संपूर्ण गुर्जर-प्रदेश का आधिपत्य सौंपने का वचन देकर ललचाया जाए···।

रंगा ने इस काम को संपन्न करने के लिए उत्साह प्रकट करते हुए कहा, "एकदम ठीक विचार है, बापू! मैं उस नवाब से ठेठ पठानी भाषा में इस तरह से बात करूंगा कि पूरी की पूरी बात उसके गले उतर जाए। और इसके बाद यदि हुसैन ससैन्य मदद के लिए निकलेगा तो उसकी सेना को दोनों तरफ की घाटियों के मध्य फंदे में फंसाकर रौद डालेंगे और शेष सेना के साथ ईडर पर टूट पडेंगे···।"

गलाल ने सर्वप्रथम ईडर के पर्वतों, रास्तों और जंगलों आदि के विषय में जानकारी एकत्र करनी शुरू की और इसके लिए उसने यथाशक्य जानकारी प्राप्त करने हेतु रंगा और नगारची को ईडर भेजा। मिलने का समय व स्थान आदि भी पहले से निश्चित कर लिया था।

योजना-अनुसार चौथे दिन शाम को गलाल लकडहारे के वेश में एक तालाब पर रंगास्वामी की बाट जोहता हुआ वकता भाई के साथ बैठा था। ईडर उस स्थान से लगभग डेढ कोस दूर था। आस-पास के ग्रामीण लोग शहर से वापस लौट रहे थे। किसी के कधो पर खरीदे हुए कपड़ों की गठरी थी तो किसी के सिर पर घी का खाली कुप्पा था। कई लोग छोटी-मोटी खरीद को गधे की पीठ पर लादे चिलम फूकते हुए लौट रहे थे। हरेक के पास तलवार, तीर-धनुष या कोई छोटा-बड़ा हथियार अवश्य था।

एक-एक कर तरह-तरह के लोग गुज़रते रहे पर रंगास्वामी या नगारची की समानता किसी में भी नही दिखाई पड़ी।

दिन डूबने के साथ-साथ गलाल तर्क-वितर्क करने लगा, "क्या पता

पकड़ लिये गए हों···?"

सूर्यास्त में अभी थोड़ा-सा ही समय शेष था। गलाल ने वकता भाई से कहा, "तुम यही बैठो, मैं शहर मे जाकर उनका पता लगाता हूं।"

"नही, तुम बैठो, मैं जाता हूं।" उन्होंने पहले ही तय कर लिया था कि बातचीत के दौरान एक-दूसरे का नाम नही लेंगे।

"कहां पता लगाओगे ?"

"पकड़ा गया होगा तो झटपट पता लग जाएगा।"

शहर की ओर ताकते हुए गलाल ने कहा, "दो घुडसवार आ रहे है···।"

"हा, नवाब के सिपाही लगते हैं।"

वकता भाई ने उठते हुए पूछा, "छिप जाऊं ?"

"नही, गट्ठर उठाओ, सामने जाएंगे।" गलाल ने पेड़ के सहारे टिकाए हुए लकड़ी के गट्ठर की ओर देखते हुए कहा, "यदि कोई पूछताछ करे और हम पर संदेह करने लगे तो पाल पर रास्ता है और पार्श्व में गहरा पानी भी है, फेंक देंगे।"

दोनों को नहीं, एक को।" गलाल की सप्रश्न नज़र देखकर वक़ता भाई ने कहा, "जानकारी भी तो लेनी पड़ेगी ?"

"ठीक कहते हो।" और गलाल ने गट्ठर उठाने के पहले अंगरखे के नीचे सुरक्षित कटार ज़रा ढीली की। गट्ठर सिर पर रखते हुए फुसफुसाया, "भाभीजी की कटार को आज प्रथम बलि मैं ही चढाऊंगा···अगले सवार की।"

"उतावली मत करना।"

"नही करूंगा।"

दोनों अपने-अपने अपने सिर पर गट्ठर उठाकर अश्वारोहियों की दिशा में चल पड़े।

गलाल सोच रहा था—'यदि वे दोनों बंदी बना लिये गए होंगे तो तलाश तेज़ हो गई होगी। यह भी शक्य है कि नगारची को सताया गया हो और कदाचित् उसने आज के संकेत की सूचना दे दी हो···मारपीट चौदहवां रत्न है। ऐसा प्रसंग पहले कभी आया नहीं, अतः पता भी क्या

चले कि नगारची कितनी मार खा सकता है ?'

उनकी तरफ बढ़े आ रहे अगले सवार ने ठहरने का आदेश देते हुए अपना घोडा रोक दिया । पिछले ने भी उसका अनुसरण किया ।

"कैसे लकड़हारे हो ?"

"लकडहारे जैसे लकड़हारे ।" गलाल की आवाज़ में कतई नरमी नही थी । वह तो इस समय जैसे तलवार खीचकर खडा था। आस-पास किसी मनुष्य का आवागमन न था। सूर्य भी पहाड़ के पीछे छिप गया था । पहाडों की श्यामल परछाइयां क्रमशः रात के अंधेरे मे विलीन होती जा रही थी ।

वक़ता भाई ने स्थिति को संभालते हुए कहा, "मेरा नाम रघा है, सरकार ! और इसका नाम गौतमा ।"

"नाम नही पूछा । कितनी लकड़ी उठाई हैं ? कौन-सा लकड़हारा है ?"

गलाल को अश्वारोही की आवाज़ परिचित-सी लगी । दाढी-मूछ वाले अश्वारोही को तीखी नज़र से घूरते हुए गलाल ने प्रश्न किया, "पहले इस प्रश्न का उत्तर दो कि तुम कौन से अफसर हो ?"

"हम भी तुम्हारे जैसे" कहकर अफसर ने धीमी आवाज़ में कहा, "लकड़हारे का वेश तो ठीक है, पर लगता है, आवश्यकतानुसार लकड़ी नहीं मिली है ।"

यह सोचकर वक़ता भाई के आश्चर्य की सीमा न रही कि चार दिन के अंदर ही ये लोग अफसर कैसे बन गए !

गलाल ने मुस्कराकर कहा, "हमने सोचा 'रंग' तो वैसे भी आएगा ही, इतनी लकड़ी काफी है ।"

'रंग' शब्द रंगास्वामी का प्रतीक था। एक-दूसरे को ठीक से पहचान लेने के बाद अश्वारोही उन्हें सड़क की एक तरफ ले गया मानो गट्ठर की तलाशी लेना चाहता हो । इसी ढंग से उसने कहा, "खोल दो इस गट्ठर को । दोनों मिलकर जल्दी खोलो ।"

तलाशी के मूल रहस्य की गंध मिल जाने पर गलाल झीगुरों की-सी धीमी आवाज़ में यह कहे बगैर न रह सका, "ऐसा क्यों नहीं कहते कि

एक खोलेगा और दूसर उलझाएगा ? अब कह भी दो सारी बात !"

अगला सवार नीचे उतरा। खूब गहरी जांच कर रहा हो इस अदा के साथ कमर पर हाथ रखे खडा रहा। बोला भी तो इस प्रकार कि जैसे अपनी मुसलमानी दाढ़ी से बात कर रहा है, "अच्छे शकुन देखकर निकले हैं। नवाब बहुत सजग है। जब से भीमसिंह का लश्कर इधर आया है तब से वह बराबर बादशाह के साथ हो रहे युद्ध की और हमारी सेना की रणनीति की पूरी खबर रख रहा है और लगता भी खूब घबराया हुआ-सा है। हम दोनों नवाब के विश्वसनीय साथी बन गए है। मैं असली मुसलमान हूं। पाच बार नमाज पढ़ता हू और बादशाह के लश्कर का सिपहसालार हूं। मेरा यह बंधु एक विश्वसनीय व्यक्ति है। मूलतः हिंदू है पर मुसलमान बन गया है। मैं राजपूतों की सेना की खोज-खबर रखने के लिए इसका एक हिंदू के रूप में इस्तेमाल करता हूं। बादशाह की सेना के हारते ही मैं भागकर ईडर के नवाब की शरण में आया हूं। वह एक कट्टर मुसलमान हैं। मेरे हृदय में काफिरो के रक्त की प्यास है जिसे मैं उनकी सेवा में रहकर बुझाना चाहता हूं।"

चारों तरफ अंधेरा फैल गया था। रगा का घोड़ा काला था, पर नगारची के लाल घोड़े पर भी अंधेरी रात का स्याह रंग चढ गया था।

उन्होंने फुसफुसाकर अपनी बात पूरी की और पुनः इसी समय और इसी स्थल पर तीसरी संध्या को मिलने का निर्णय लेकर वे अलग हो गए।

दोनों अश्वारोही इस प्रकार आगे बढे जैसे वे तालाब के आखिरी छोर तक की छानबीन करना चाहते हैं। गलाल और वक़ता भाई ने ज्यों-त्यों लकड़ी की गठरी बांधकर पाल की नीचे की झाड़ी में प्रवेश किया। गलाल सचमुच के लकडहारे की तरह जल्दी-जल्दी बडबड़ा रहा था, "यही रख छोड़ते है···कल सवेरे आकर बेच आएंगे···उस साले अमलदार ने व्यर्थ ही परेशान किया।"

वक़ता भाई सोच रहे थे कि बापू यू ही मजाक के खातिर बोल रहे हैं। पर गलाल के मन मे उपहास के साथ-साथ यह संदेह भी वर्तमान था कि जब वह रंगा से बात कर रहा था उस समय इस झाडी में कुछ

हलचल हुई थी । गट्ठर डालते समय भी उसे शक हुआ कि दायी ओर कोई चीज जैसे दब गई है ।

गलाल ने वक़ता भाई का हाथ दबाकर संभावित खतरे की सूचना देते हुए झाड़ी की दिशा में पैर बढ़ाया । फिर जैसे सुनाना हो यो खुलकर कहा, "इस तरफ छोटे मार्ग से होकर जल्दी घर पहुंच जाएंगे···तुम मेरे पीछे-पीछे चले आओ···मन में राह भूलने का डर मत रखना।"

गलाल ने उस झाड़-झंखाड़ में तेजी से चलने का अभिनय तो किया, पर उसके कान पीछे लगे हुए थे । थोड़ा आगे बढ़कर वह थम गया । वक़ता भाई अभी प्रश्न पूछने ही जा रहे थे कि इतने में गलाल ने उनका हाथ दबाकर उन्हें चुपचाप पीछे-पीछे आने का इशारा किया और स्वयं दबे पाव थोड़ा टेढ़े घूमकर जिस स्थान से रवाना हुआ था उसी तरफ चलने लगा । कान में किसी आवाज की भनक पड़ते ही वह तेज़ी से झाड़ी की ओट में छिप गया । दस कदम के फासले पर वक़ता भाई ने भी उसका अनुसरण किया। गलाल ने अंधेरे में आंखें गड़ाकर देखा कि दो आकृतियां, उसी रास्ते से जा रही हैं जिससे वह स्वयं गया था। पर कुछ पता न लगने के कारण वे आकृतिया वही अटक गईं । वे परस्पर फुसफुसाने लगे । गलाल शब्दों का अर्थ तो नही समझ सका, पर इतना जरूर जान गया कि वे मुसलमानी भाषा में बोल रहे हैं ।

दोनों आकृतियां वापस मुड़ी । झाडी के पीछे छुपकर वे घुडसवारों की राह देखते हुए इस प्रकार से खड़े रहे कि स्वयं बाहर दिखाई न दें। गलाल भी अत्यंत सावधानीपूर्वक उन लोगों के ठीक पास, दो-तीन झाडियों की आड़ में झाड़ी बनकर मूर्तिवत् खड़ा रहा । कानाफूसी करते हुए वे दोनों कह रहे थे, "आ रहे हैं···। आने दो उन काफिरो को ।"

पल-भर के लिए गलाल असमंजस मे पड़ गया । पर विचार करने पर उसे इतना भरोसा तो हो ही गया था कि ये दोनो रंगा पर जासूसी कर रहे हैं । एक विचार तो यह हुआ कि इन्हें समाप्त कर दिया जाए। पर दूसरा विचार यह भी था कि संभव है नवाब ने ही उन्हें भेजा हो, और अगर वे वापस नहीं पहुंचे तो नवाब रंगा पर उलटा ज़्यादा शक करेगा और क्या पता, जेल में डाल दे परंतु यह भी स्पष्ट था कि यह

सब देखने के बाद रंगा और हमारे बीच का संबंध छुपा हुआ तो नहीं ही रहेगा। इन लोगों से, नवाब को, इस संबंध की सूचना मिली नहीं कि रंगा के प्राण गए नहीं। रंगा कितनी ही चतुराई क्यों न दिखाए पर असत्य के पैरों मे बल कितना होता है? रंगा न सही, पर नगारची तो जलती सलाख का एक दाग लगते ही सारी बात उगल देगा···।

इस सारे ऊहापोह के अंत में गलाल ने दृढ निश्चय किया कि जिस वक्त घुड़सवार यहां से होकर गुजरेंगे उसी वक्त उन दोनो का काम तमाम कर दूगा ताकि रंगा को भी इस बात की खबर मिल जाए और भविष्य मे क्या करना है इस पर विचार करके आगे बढा जा सके। गलाल को विश्वास था कि वक़ता भाई उससे थोड़ी-सी दूर पर हैं और न भी होंगे तब भी वह आश्वस्त था कि वह अकेला ही दोनों से निपटने में समर्थ है। उधर वे दोनों आकृतियां झाड़ी की ओट मे बैठकर सवारों को आते हुए देख रही थी।

अंधेरे की वजह से जब अश्वारोही बिलकुल निकट आ गए तभी उनकी उपस्थिति का बोध हुआ। गलाल ने झाली भाभी की कटार निकाली। मन मे 'जय अंबे' का उच्चारण करते हुए झाड़ी में बैठी हुई एक आकृति की पीठ मे कटार भोंक दी। उसके मुख से, उस स्याह अंधेरी रात के सन्नाटे को बीधती हुई 'या अल्लाह' की एक भयानक चीख निकल पड़ी। दूसरी आकृति झाड़ियो के बीच दौड़ने लगी, पर पांच कदम पर ही पैरों में लकडी उलझ जाने से धूल में जा गिरी। इसके पूर्व कि वह संभलकर उठ सके—वक़ता भाई की तलवार ने उसको भी बलि बना दिया।

तलवार तानकर खडे हुए अश्वारोहियों के अचंभे और असमंजस का अंत नही था। रंगा के प्राण तो कंठ मे आ गए थे। 'या अल्लाह' की भयानक चीख हालांकि सांत्वना दे रही थी, पर दूसरे आदमी के मुख से ऐसी चीख नहीं निकली थी। "ओ···" सिर्फ यही शब्द निकला था और यह आह मृत्यु की सूचक थी, इसमें भी कोई संदेह न था। पर सवाल यह था कि यह किसकी आह थी?

और अपने हाथ की तलवार के साथ घोड़े की लगाम खींचकर पाल

से नीचे उतरते हुए गलाल ने ललकारा, "कौन हो तुम ? जीना हो तो..."

पर तभी दो आकृतिया उसकी ओर बढ़ने लगी।

वे चारों आकृतिया पुनः कानाफूसी करने लगी—इतनी धीमी आवाज़ मे कि अंधेरा भी नही सुन सकता था।

रंगा कह रहा था, "अभी से भाग जाऊं तो मेरा काम अधूरा रह जाएगा !"

गलाल कह रहा था, "मान लो कि चोर के पैर ढीले पड़ गए और वह पकड़ा गया, तो ?"

रंगा बोला, "तो कुछ नही होगा, बापू !" चारों ओर व्याप्त अधेरे पर उसने एक दृष्टि दौड़ाई और कहा, "उधार मागकर जीवन लाए है...।"

वक़ता भाई ने आशुकवि की तरह पदपूर्ति करते हुए कहा, "इसी-लिए संभालकर रखना है...!"

"मुझ पर छोड दो; नवाब घबराया हुआ है। औरंगजेब की तरह वह भी किसी पर विश्वास नहीं करता...यू थोड़ा-सा काम तो मां अंबा भवानी ने पूरा कर दिया है, थोड़ा मुझे पूरा कर लेने दो। दो-तीन दिन के लिए रुक जाओ। ये दोनो कमबख्त मारे गए। यह अच्छा ही हुआ।" फिर धीरे से कान में कहा, "अब तुम लकड़हारे नहीं रहे। घी के दो खाली कुप्पों के साथ तालाब के उस किनारे पर बैठकर इस ढंग से हिसाब करना कि जैसे शहर से घी बेचकर आ रहे हो। बस, इतना ही !" रंगा ने लगाम खींची।

गलाल ने खींची हुई लगाम पकड ली और कहा, "सुनो मेरे भाई ! तुम्हारी कीमत पर मुझे गढ़ नही जीतना है। बाहर से देखकर कह सकता हूं कि इस गढ़ को जीतना कोई मुश्किल काम नहीं है। आगामी एक-दो दिन में अंदर की हालत से भी वाकिफ हो लूगा। इसलिए कहना चाहता हूं कि यदि तेरे मन में रत्ती-भर भी संदेह हो कि नवाब तुझ पर शक कर रहा है तो घाटी के इस दरवाज़े से बाहर निकलते हुए इन घोड़ों को पुनः अंदर ले जाने की कतई ज़रूरत नही है।"

"बापू ! आप निश्चित रहो । तीसरी साझ को वहा···" लगाम के साथ-साथ रंगा ने अपनी रान भी भीच ली । पलक झपकते ही दोनों घुडसवार अधकार मे विलीन हो गए···। चारों ओर सन्नाटा था । सिर्फ़ जाते हुए घोडो की टापे उस सन्नाटे को गहरा बना रही थी···।

गलाल ने गढ़ जीता

गलाल, दसवें दिन ईडर से वापस लौटा । उसके तंबू में प्रवेश करते ही भीमसिह ने प्रश्न किया, "अरे बापू, तुम तो गए सो गए ही ! क्या खबर है ?"

"जैसी चाहिए, वैसी ही खबर है दादा भाई !" गलाल ने भीमसिह को प्रणाम किया । भीमसिह ने खड़े होकर उसे गले लगाया । गलाल के शब्दों से अधिक तो उसके चेहरे का उत्साह देख, भीमसिह को विश्वास हो गया कि कुछ लेकर आया है ।

गलाल ने ईडर के नवाब की घबराहट और विकलता का विस्तार से वर्णन किया । यह भी बताया कि रगा वहां हुसैन का सलाहकार बन गया है। अंत मे निवेदन किया, "अब धर्म के इस काम मे विलब नही होना चाहिए दादाभाई ! कल ही सेना को कूच का आदेश दे दीजिए ।"

"तुम्हें कितनी सेना चाहिए ?" भीमसिह गहरे सोच में डूबा हुआ था ।

"मेरे खयाल से तो अपनी सेना का चतुर्थांश काफी है, परतु फिर भी आधी सेना ले जाना ठीक होगा ।"

भीमसिह ने स्वगत-सा प्रश्न किया, 'कौन जाएगा ?'

भीमसिह की सेना मे कई राजा और सरदार ऐसे थे कि रुतबे की दृष्टि से गलाल उनकी तुलना में कहीं नहीं ठहरता था । ये सब गलाल को एक मामूली सरदार समझते थे । दरअसल उनकी दृष्टि में अलीगढ़ का राज्य कोई राज्य ही न था । कितनों ही ने तो इसका नाम तक नहीं सुना था । गलाल यदि गद्दीपति होता तो और बात थी, पर उसके पास तो अभी छोटी-मोटी जागीर भी नहीं थी ।

कई राजाओ और जागीरदारों ने इस संदर्भ में भीमसिंह के कानों तक यह संदेश पहुंचा दिया था कि आप इस साधारण सरदार को किसी राजा या ताजिमदार के अनुरूप जो सम्मान प्रदान करते हैं, वह बहुतेरो को कतई पसंद नही है।

इन सारी बातो का विचार करते हुए भीमसिंह ने प्रश्न किया, "कौन जाएगा ?" फिर तुरत कहा, "मुझे ही चढ़ाई करनी पड़ेगी।"

"दादाभाई ! आप स्वय ?" गलाल के स्वर में विस्मय का भाव था।

पिछले बीस दिन के अनुभव के आधार पर गलाल भी, छावनी के राजाओं और सरदारों का उसके प्रति जो व्यवहार था, उससे परिचित हो चुका था। पर उसके मन में पद या मान-सम्मान की लालसा नहीं थी। हालाकि वह अवश्य यह माला जपता रहता था कि उसे काम कर दिखाने का सुयोग मिले। इसके अतिरिक्त यह भी सही है कि कोई सम्मान भले न करे, किन्तु कोई उसका अपमान करे यह उसके लिए सर्वथा असह्य था।

गलाल अपने स्वभाव की इस विशिष्टता के प्रति अत्यंत सजग और संवेदनशील था। यही कारण था कि वह दूसरो से सतर्क होकर मिलता था। अधिकाशतः तो वह दूसरों से मिलना-जुलना टालता रहता था। फिर ईडर के मामले में तो उसे खुद ही सारा काम पूरा करना था। अतः भीमसिंह के सिवाय अन्य किसी को न तो गलाल सेनापति के रूप में स्वीकार कर सकता था और न दूसरे लोग ही गलाल को सेनापति के रूप में पसंद कर सकते थे।

भीमसिंह भी इस सारी स्थिति को बखूबी समझता था।

चौथे दिन उसने संपूर्ण सेना को कूच का आदेश दिया। औरंगजेब की हार के कारण वैसे भी सभी मोर्चे समेट लिये गए थे। फिलहाल किसी किस्म का कोई खतरा नहीं था। इन सारी स्थितियो और मसलों पर विचार करने के बाद ही उसने सेना का विश्रामजनित आलस्य भंग करने के लिए, उनके पैरो की जड़ता दूर कर उन्हें गतिशील बनाने के लिए कूच का आदेश दिया था।

इस निर्णय के पीछे भीमसिंह का यह पूर्वानुमान भी था कि आधी सेना ले जाने पर यदि कही अनुमान से अधिक शक्तिशाली और चतुर सिद्ध हो गया तो इस मामूली छोटे-से युद्ध में ही उसके ललाट पर पराजय का टीका लग जाएगा।

हालाकि गलाल अत्यंत शूरवीर था तथापि उसने अभी तक बड़े युद्ध नही देखे थे। इसके सिवाय भीमसिंह के मन पर उसके विषय में यह छाप भी अंकित थी कि आखिर वह अभी तो एक लड़का ही है। पर भीमसिंह को क्या पता था कि गलाल के तो रक्त में ही युद्ध की अग्निधारा प्रवाहित है! युद्ध के सिवाय कोई विचार उसके मन में नहीं आता था। गलाल जैसे रसिक, भावुक और पौरुषयुक्त तरुण के हृदय में स्वाभाविक रूप से स्त्री के विचार उमड़ने चाहिए। पर उसे तो बस अधिक से अधिक झाली भाभी की याँद आती थी और वह भी शायद इसलिए कि उनकी कटार हमेशा जनेऊ के समान उसके गले में लटकी रहती थी। उसके मनोलोक में उस मासूम सुकुमार अश्वारोही की स्मृति भी कभी-कभार अंगारे-सी भभक उठती थी।

स्मृतियों के इस जुलूस में एक विचित्र परिदृश्य उपस्थित हो जाता था। उसे झाली भाभी की कटार निहारते समय वह छोटी-सी तलवार याद हो आती और उसके साथ-साथ तलवार के दोनों छोर दोनों हाथों में पकड़कर अपनी पतली लंबी ग्रीवा झुकाए, लड़के के वेश में अद्भुत अपूर्व लगने वाली वह कुंवरी भी न जाने चेतना के किस लोक से अगड़ाई लेती हुई उठ खडी होती थी।

पर गलाल उसके बारे में ज़्यादा गहराई से विचार नही करता था। जिस ढंग से कुंवरी शरम की मारी झेंपती-सिहरती-ढुलकती हुई उसकी ओर देखकर पुलक उठी थी उसके लिए तो बस वही स्मृति-बिंब काफी था।

ईडर जाते समय वृक्षों से आच्छादित वह गलियारे जैसा संकरा मार्ग देखकर उसे माही तट की नाल याद हो आई थी। और उस याद के साथ-साथ उसके मनोलोक के रंगमंच पर प्रणय मे पागल उस अश्व-युगल का तूफान एव पगड़ी संभालते हुए उस मासूम सवार का विनोदपूर्ण नाटक

क्षण-भर के लिए जीवंत हो उठा था। उसी क्षण उसके मन में वकता भाई से बात करने की और यह पूछने की लालसा भी जागी थी कि वह युवती कहा की हो सकती है।

पर न जाने क्यों गलाल चाहकर भी यह प्रश्न न पूछ सका। शायद इसलिए कि इस किस्म का यह पहला प्रश्न था अथवा शायद इसलिए कि वकता भाई से उसने आज तक किसी लड़की की चर्चा नहीं की थी। कारण कुछ भी हो, अंततः गलाल ने खुद की ही हंसी उड़ाई थी—'तू भी कैसा चौहान राजपूत है! यूं आकुल हो रहा है जैसे आज तक कोई सुदर लड़की देखी ही नही है!'

छावनी मे लौटने पर एक संध्या को गलाल घोड़े पर बैठकर भीमसिंह के साथ भ्रमण करने को निकला। भीमसिंह ने प्रश्न किया, "विवाहित हो या अविवाहित बापू ?"

"अविवाहित हूं, दादाभाई।"

"क्यों ?"

उत्तर मे गलाल केवल हंस दिया।

"क्यो, हसे क्यों ?"

"आपके इस प्रश्न से ही मुझे पहली बार बोध हुआ कि मेरी आयु विवाह-योग्य हो गई है।" यह उत्तर देते समय भी पता नही क्यो उस मासूम सवार की स्मृति मन के आकाश में दिपदिपा उठी थी।

ईडर की तरफ कूच के दरम्यान पुनः वह संकरा मार्ग आया और गलाल को पुनः माही-तट की वह नाल याद हो आई। इस बार तो वह अंदर ही अंदर फुसफुसाया भी—'यह छोकरी क्यों मेरे पीछे पड़ी हुई है ?'

इस संकरे मार्ग को झटपट पार कर, जैसे मन से माही-तट की उस स्मृति को उखाड़ फेकना चाहता हो यो उसने सरपट गति से घोड़ा दौड़ाया। तत्काल वह उस संकरी राह के पार निकल गया और वक़ता भाई से बातें करता हुआ ईडर-संबधी मंत्रणा में खो गया।

इस बीच रंगास्वामी हुसैन के राजमहल का प्रधान रक्षक बन गया था। हुसैन का विश्वास जीत सकने का प्रमुख कारण था कि रंगा ने भीमसिंह के पड़ाव के विषय में जितनी भी सूचनाएं दी थीं वे अक्षरशः

सही निकली थी और गुप्तचरो द्वारा लाई गई सूचनाओं से पूर्णत: मेल खाती थी।

अतत: वह दिन भी आया जब रंगा ने घबराए हुए हुसैन को सूचना दी, "भीमसिंह की सेना अपनी ओर बढ़ रही है।"

घबराया हुआ हुसैन और भी अधिक घबरा गया। उसे जुल्फिकार नामक अपने इस मुगल पर अभी भी पूरा भरोसा नही था। एक अन्य अंतरंग व्यक्ति को भेजकर इसका पता लगवाया तो सूचना बिल्कुल सही निकली।

हुसैन ने अब रंगा पर पूरी जिम्मेदारी डाल दी। जैसा वह कहता वैसा ही वह करने लगा। वह पूर्णतया उसके हाथों में कठपुतली बन गया था। रंगा के परामर्श के अनुसार उसने अपनी आधी सेना भीमसिंह से लडने के लिए भेजी। शेष सेना को दायें-बायें पार्श्व मे भेजकर जंगल में उसे छुपा दिया। व्यूह-रचना यह थी कि युद्ध आरभ होते ही छुपी हुई सेना दोनो तरफ से शत्रु पर टूट पड़ेगी।

ईडर से दस कोस की दूरी पर, भीमसिंह की सेना को खदेड़ने के लिए, ईडर से सेना ने प्रयाण किया।

गलाल को रास्ते मे ही वलमजी से इस व्यूह-रचना की सूचना मिल गई थी। एक अन्य सूचना यह भी मिली थी कि गलाल को कतिपय चुने हुए सैनिकों सहित ईडर के दक्षिणी द्वार पर पहुंच जाना चाहिए।

ईडर से दस कोस की दूरी पर दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। पूर्व-निश्चयानुसार गलाल चुने हुए सैनिकों समेत अलग हो गया। वह अपनी अश्वारोही सैनिक-टुकडी सहित चक्कर काटकर तेजी से ईडर के दक्षिणी द्वार पर पहुंच जाना चाहता था।

हुसैन की सेना औरंगजेब की पराजय की खबर सुनकर पहले से ही घबराई हुई थी, जबकि मेवाड़-विजय का समाचार सुनकर भीमसिंह की सेना का मनोबल ऊंचा उठा हुआ था और वह अपना पानी दिखाने का यह मौका पाकर अपराजेय उत्साह-आवेश के साथ लड रही थी। भीमसिंह की सेना संख्या में भी अधिक थी और इसके अतिरिक्त उसे हुसैन की व्यूह-रचना की भी पूर्व-सूचना प्राप्त थी। इस प्रकार सभी

प्रकार की अनुकूलताओ के कारण हुसैन की सेना तीसरे-चौथे दिन ही टूट-फूट गई और बिखरने लगी। सेनापति ने भागती हुई सेना को गढ़-रक्षा के लिए शहर की ओर बढ़ने का आदेश दिया।

पर भागी हुई सेना ने देखा कि गढ़ के दरवाज़े बंद हैं। कोट पर नज़र डाली तो रक्षक भी नदारद और वहा कोई जवाब देने वाला तक न था। पलायन के लिए कोई राह शेष नही थी। कोट और भीमसिंह की सेना के मध्य फंसी हुई हुसैन की सेना का वह भयंकर संहार हुआ कि बस पूछो मत! द्वार के दोनों तरफ बेशुमार लाशों का ढेर लग गया। अच्छा ही हुआ कि तभी रात का आगमन हुआ और हुसैन की बची हुई सेना के लिए भागना सुगम हो गया।

मध्याह्न के पहले ही गलाल के घुड़सवारों ने धूलिया द्वार की ओर से नगर में प्रवेश किया। द्वार-रक्षक-अधिकारियो मे नगारची भी मौजूद था। गलाल की अग्रिम टुकडी मुसलमानी वेश मे थी। यह दृश्य देखकर प्रमुख अधिकारी समेत सभी को विश्वास हो गया कि बाहर की किसी चौकी से अपनी सेना सहायतार्थ आई है। अत. नगारची की सलाह मानते हुए द्वार खोलने का हुक्म दे दिया गया।

द्वार खुला और बंद हो गया। गलाल के सैनिकों ने भीतर घुसते ही अपनी-अपनी दाढी खीचकर स्वयं को प्रकट कर दिया।

दुर्ग-पतन का समाचार इतना हिला देनेवाला था कि घबराहट के मारे सैनिक भी भागने लगे। संपूर्ण दूर्ग मे भगदड़ मच गई। सेना की पराजय से क्षुब्ध और परेशान नवाब को ऊपर से यह सूचना मिली, "गढ़ टूट गया। दुश्मन की फौज गढ़ मे घुस गई है।"

इस आकस्मिक समाचार के कारण जब नवाब स्वयं ही हक्का-बक्का रह गया था तो फिर महल-रक्षको की क्या बिसात थी!

गलाल अपने दो सौ सैनिकों को लड़ते हुए छोडकर लगभग एक सौ सैनिकों के साथ राजमहल की ओर रवाना हुआ।

रंगा ने नवाब को सावधान किया, "हुजूर! बुरा वक्त आ गया है। दुश्मन गढ मे घुस आए है।"

"क्या?...अब क्या होगा?" हुसैन का घबराया हुआ चेहरा रोने

जैसा हो रहा था ।

"बेगम सा'ब और बच्चों को पिछले रास्ते से रवाना कर दो।"

हुसैन के पास खड़े चार पठान अंगरक्षकों को भी यह सुझाव पसंद आया। "और हम ?" हुसैन ने सवाल किया।

"अपनी चिंता हम बाद में करेंगे। मैं भी तो आपके साथ हू ।"

"तो फिर ठीक है, जनाने को भेज दो। जल्दी करो !"

कुछ भी हो, रंगा एक संस्कारी और सहृदय पुरुष था। हुसैन ने जिस कदर उस पर भरोसा किया था उसे देखते हुए उसने अपने मन में कम से कम यह निर्णय तो ले ही लिया था कि गढ और राजा का जो होना हो सो होगा। पर किसी भी सूरत मे नवाब के कुटुंब को आंच नही आनी चाहिए। उसकी योजना के अनुसार, नवाब की हार निश्चित थी। और इसीलिए उसने इन लोगों को भगाने की और उन्हे निरापद स्थान तक पहुंचा देने की योजना पहले से ही बना रखी थी।

बेगम इत्यादि को गुप्त द्वार से रवाना कर ज्यों ही रंगा नवाब के पास वापस आया, गलाल भी ठीक उसी समय अपने साथियो सहित महल के प्रवेश-द्वार पर आ धमका। महल के प्रवेश-द्वार पर गलाल और महल-रक्षको के बीच घमासान युद्ध हुआ। नवाब ने अंत:पुर के सदस्यों के लिए निर्मित खिड़की में से गलाल को लड़ते हुए देखा। गलाल का अद्भुत शौर्य देखकर वह स्तब्ध रह गया। उस क्षण गलाल साक्षात् काल के समान भयंकर लग रहा था। उसके दोनो हाथों मे तलवारें थीं। वह दायें-बायें चारो ओर एक ही गति से तलवार घुमा रहा था। दायें हाथ से तलवार-संचालन के समय बायें हाथ की तलबार ढाल बन जाती थी तो बायें हाथ से घुमाते समय दायें हाथ की तलवार ढाल बन जाती थी। हुसैन ने अपनी पचास वर्ष की आयु में आज तक ऐसा अपूर्व योद्धा पहले कभी नहीं देखा था।

नवाब ने बगल में खड़े रगा की ओर देखकर कहा, "या अल्लाह ! यह काफिर क्या कमाल की तलवार घुमाता है !"

"गलालसिंह है, हुजूर !"

इसके पूर्व रंगा ने उसे बताया था कि भीमसिंह एक भयंकर सेनापति

है और गलाल का प्रसंग आने पर उसकी चूड़ावत सरदार से तुलना की थी।

गलालसिंह का नाम सुनते ही हुसैनी के हाथ-पाव फूल गए।

अचानक महल का प्रवेश-द्वार धू-धू कर जल उठा। हुसैनी ने रंगा से कहा, खत्म जुल्फिकार! भागने के सिवाय कोई रास्ता नही है।"

रंगा ने नवाब के कुटुब को तो बचा लिया, पर उसकी यह ख्वाहिश ज़रूर थी कि नवाब का फैसला गलाल बापू के हाथों होना चाहिए। पर हुसैन की भयभीत, दयनीय और रोनी सूरत देखकर उसका हृदय पसीज गया।

रंगा ने लक्ष्य किया कि द्वार के आगे लडाई ठंडी पड़ गई है और गलाल उस स्थान पर कही नजर नही आ रहा है। रंगा ने शीघ्रता दिखाई और गलाल के आने के पहले ही नवाब को गायब कर देने का प्रयत्न आरंभ कर दिया। रंगा के सिवाय अब अन्य कोई अंगरक्षक नही बचा था। उनमें से अनेक को तो बेगमों के साथ भेज दिया गया था और कितने ही द्वार पर लटके हुए थे।

हुसैन वास्तव में कमनसीब निकला। जैसे ही वह गुप्त द्वार के सामने पहुंचा, यम-सा विकराल गलाल उसके सामने खड़ा था। खून से सराबोर गलाल वास्तव में यम के समान भयंकर लगता था। धीरसिंह के साथ पिछले दरवाजे से प्रवेश करते वक्त उसने संकल्प किया था, 'झाली भाभी की कटार का, नवाब के रक्त से प्रक्षालन करूंगा।' इस लौह-संकल्प के साथ ही कटार पर बायें हाथ की पकड़ मजबूत हो गई थी। आमने-सामने होते ही नवाब पल-भर के लिए मूर्तिवत् विस्मय-विजड़ित हो गया। गलाल भी अपने शिकार को एकाएक सामने खड़ा देखकर चौंक पड़ा।

नवाब के पीछे दाढ़ीधारी रंगा खड़ा था। गलाल ने रंगा से आंख के इशारे से पूछा, "नवाब है न ?"

अभागा नवाब वेश-परिवर्तन भी तो नहीं कर सका था। उसे तो इतने अल्प समय में ईडर जैसे शक्तिशाली गढ़ का पतन अभी भी एक दु.स्वप्न-सा लग रहा था। कुछ समझ में ही नहीं आ रहा था कि यह सब कैसे घटित हो गया। लड़ने के लिए गई हुई सेना की यह हालत कैसे हो गई।

फिर आज मध्याह्न के बाद से तो चमत्कारी घटनाओं की एक झड़ी-सी लग गई थी। उसने सुना कि भीमसिंह से युद्ध करती हुई सेना भागने लगी है, शहर का मुख्य द्वार टूट गया है, गोलंदाज भी भाग खड़े हुए हैं और गढ की तोपें भरी की भरी रह गई है, और साझ होने के पहले ही नवाब ने साक्षात् मृत्यु के समान गलाल को जैसे महल के प्रवेश-द्वार पर दोनो हाथों से कदली-वृक्ष काटता हो, यो लड़ते हुए देखा ! चमत्कार नही तो क्या था यह सब कुछ ! चमत्कार मे जैसे कुछ कमी रह गई थी सो उसने अभी-अभी उसी गलाल को पिछले गुप्त द्वार पर प्रेत की तरह सहसा प्रकट होते हुए देखा। नवाब के मस्तिष्क पर से अगम्य रहस्य का परदा सटाक से हट गया।

नवाब की तिरस्कार-भरी निगाह जुल्फिकार की ओर उठी और उसी क्षण जुल्फिकार ने गलाल का कटार-युक्त बायां हाथ पकड़ लिया। कहा, "नही बापू ! इतना विश्वासघात काफी है। नवाब के वध का विचार छोड़ दो। हमारा काम बन गया है। अब क्यों व्यर्थ ही इसकी जान ली जाए ? बापू, नवाब को जीवन दान दे दो !"

गलाल का मन नही माना। पल-भर कटार पर दृष्टि डालकर रंगा से कहा, "नही, ऐसा नही हो सकता। मुझे इस कटार को, नवाब का रक्त चखाना है।"

"ठहरो" कहते हुए रगा ने अर्धमूर्छा की-सी स्थिति में खड़े नवाब का दायां हाथ पकडना चाहा ! ठीक उसी समय नवाब उत्तेजित हो उठा। वह कमर से तलवार निकालने की तैयारी करने लगा।

रंगा ने कठोर आवाज में नवाब को सलाह दी, "रहने भी दो नवाब ! बेगम-बच्चे रोएगे। जरा अपना हाथ दे दो।"

निरुपाय था नवाब। अभी तक जैसे जुल्फिकार के भरोसे बैठा रहा था, ठीक वैसे ही इस बार भी उसने अपना हाथ जुल्फिकार की ओर बढ़ा दिया।

रंगा ने अनुरोध किया, "नाममात्र के लिए वचन-निर्वाह कर लो, बापू !"

अंततः गलाल को रंगा के आग्रह के आगे झुकना पड़ा। और उसने जैसे घास काटता हो यो झाली भाभी की कटार से नवाब की उंगली काट दी।

हुसैन के चेहरे पर 'आह' का कुहासा उठा न उठा कि रास्ता दिखाते हुए गलाल बोला, "निकल जा यहा से, फकीरों को भोजन कराना!"

वेदना दबाने का यत्न करता हुआ नवाब तहखाने मे उतरा। रंगा गलाल को लेकर भीतर पहुचा। वह हरेक सैनिक को आदेश देता जा रहा था, "अपने-अपने हथियार नीचे रख दो।"

ऊपर जाकर, गलाल के साथ झरोखे मे से आदेश दिया, "लड़ना बंद कर दो वकता भाई! युद्ध-विराम की रणभेरी बजवाओ।"

दूसरे दिन सवेरे जब भीमसिह की सेना ने गढ़ में प्रवेश किया तो गलाल अनेक रातो की जागरण की तंद्रा दूर करके आखें मलता हुआ नवाब के झरोखे मे खड़ा था।

यह दृश्य देखते ही भीमसिह के महल में प्रवेश करने वाले राजाओं और सरदारो के चेहरे देखने लायक बन गए थे। झरोखे से ही भीमसिह को प्रणाम कर गलाल नीचे उतरा। और आज तो भीमसिह ने उसे छाती से लगा लिया। गलाल के हाथो और कंधे पर पट्टिया देखकर भीमसिह ने पूछा, "ज्यादा चोट तो नही लगी है न?"

"नही रे दादा भाई! इतने घाव तो होने ही थे, फिर युद्ध किसे कहते है?"

गलाल को साथ में लेते हुए भीमसिह ने कहा "मैं तो तुझे छोकरा समझता था भाई, पर तू तो पूरा बत्तीस लक्षणधारी युवक निकला! ईडर जैसा अपराजेय किला तूने बात की बात मे जीत लिया।"

भीमसिह द्वारा दिए गए इस प्रशस्ति-पत्र से गलाल को इतना आनंद हुआ कि जैसे दादागुरु की प्रसंसा मिल गई हो।

पुनः मोर्चे पर

भीमसिंह ने इतने समय से बद्ध सेना को नगर लूटने की छूट दे दी। उसने नवाब का बहुमूल्य खजाना ऊंटों पर लादकर उदयपुर भेजा। कई जवाहिरात अपने सरदारों में बांट दिए जिनमें से आधे गलाल और उसके पांच साथियो को मिले। तीसरे दिन सभा-आयोजन के पूर्व उसने गलाल को अपने कक्ष में बुलाया। सामने बैठाते हुए पूछा, "बोल बापू! तेरी क्या इच्छा है?"

गलाल को प्रश्न सुनकर अचंभा हुआ। उसके मन में कोई इच्छा हो तब न? वह तो सिर्फ धन्यवाद का भूखा था और वह उसे पहले ही दिन मिल गया था। केवल धन्यवाद ही नही, अपितु भीमसिंह ने राजवैद्य को बुलाकर अपनी उपस्थिति मे उसकी मरहम-पट्टी भी करवाई थी। भला गलाल को इससे अधिक क्या चाहिए था?

"जो चाहता था वह मिल गया है, दादाभाई!

"क्या मिल गया है रे?" गलाल की यह वाणी भीमसिंह को बहुत प्रिय लगती थी।

"आपका प्रेम दादाभाई!" गलाल की रतनारी आंखों में कृतज्ञता का भाव लबालब भरा हुआ था।

"वह तो है ही। इसीलिए तो पूछ रहा हूं कि तू क्या चाहता है?"

गलाल के मन में कोई इच्छा ही नही थी तो वह क्या मांगता? उसने अपनी द्विधा-भरी आकुल दृष्टि भीमसिंह पर स्थिर करते हुए कहा, "दादाभाई! मागने के नाम पर कुछ सूझता ही नही है।"

"बापू, इस स्थान पर बैठ जा।"

गलाल समझ गया कि दादाभाई ईडर की गद्दी पर बैठने को कह रहे हैं। फिर भी उसने अबोध शिशुवत् प्रश्न किया, "इससे आपका क्या आशय है दादाभाई?"

"संभाल, यह ईडर का राजसिंहासन। यह नवाब का था और तूने इसे अपने बाहुबल और बुद्धिबल से जीता है, यह सर्वथा तेरा है। इस पर

अन्य किसी का कोई स्वत्व या अधिकार नहीं है। अच्छा मौका है, बैठ जा इस गद्दी पर!"

"यही सही है कि मैंने इसे जीता है, पर जीता तो आपकी मदद से ही न? केवल अपनी सेना के बल पर थोड़े ही जीत सकता था?"

"किंतु मैं स्वयं तुझे बैठने को जो कह रहा हूं!"

पता नही क्या बात थी कि गलाल को ये राजसिंहासन बंदीगृह-से प्रतीत होते थे। कही पर भी बद्धस्थिति मे बैठना उसे गवारा नही था। एक अजीब बेचैनी अनुभव करता था।

उसने पुनः लाचारी से इनकार करते हुए कहा, "ना दादाभाई! मैं राजसिंहासन का क्या करूंगा? अपने लिए तो आपका प्रेम ही पर्याप्त है!"

भीमसिंह ने इस वीर निर्मोही युवक को पहचान लिया। गलाल सच्चे अर्थो मे एक रण-बावला राजपूत था। फिर भी उसने इस लड़के को राज़ी करने की भरसक कोशिश की, पर गलाल के मन में ईडर की गद्दी नहीं बैठी सो नही बैठी।

और फिर मेवाड़ के महाराणा की ओर से वहां एक सूबेदार नियुक्त करके, अपने सरदारों के आग्रहवश भीमसिंह गुजरात के दक्षिण अंचल में आगे बढ़ा। आगे कोई इस्लामी राज्य न था। सबके सब हिंदू राज्य थे। अत: गलाल को यह बात सालती थी कि हम हिंदुओं को ही अपने हाथ दिखाने जा रहे हैं। पर बाद में उसने अपने-आपको इस प्रयाण के लिए राज़ी कर लिया। उसने स्वयं से कहा भी कि ये हिंदू राजा भी शिक्षा के पात्र हैं। भारतमाता को अत्याचारी धर्मांध औरंगज़ेब के चंगुल से मुक्त करने के लिए महाराणा और दूसरे राजागण इतनी बडी कुर्बानी दे रहे हैं, फिर भी इनको तो जैसे किसी बात की चिंता ही नही है! जो लोग अन्याय का प्रतिरोध नही करते, परोक्ष रूप से वे भी अन्यायी हैं।

गलाल को इस सैनिक अभियान के दौरान पूरी आशा थी कि उस सगुनी सौंदर्य से अवश्य भेंट होगी। उसका हृदय कहता था कि पाटण में सोलंकी कुल का शासन है और इसलिए वह कुंवरी पाटण की भी हो सकती है।

राह में पड़ने वाले ग्राम-नगरो को लूटती और आमोद-प्रमोद करती हुई सेना पाटण की दिशा मे बढती गई। पाटण के बाद सिद्धपुर लूटती हुई सेना मोडासा पहुची। सौदर्य-दर्शन की आशा क्रमशः धुधली होती गई। वह तो स्वय का परिहास करते हुए अपने से कहने लगा—'पाटण की कुवरी हो या किसी अन्य राज्य की, पर भले आदमी, सोचने की बात यह है कि वह तुझे यू रास्ते पर कहां मिल जाएगी और फिर हम लोग तो लुटेरों के रूप मे आए है···।'

गलाल को यह सैनिक अभियान भेडो के चरने जैसा लगता था। उसकी आत्मा उसे कचोटने लगी। उदयपुर जाने का विचार भी हुआ, पर समाचार मिले थे कि वहा पर मरघट की-सी शाति है, निस्तब्धता है। इसलिए गलाल अब स्वदेश लौटने का इरादा करने लगा। उसके मन में स्वदेश लौटने के विषय में कोई झिझक नही थी, बल्कि वह तो तुरत रवाना होना चाहता था। परतु उसके वकता भाई जैसे साथी भी 'अभी दो-चार दिन बाद' कह-कहकर जाना टाल रहे थे। दरअसल उसके साथी भी लूट का मोह छोड नही पा रहे थे। सैनिको का यह व्यवहार देखने के बाद भी वकता भाई यही कहते रहे, "जाते है, बस, एक-दो दिन में चल देगे।"

लेकिन दो दिन के बाद वक़ता भाई ने फिर बात बदल दी, "कई सरदारों की आखें गुजरात के अतिसमृद्ध नगर सूरत पर लगी हुई हैं। हम भी वहां जाएंगे और फिर वहा से कडाणा होते हुए माही-माता के रास्ते से लौट जाएंगे।"

नगारची ने भी समर्थन किया, "मौका मिला तो कडाणा की खबर भी लेनी है, बापू!"

रंगा बोला, "सही बात है, बापू! कडाणा के कालूसिह ने इर्द-गिर्द का प्रदेश लूटकर इतनी दौलत इकट्ठी कर ली है कि उसके द्वारा मेवाड़ की संपूर्ण सेना एक माह तक लड सकती है।"

"खैर, तुम्हारी जैसी इच्छा।" गलाल ने मुक्ति का कोई उपाय न देखकर इन लोगों के आगे हथियार डाल दिए। उनकी राय स्वीकार करने के अतिरिक्त वह कर भी क्या सकता था? शायद माही का किनारा देखने की इच्छा भी इस सहमति के पीछे जाने-अनजाने अपनी भूमिका

निभा रही थी। यह सही है कि वहा पहुंचने के बाद वकता भाई आदि साथियो के समक्ष वह प्रसंग याद कर, संभव हो तो तलवार के बल पर उस पुरुष-वेशधारी कुंवरी को ढूढ निकालने की आकाक्षा भी उसके मन में करवटें बदल रही थी। हालाकि प्रत्यक्षत उसने केवल यही कहा, "ठीक है, उस राह पर दादागुरु के भी दर्शन कर लेंगे।"

लेकिन इसके ठीक तीसरे या चौथे दिन उदयपुर से एक साढनी सवार आया। महाराणा का पत्र कुवर साहब को देकर सलाम करने के बाद वह खड़ा रहा।

भीमसिंह ने महाराणा के उस मुद्राकित पत्र को पढ़ा। लिखा था, "प्रिय बापू भीमकुमार! यह संदेश मिलते ही तुम अपनी सेना सहित तुरत लौट आओ। तुम्हारी सेना के द्वारा किए गए दमन और अत्याचार से पीडित होकर गुजरात के लोग उदयपुर भाग आए है। चाहे प्रजा किसी भी प्रदेश की क्यों न हो, पर हर हालत में प्रजा-पीडन राणा-कुल के लिए कलंक के समान है। दूसरा समाचार यह है कि शाहजादा अकबर और तहवर खां की सेना जोधपुर की ओर बढने की तैयारी कर रही है, इसलिए तुम पूर्व-छावनी पर शीघ्र पहुंच जाओ। अपनी वापसी के समाचार प्रतिदिन पहुंचाते रहो और छावनी मे लौटकर युद्ध की तैयारी करो।

समय रात का था, फिर भी भीमसिंह ने सभा का आह्वान किया। सरदारो को महाराणा का संदेश सुनाते हुए कहा, "बहादुरो! युद्ध निकट है। आलस्य और प्रमाद को अभी से झाड दो।" इसके बाद सूर्योदय से पूर्व सभा-विसर्जन कर, उसने कूच की आज्ञा दी।

गलाल तो इस संवाद के कारण फूला नही समाता था। उसने वकता भाई को आज्ञा दी कि सैनिको की लूट का माल स्वदेश पहुंचाने की व्यवस्था करो।

वकता भाई और रंगा ने सारी रात जागकर, हरेक सैनिक की अलग-अलग गठरी तैयार करवाई। उस पर नाम और पता लिखा। और उन गठरियों को दो बोरों में भरकर मुंह अंधेरे ही प्रयाण की सारी तैयारी पूरी कर ली। सुबह मुर्गे की बांग के साथ ही माल से लदे दो ऊंट तथा पियोली मां के नाम गलाल के पत्र को लेकर पांच घुड़सवार अलीगढ़ की

ओर रवाना हो गए। और भीमसिंह की सेना के साथ, गलाल ने भी अपने सैनिको सहित बड़े सवेरे अपने पहले पड़ाव की ओर कूच कर दिया।

उस बीस हज़ार की सेना मे भीमसिंह के बाद अकेला गलाल ही एक ऐसा योद्धा था जो शत्रुओं के सिर काटने को अधीर था। लौटने पर अरावली पर्वत-शृखला के पश्चिमी भाग मे एक निरापद स्थान पर छावनी स्थापित की गई। आठ दिन बाद गुप्तचर से समाचार मिला कि अकबर और तहवर खां के नेतृत्व में मुगल-सम्राट की फौज जोधपुर की तरफ आगे बढ रही है।

जोधपुर के राठौड़ भी पहले से तैयार थे। भीमसिंह से उनका सलाह-मशविरा भी हो चुका था। जबकि गलाल तो पड़ाव के दूसरे दिन से ही युद्ध की व्यूह-रचना पर विचार करता, उपयुक्त स्थानो की तलाश करता हुआ और ढाल-तलवार के स्थान पर कंधों पर तीर-कमान लिये हुए अरावली की दुर्गम गिरिश्रृंखलाओं मे बेचैन योद्धा की तरह घूम रहा था। उसने एक-दो बार के कटु अनुभवो के बाद, जोधपुर के राठौड़ सरदारों के साथ रणनीति पर विचार-विमर्श करने वाली भीमसिंह की युद्ध-विषयक मंत्रणा-सभाओं में जाना भी कम कर दिया था। युद्ध-सभाओं में उसने एक-दो वार कुछ सुझाव रखे थे, परंतु दूसरे सरदारों ने उनका खंडन किया। गलाल ने जब प्रतिवाद किया तो भीमसिंह के बाद द्वितीय स्थान के सेनापति ने उस पर ताना कसा था। भीमसिंह के कारण दूसरे सभी उसे बापू कहकर संबोधित करते थे। ताना कसने वाले सेनापति ने कहा था, "बापू! यह कोई ईडरिया बाघ नही है, यह तो है आलमगीर! दुनिया का बादशाह! उसके सागर जैसे अंतहीन लश्कर से लड़ना कोई बच्चों का हसी-खेल नही है।"

विचारमग्न भीमसिंह ने भी सिर हिलाकर मौन समर्थन किया था। गलाल उस समय कहना चाहता था कि सागर जैसा विशाल लश्कर है इसीलिए तो कहता हूं कि सीधी लड़ाई में आखिर काट-काटकर कितने सैनिक काट सकोगे ? पर ऐसा कुछ न बोल, वह उन सब अनुभवी महानुभावो के बीच बालक बनकर बैठा रहा।

इस घटना के बाद से तो गलाल अपने ही ढंग से विचार करने लगा।

नक़ता भाई और रंगा के साथ घोड़े पर सवार होकर उसने दूर तक के रास्तों और पर्वतों समेत समस्त भूभाग का निरीक्षण किया। मारवाड़ की राठौड़ी सेना का नेतृत्व यदि वीर दुर्गादास के हाथों में था तो मेवाड़ के सिसोदिया सैन्यदल का नेतृत्व स्वयं भीमसिंह ने संभाला था।

उधर अकबर और तहव्वर खां ने सावधानी के साथ आगे बढ़कर गनोरा से सामान्य दूरी पर अपनी छावनी स्थापित की थी। राजपूत और मुगल छावनी के बीच अब पांच-सात कोस से ज्यादा अंतर नहीं था। ऐसा प्रतीत होता था कि दोनों सेनाएं एक-दूसरे से पहल करने की आशा बांधे स्थगित-सी हो गई है। दोनों के मध्य युद्ध पूर्व का तनाव-भरा सन्नाटा छाया हुआ था।

इधर गलाल की प्रखर बुद्धि नाना प्रकार की योजनाओं में लीन थी। पर दुख की बात यह थी कि उसके इन सुचिंतित उपायो को अन्य सरदार हंसकर टाल देते थे। गलाल के साहसपूर्ण, लीक से हटे सुझावो को समझने की उनमें क्षमता ही नही थी। वे सब युद्ध के विषय में भी परंपरा और परिपाटी के उपासक थे, वैकल्पिक चिंतन के नही। एक उपाय तो उसे इतना अच्छा लगा कि उसने इस विषय मे किसी से बात किए बगैर ही अपने सैनिकों को उसके क्रियान्वयन मे लगा दिया। उसने निश्चय किया कि समय आने पर भीमसिंह से इस योजना पर चर्चा करूगा।

एक ढलती दुपहरी को वह भीमसिंह के पास पहुंचा और कहा, "दादा-भाई! मैं अपने कुछ सैनिकों के साथ मुगल-छावनी की तरफ गश्त लगाने जा रहा हूं।"

"भले जाओ, बापू! पर मुगलों से सावधान रहना, ठीक है न? देख लेना कि उस दिन जैसी हालत न हो!"

चार दिन पूर्व गलाल के एवं अन्य दो-तीन सरदारों के साथ भीम-सिंह, घोड़े पर सवार होकर अरावली की टेकरियों और रास्तों से परिचित होने के लिए भ्रमण पर निकला था। घूमते-घूमते ये लोग दूर तक निकल गए। पीछे मुड़कर देखा तो अनेक मुगल-सैनिक रास्ता रोके खड़े थे। दोनों तरफ पहाड़ थे। वापस लौटने के सिवाय अन्य कोई विकल्प न था। पर भीमसिंह जानता था कि वापस लौटने में ज्यादा खतरा है; और विलंब

विनाशकारी सिद्ध हो सकता है। भीमसिंह से मंत्रणा करते हुए गलाल ने कहा, "मुझे आगे जाने दीजिए, दादाभाई!"

भीमसिंह ने मना किया, पर गलाल नहीं माना। दूसरे सरदारों ने भी गलाल के प्रस्ताव का समर्थन किया।

गलाल जैसा तलवार का धनी था, कुशल तीरंदाज भी वैसा ही था। उसने अपना घोड़ा मुगलों की दिशा मे बढाया। पर्याप्त नजदीक पहुंचकर एक के बाद एक तीर छोडने लगा और दो-चार को धरती पर सुला दिया। पर मुगल सैनिकों की संख्या बीस से भी ज्यादा थी। यह संभावना भी थी कि और कुमुक आ सकती है। गलाल ने भीमसिंह से कहा, "अपने को होम देते हैं दादाभाई! आने दो आपके घोड़े को।"

भीमसिंह मुस्कराया। इन लोगों को भीमसिंह की वीरता और घुड़-सवारी मे निपुणता का अंदाज नहीं था। भीमसिंह ने कहा, "मुझे अपनी नहीं, आप लोगों की चिंता है। मैं तो दौड़ते हुए घोड़े पर खड़ा-खड़ा निकल जाऊंगा। अपनी तलवार को दो-चार का भोग भी चढ़ा दूंगा, पर आप लोग···।"

आश्चर्यचकित गलाल बीच में ही बोल पड़ा, "घोड़े पर खड़े-खड़े ही निकल जाओगे, दादाभाई?"

"हां खड़े-खड़े, तुम देखना।" कहकर भीमसिंह ने अपना घोड़ा आगे बढा दिया। गलाल पीछे था। भीमसिंह ने रकाबों में से पैर निकालकर घोडे को इशारा किया। घोडा झपटा। भीमसिंह घोड़े की पीठ पर खड़ा हो गया। एक हाथ में तलवार थी तो दूसरे मे लगाम का छोर था। बाज़ की गति से आते हुए भीमसिंह को घोड़े की पीठ पर खड़ा देखकर मुगल सैनिकों की आंखें फट गईं। वे मुंह ताकने लगे। कई लड़ना भूलकर अनायस ही एक तरफ खिसक गए। स्वयं सरदार हैरत में आकर बोल पड़ा, "क्या कहने!"

भीमसिंह के साथ गलाल ने भी अपना घोड़ा उन्हीं लोगों की दिशा में दौड़ाया था। सौभाग्य से उनकी राह ढालू थी। भीमसिंह के पीछे-पीछे गलाल का घोड़ा भी मुगलो की टुकड़ी पर भाले की-सी तेज़ी के साथ टूट पड़ा।

स्वाभाविक था कि इस अप्रत्याशित धावे से मुगलों के घोड़े इधर-उधर बिखर गए। भीमसिंह के साथ-साथ गलाल और पीछे के दो सरदार भी निरापद रूप से मुगल-टुकड़ी को बीधते हुए निकल गए। पर इस बीच गलाल का घोड़ा क्षत-विक्षत हो चुका था। थोड़ी दूर जाते ही ज़मीन पर ढेर हो गया। भीमसिंह ने अपना घोड़ा वापस मोड़ा। मुगल सवार गलाल की तरफ दौड़ पड़े। पर भीमसिंह आदि अन्य सैनिक अब सर्वथा भयमुक्त थे।

गलाल तो खुश हुआ, "यह भी ठीक रहा। बेचारी तलवार लंबे समय से प्यासी थी।"

गलाल ने एक सरदार की तलवार लेकर दोनों हाथों से काटना शुरू किया। भीमसिंह को स्वयं लड़ने की अपेक्षा गलाल को लड़ते देखना ज़्यादा अच्छा लग रहा था। जो सात-आठ सवार शेष रह गए थे वे भी जान बचाकर भाग खड़े हुए। यद्यपि भीमसिंह के पक्ष ने एक सरदार खोया तथा दूसरे भी दो-दो तीन-तीन छोटे-बड़े घावों के शिकार हुए तथापि उस दिन भीमसिंह को गलाल की तलवारबाज़ी की परख पूरी तरह से हो गई थी।

इस घटना के बाद से न केवल गलाल के बुद्धिबल पर, अपितु उसकी लड़ने की क्षमता पर भी भीमसिंह को पूरा-पूरा विश्वास हो गया था। यही वजह थी कि उसने उसे गश्त पर जाने की अनुमति दी थी। अन्यथा उस दिन के बाद से तो भीमसिंह ने दुश्मन की छावनी की दिशा में गश्त पर जाने की भी सख्त मनाही कर दी थी। क्योंकि गलाल स्वयं अनुमति लेकर गया था, इसलिए भीमसिंह के मन में यह संदेह पक्का हो गया कि वह गया है, तो ज़रूर कुछ करके लौटेगा। कुछ और नहीं तो कम से कम कोई सूचना तो लाएगा ही।

लेकिन अभी सांझ का अंधेरा गहराया भी नहीं था कि एक सरदार ने आकर भीमसिंह को शुभ संवाद सुनाया, "हमने दुश्मन के ऊंट पकड़े हैं।"

भीमसिंह को ऊंट पकड़ने की सूचना में कोई दिलचस्पी न थी। न तो वह पलंग पर हैरत से उठ बैठा और न ही अन्य किसी किस्म का उत्साह दिखाया। केवल यही कहा, "ठीक है।"

सरदार ने कहा, "कई ऊंट हैं कुंवर सा'ब !"

"यह बात है !" कहकर भीमसिंह ने प्रयत्नपूर्वक खुशी जाहिर की। पर मन में अभी भी यही था कि जो कुछ हो, फिर भी ऊंट पकड़ने से आखिर क्या लाभ होगा ? यदि घोड़े होते तो काम भी आते…! ठीक उसी समय भीमसिंह ने तंबू के प्रवेश-द्वार में से गलाल को आते हुए देखा। उसे अब जाकर खयाल आया कि यह काम गलाल का ही होना चाहिए। और इसलिए उसने सरदार से प्रश्न किया, "ऊंट किसने पकड़े हैं ठाकुर सा'ब ?"

ठाकुर थोड़ा अटका। बोला, "अपने सैनिक घूम रहे है सो हो सकता है उन्हीने पकड़े हों। पर समाचार मिले हैं कि ऊंट बहुत सारे है कुंवर सा'ब !"

"ठीक है, आप जाइए। मैं मालूम कर लेता हूं।" गलाल को तंबू के आगे उतरते देखकर भीमसिंह ने ठाकुर सा'ब को छुट्टी दी।

गलाल बहुत ही उत्साह में था। उसके बोलने के पूर्व ही भीमसिंह बोल उठा, "क्या समाचार है बापू ?"

"खुश खबरी लाया हूं दादाभाई !"

"बैठो," भीमसिंह ने पलंग दिखाते हुए कहा। पर तुरंत ही उसका ध्यान स्थिति के अनौचित्य की ओर गया। पास में पड़ी चौकी की ओर हाथ का इशारा किया।

गलाल ने कहा, "बैठना नहीं है दादाभाई ! मुझे आपसे एक खास बात कहनी है।"

"बोलो।" भीमसिंह पलंग की पाटी पर सरक आया।

गलाल इतने धीमे स्वर में काफी समय तक भीमसिंह से बातचीत करता रहा कि पवन भी न सुन सके। भीमसिंह ज्यों-ज्यों सुनता गया त्यों-त्यों हर्षातिरेक के कारण उसकी उत्तेजना बढ़ती गई। बीच-बीच में हुंकारा भी भरता था, "हा…हां ठीक है…बलिदान तो वैसे भी अब करना ही है न ? तुम वहां पर तैयारी करो; मैं सरदारों को बुलाकर आदेश देता हूं कि सैनिक झटपट भोजन के उपरांत हथियारों से सजकर तैयार हो जाएं।"

"अभी नही दादाभाई। अभी तो सिर्फ यह आदेश भिजवाओ कि भोजन से झटपट निपट लें। तैयार होने में देर नहीं लगेगी। अंधेरा होते-होते कूच कर देंगे और रात को टूट पड़ेंगे।"

"ठीक है, ठीक है! ऊंट कहां हैं?"

"ऊंट उत्तर दिशा से आएंगे। पूर्व में पहाड़ है। इसलिए हमें पश्चिम और दक्षिण की ओर से हमला करना है।" भीमसिंह के पास अपना मुंह लाकर जैसे कान में बात करता हो यों कहा, "वस्तुतः हमला भी नही करना पड़ेगा। भागती हुई मुगल सेना राजपूतो की तलवार पर सीधी यों गिरेगी जैसे परवाने आग में गिरते हैं!"

गलाल ने बातचीत के दौरान भीमसिंह को ऊंटों की संख्या भी बता दी थी, पर दूसरी बातों पर ध्यान केंद्रित होने की वजह से उसे याद नहीं रहा। उसने पूछा, "कितने ऊंट हैं?"

"पांच सौ, दादाभाई!"

"ओह! ओह! पां···च···सौ ऊंट!" भीमसिंह की आनंदानुभूति अनिर्वचनीय थी। हर्षाभिव्यक्ति के लिए उसके पास शब्द नही थे। उसके जोश को पंख लग गए। पलंग से नीचे उतरते हुए कहा, "ठीक है, जाओ। एकलिंगजी का स्मरण कर तुम कार्य पर लग जाओ!"

"दादाभाई! आपके इष्टदेव महादेव हैं और मेरी कुल-देवी शक्ति है। मुझे तो पूरा-पूरा विश्वास है कि शिव-शक्ति मिलकर आज यवनों को बिल्कुल तबाह कर देंगे।"

गलाल का जोश-खरोश देख, भीमसिंह ने मुंह पर उंगली रखकर उसे चुप रहने का आदेश देते हुए कहा, "धीरे बापू! और भी कुछ आदमियो की ज़रूरत हो तो ले जाओ।"

"दादाभाई! लगभग सभी कुछ तैयार है। इधर सैनिक तैयार होंगे उधर हमारी तैयारी भी पूरी हो जाएगी।"

और वह जिस राह पर से घोड़े पर चढ़कर आया था, उसी पर से होकर लौट गया। क्षण-भर में ही वह छावनी से बाहर था और वहां से वह फिर झाड़ियों में लुप्त हो गया।

गनोरा-विजय

गलाल ने इस तथ्य को ध्यान में रखा कि बादशाह के ऊंट जंगल में दूर-दूर तक चरने जाते है। उसने यह भी सुन रखा था कि पांच-पांच सौ ऊंटों के तीन-चार काफिले है। इनमें से एक काफिला पश्चिम की ओर जाता था और इर्द-गिर्द का जंगल साफ करता हुआ दक्षिण की तरफ अर्थात् राजपूत-छावनी की तरफ रोज बढता जाता था।

उस शाम को मौका देखकर गलाल नें सर्वप्रथम ऊंट चराने वाले प्रहरियो को घेरकर बदी बना लिया। उसने खास तौर से इस पर कड़ी निगरानी रखी कि एक भी चरवाहा भागने न पाए। इसके बाद मुगल चरवाहों के वेश मे गलाल के सैनिकों ने चरते हुए ऊंटों को मुगल-छावनी से तनिक दूरी पर एक पहाड़ी खोह में रोककर, उनकी पीठ पर गोनी की तरह आमने-सामने तेल से तरबतर दो-दो मशालें रस्सी से कस दी। सूर्यास्त तक यह काम पूरा हो गया। ठीक अंधेरा होने के पूर्व ही काफिले को मुगल-छावनी की ओर न केवल हांक दिया बल्कि उसे अपने ही हाथों से उस दिशा में ले जाना आरंभ कर दिया। खुद गलाल घोड़े पर बैठा हुआ उस निविड अंधकार में ऊंटों के इस काफिले और दूसरी दिशा से कूच कर रही राजपूत-सेना के मध्य एक संपर्क-कड़ी बन गया था।

मुगल-छावनी के जलते हुए दीपक और अग्नि की लपटें दूर से नज़र आ रही थी। पचास हज़ार सैनिक लंबे-चौड़े विस्तार में पड़ाव डालकर पड़े हुए थे। गलाल ने भीमसिंह के साथ अतिम सलाह-मशविरा किया। भीमसिंह ने सरदारों को मुगल-सेना का घेराव करने के विषय में रण-नीति संबधी आवश्यक बातें समझा दीं।

अंधकार में थोडी दूरी तय करने के बाद गलाल ने अपने आदमियों को ऊंट बैठाने की सूचना दी। जैसे ही ऊंट बैठ गए कि एक तरफ तो मशालें सुलग उठीं और दूसरी तरफ रस्सी से बांधकर पहले से तैयार रखे हुए थूहर के टुकड़े प्रत्येक ऊंट की पूंछ से बांध दिए गए।

पीठ पर अग्नि की लपटें देखकर ऊंट घबराए। खड़े होकर भागने लगे। भागने के साथ-साथ उन्हें थूहर के कांटे चुभने लगे। वे एकसाथ

चारों पैरों से दौड़ने लगे। इधर-उधर बिखरने की स्थिति में गलाल के घुडसवार उन्हें डंडे मार-मारकर मुगल-छावनी की दिशा में मोड़ देते थे। छावनी के सैनिको मे से कोई भोजन कर रहा था तो कोई भोजनोपरांत डकारें ले रहा था। कितने ही सैनिक शतरंज खेल रहे थे तो कई सारे ऊंघ भी गए थे।

छावनी के प्रहरियों का ध्यान सहसा क्षितिज-रेखा पर से तूफानी वेग के साथ बढ़ती हुई मशालो की तरफ गया। चारों तरफ व्याप्त उस सूचिभेद्य अंधकार में मनुष्य या ऊंट, कुछ भी दिखाई नही देता था। केवल मशालों की लपटें ही अंतरिक्ष में उछल-कूद कर रही थीं। इतनी ज़ोर की गडगड़ाहट सुनाई पड़ रही थी कि जैसे धरती फट जाएगी। मशालों से छाई हुई वह संपूर्ण दिशा जैसे प्रलयंकर झंझावात बनकर पूरे वेग के साथ टूट पडी थी। घबराए हुए प्रहरियों ने ढोल बजाए। रण-भेरियों की चीखें भी भयानक हो गई थी।

जब किसी के पास यह पूछने तक का समय न था कि क्या है तो फिर विचार करने लायक स्वस्थ मन:स्थिति होने का तो प्रश्न ही नही उठता था! उछल-कूद मचाती हुई हज़ारों ज्वालाओ को अपनी ओर वेग से आती देखकर कितने ही सैनिको ने तो यह मान लिया कि यह हिंदुओं की देवी-माता और काल-भैरव का चमत्कार है।

रणभेरी और ढोल वगैरह छोड़कर सबसे पहले पहरेदार भागने लगे। चीखने-चिल्लाने भी लगे, "कुछ आता है...कुछ पलीते-जैसा आसमान से मशाल लेकर...देखो, देखो वो आया!"

सारी छावनी इस अप्रत्याशित संकट से भौचक्की हो गई थी, आसन्न मृत्यु और विनाश की कल्पना से कांप रही थी। तांडव नृत्य करती हुई प्रलयंकर गति से बढी आ रही लपलपाती मशालों के विषय मे सोचना भूलकर पूरी की पूरी छावनी केवल इसी प्रश्न पर विचार कर रही थी कि क्या करना और कहा भागना है? उन्हे भागने के सिवाय कुछ नहीं सूझ रहा था।

शाहज़ादा अकबर और सिपहसालार तहवर खां भी अपनी समझ से परे के इस भयानक चमत्कार को देखकर घबरा गए थे। अंधेरे में अग्नि

की असंख्य जिह्वाएं दिशाओं को लीलकर चटखारे ले रही थीं और छावनी की ओर वेग के साथ गर्जन करती हुई दौड़ रही थीं। अब तो पृथ्वी पर की गड़गड़ाहट भी इतनी तीव्र थी कि जैसे कान फट जाएंगे।

अकबर और तहवर खां ने अपने-अपने घोड़े संभाले। अकबर को कुछ अंगरक्षकों सहित रवाना करने के बाद तहवर खा ने फौज को तैयार करने के लिए रणसिंघा बजवाया। उसने सैनिकों का मुकाबला करने के लिए आह्वान किया, ललकारा···। पर श्रोतागण तो भाग ही रहे थे।

वस्तुतः वे चारों ओर से घिर गए थे। पूर्व दिशा में उत्तुंग-पर्वत उनकी राह रोके खडा था तो दक्षिण मे राजपूत छावनी के अस्तित्व ने उनका मार्ग अवरुद्ध कर दिया था। उत्तर दिशा को, वेग से झपटते हुए उबलते-उफनते अग्नि-सागर के प्रलयकर तूफान ने इतना भयानक बना दिया था कि जैसे आसमान से कोई प्रेत-लोक ही सीधा उन पर टूट पड़ा हो। अतः पलायन की सिर्फ एक राह शेष थी, और वह थी पश्चिम दिशा। पर उन अभागो को क्या पता था कि यह मुक्ति-द्वार उन्हें मृत्यु की घाटियों में ले जाएगा? दांत पीसकर तैयार खड़ी राजपूत सेना की तलवारें प्राण-रक्षा हेतु भागते हुए मुगल सैनिकों को कद्दू की तरह काटने लगी, बल्कि झटके के साथ काटने लगी।

मुगल-छावनी में यह भ्रम पैदा करने के लिए कि खास भय तो इस दिशा मे है, पर्वत-शिखर पर डटे हुए राजपूत सैनिको ने दो तरफ से बाण-वर्षा आरंभ कर दी।

छावनी में घुसे हुए ऊंटों के काफिले का उत्पात ही कौन कम था, तिस पर मुगल सेना के असंख्य घोड़ों ने भी आगे बढकर तहलका मचा दिया, इस अराजकता को एक नया आयाम दे दिया। आतंकित ऊंटों की गर्जना और घबराहट, हवा में उछलती हुई मशालों का प्रलयंकर नर्तन एवं भागते हुए सैनिकों के आर्त्तनाद और हाहाकार के फलस्वरूप बिफरे हुए घोड़े भी इस विनाश-लीला में अपना योगदान देने लगे। कितने ही घोड़ों ने अपनी जंजीरें तोड़ दी। कई घोड़ों की हाथ-डेढ़ हाथ लंबी लोहे की खूंटियां भी उखड़ गईं। परिणामस्वरूप घोड़ो की भी वही स्थिति हो गई जो मशालधारी ऊंटो की थी। ज्यों-ज्यों वे दौड़ते-भागते थे, उन्हें

खूंटियों की मारक चोट लगती थी और इसलिए वे और भी तेजी से भागते थे। कई सैनिकों के प्राण-पखेरू तो घोड़ों और ऊंटों की इस चपेट मे आकर उड़ गए। अनेक बहादुर सैनिकों ने अपने हथियार तो संभाल लिये, पर सवाल यह था कि वे किसे मारते ? ज़्यादा संभावना तो यही थी कि या तो वे स्वयं ही आतंकित ऊंटों के शिकार बन जाते या बिगड़े हुए अश्व उन्हें अपनी चपेट में लेकर समाधिस्थ कर देते। घोड़ों के साथ-साथ हवा में उलझती हुई खूंटियों ने भी कितने ही सैनिकों के प्राण ले लिये।

भीमसिंह तथा गलाल पांच-सात अन्य सरदारों के साथ एक शिखर पर खड़े-खड़े इस भयानक उल्कापात को देखकर प्रसन्न हो रहे थे। भीमसिंह भावावेश में बारंबार गलाल का कंधा थपथपाकर कहता था, "वाह बापू, वाह !"

सारे के सारे ऊंट एकाध कोस के विस्तार में फैली हुई मुगल-छावनी में चारों तरफ तितर-बितर हो गए थे और डेढ़-दो घंटे का समय बीत जाने पर भी वे उछल-कूद करते हुए इधर-उधर भागदौड़ कर रहे थे। गलाल को एकाएक अनुभूति हुई कि जैसे मां महाकाली अनेक रूप धारण कर छावनी रूपी असुर की छाती पर तांडव-नृत्य करती हुई खेल रही हैं, अट्टहास कर रही है।

दरअसल घोड़ो ने जिन त्रासदी की सृष्टि की उसका तो उन्हें भी पूर्वानुमान न था ! पर गलाल ने यह अवश्य महसूस किया कि धरती पर धमाके की आवाज़ अतिशय बढ़ गई है। इससे प्रारंभिक कोलाहल को एक नया स्वर मिल गया है। और जैसे ही घोड़ों की हिनहिनाहट उसके कानो मे गूंजी, वह स्थिति को तुरंत समझ गया। घोड़ों के तूफान का समाचार सुनकर भीमसिंह आदि भी दुश्मनों की दुर्गति की कल्पना करके आनंदित हो उठे।

जैसे विनाश में अभी कुछ कमी रह गई हो त्यों छावनी में जगह-जगह आग लग गई थी। अग्नि-कांड का यह दृश्य देखकर खुशी से पागल भीमसिंह ने गलाल का कंधा हिलाते हुए कहा भी सही, "बापू, मुगल सेना की संपूर्ण तबाही, मुगल छावनी की सर्वनाश-लीला का यह दृश्य देखकर मुझे जिस

हर्ष की अनुभूति हुई है वह अनुभवातीत है।"

छावनी में से मुगल सैनिकों के 'अल्लाहो अकबर' के नारे सुनाई दे रहे थे, पर इन नारो में कोई दम नहीं था। ये नारे भय को ढकने के लिए बुरके प्रतीत होते थे। जबकि मृत्यु की अंतिम चीखें स्थान-स्थान पर से उठ रही थीं—"या अल्लाह···या अली···।"

और इस प्रकार प्राण-रक्षा के लिए भागती हुई और तितर-बितर मुगल सेना का अधिकांश भाग यदि राजपूत योद्धाओं की तलवारों का ग्रास बन गया तो शेष सेना अंधेरे का फायदा उठाकर नौ-दो-ग्यारह हो गई।

तीन चार घटों के बाद भी अनेक मशालें छावनी मे इधर-उधर दौड़ रही थी। कितनी ही मशालें ऐसी भी थीं जो राजपूत सेना की तरफ आ-आकर वापस मुड गई थी।

स्थान-स्थान पर जल रही तंबुओं की होली भी मनोरंजक दृश्य उपस्थित कर रही थी। इतना अच्छा हुआ कि तोपखाने और बारूदखाने के बीच थोड़ा अंतर था और इसी से वह आग की लपटो से बच गया। गोलंदाजों का तो पता ही न था।

प्रातःकाल छावनी एक अद्‌भुत परिदृश्य उपस्थित कर रही थी। किसी की रोटिया तवे पर जल गई थी तो कही तरकारी की हांडी औंधे मुंह पड़ी हुई थी। छोटे-छोटे असंख्य खेमे ऊट-घोड़ों की रेलपेल में फट-फटा गए थे। वीर सैनिकों की असंख्य ढालें बिखरी पड़ी थीं और तलवारें भी बर्तनो में शामिल होकर तितर-बितर हो गई थी। जगह-जगह राख की ढेरियां लगी हुई थीं। कई स्थानों पर तो अभी भी आग जल रही थी।

अकबर का तंबू जलकर खाक हो गया था। फिर भी जवाहिरात और स्वर्ण-मोहरें लोहे के संदूक में सुरक्षित रह गई थीं। तहवर खां का शिविर तो खजाने समेत सुरक्षित हाथ लग गया था। अन्य तंबुओ से भी बेशुमार माल मिला था। मुगल सैनिकों द्वारा गावों को लूटकर एकत्रित की गई संपत्ति स्थान-स्थान पर ठोकरें खा रही थी।

भीमसिह के निर्देशानुसार गलाल द्वारा नियुक्त सैनिकों ने जब

सवेरे छावनी का माल-सामान इकट्ठा किया तो इतनी सारी वस्तुओं के ढेर लग गए थे कि दर्शकों की बुद्धि चकराने लगी थी।

दो-चार स्थानो पर तरह-तरह की तलवारों के जंगी ढेर लगे हुए थे। ढालों के ढेर के ढेर तो राक्षसी कूड़ों के ढेर का आभास कराते थे। इसके अतिरिक्त सैनिकों के लिबास-पोशाक और दाना-पानी के ढेर भी ज्यों के त्यों सुरक्षित मिल गए थे और ये ढेर भी कोई कम न थे। बारूदखाने के साथ तोपखाना तो ज्यों का ज्यों हाथ लग गया था। लगभग पचास हाथियों की हस्तिशाला भी भीतर की एक पहाड़ी ढलान पर सुरक्षित मिल गई थी। रात के झंझावात के कारण उग्र स्वभाव के दस-बीस हाथियों ने जैसे अपनी आकुलता प्रकट की हो त्यो किसी हाथी के पैर की तो किसी के गले की जंजीरें टूट गई थीं।

भीमसिंह ने घोड़ों पर बैठ कर मुगल-सेना की इस विशाल छावनी का निरीक्षण किया। लौटने पर अपनी छावनी में एक विराट दरबार का आह्वान किया। पहले तो उसने गलाल के पेट भर बखान किए। फिर उसने गलाल को अपने पास बुलाकर उसे अपने गले का हार पहनाते हुए आवाज बुलंद कर कहा, "मैं नही जानता कि हार कितना कीमती और महिमामय है, पर इतना अवश्य जानता हूं कि यह हार मेवाड़ के राणाकुल का अलंकार है, बापू! मैं अपनी कुल-गरिमा के इस प्रतीक को, याद के तौर पर तुम्हें पहनाता हूं और दूसरी याद, यह मेरा अपना निजी लीलागर घोड़ा तुम्हें सौंपता हूं!"

भीमसिंह ने भावावेश में गलाल को अपने प्रशस्त वक्षस्थल से लगा लिया। उसे गद्दी के एक कोने पर बिठाकर, अरावली की दूरस्थ पहाड़ियों के एक सर्वोच्च शिखर की ओर हाथ से इशारा करते हुए भीमसिंह ने सभा को संबोधित किया, "जिस प्रकार उस उत्तुंग पर्वत-शिखर के कारण अरावली पर्वतमाला सुशोभित हो रही है वैसे ही मै आज···"; और इस स्थल पर भीमसिंह ने गलाल की ओर निहारते हुए कहा, "तुम्हारे कारण आलोकित-दीपित हो रहा हूं, गलाल बापू!"

छोटे-बड़े सरदारों से खचाखच भरी हुई उस राजसभा ने ज़ोर-शोर से करतल ध्वनि की। जबकि बाहर खड़ी सैनिकों की भीड़ ने तो तालियों

की वर्षा के साथ-साथ गगनभेदी जयनाद भी किए—

"कुमार श्री भीमसिंह की जय !"

"गलालसिंह बापू की जय !"

" गनोरा की इस विजय की जय !"

सभा विसर्जित करते हुए गद्दी पर से उठकर भीमसिंह ने भी इस तुमुल जयघोष मे अपना मेघ-गर्जन-सा स्वर मिलाया—

"मेवाड़ की जय !"

और इसके साथ ही सारा आकाश जैसे आषाढ के बादलों की गड़-गड़ाहट से प्रतिध्वनित हो उठा—

"मेवाड़ की जय !"

"महाराणा राजसिंह की जय !"

"भारत माता की जय !"

मान-सम्मान

गनोरा की इस चमत्कारी विजय ने तो जैसे महाराणा की विजयाकांक्षा को ही तृप्त कर दिया ! दक्षिण से नयी कुमुक बुलाकर दिल्ली की बेशुमार सेना मेवाड़ का विनाश करने के लिए भले ही चढ आई हो, पर युवराज जयसिंह ने अप्रत्याशित धावा बोलकर शाहजादे अकबर के सैन्य-दल का कचूमर निकाल दिया था। पर्वतों की भूलभुलैयां मे अंधा बना हुआ अकबर, यदि बच भी गया था तो जयसिंह की दया से; और राजपूतों की सहायता से ही वह निरापद चित्तौड़ पहुंच पाया था।

दूसरी तरफ महाराणा राजसिंह ने औरंगजेब की फौज को तहस-नहस कर दिया था। राणा ने औरंगजेब की बेगम को कैद कर लिया और वीरोचित उदारता प्रदर्शित करते हुए उसे मुक्ति-दान भी दिया था। पर्वतों के पिंजड़े में बंदी बने हुए औरंगज़ेब को भी स्वयं महाराणा ने पलायन-मार्ग सुलभ करवा दिया था।

पर गनोरा के इस युद्ध में तो भीमसिंह ने बात ही बात में वह कमाल

कर दिखाया था कि सारी हकीकत सुनकर महाराणा के आनंद की सीमा न रही। उन्होंने एक विशेष दूत भेजकर भीमसिंह, उसके सरदारों तथा सैन्यदल को खूब-खूब शाबाशी दी। भीमसिंह को, अपनी और जोधपुर की सेना को स्वयं की तरफ से एक दावत देने की भी घोषणा की।

महाराणा के पत्र के प्रत्युत्तर में भीमसिंह ने गलाल के अपूर्व युद्ध-कौशल एवं वीरता का वर्णन किया तथा उनसे अनुरोध किया कि वह अपने हाथों से इस नौजवान को उपहार-सम्मान प्रदान कर इसकी वीरता का अभिनंदन करें। राणाजी ने उत्तर में लिखा कि गलालसिंह को साथ लेकर तुम स्वयं भी उदयपुर आओ।

लेकिन भीमसिंह ने तो उदयपुर का पानी न पीने की शपथ ली थी इसलिए वह नहीं गया और अभी न आ सकने की सूचना भेजकर लिख दिया कि गलाल अकेला आ रहा है।

राजसिंह ने औरंगज़ेब के विरुद्ध युद्ध करने के पहले राजस्थान भर के राजाओं की उदयपुर में जब बैठक आयोजित की थी, तब भीमसिंह गया अवश्य था, लेकिन अपने साथ भोजन-सामग्री भी लेता गया था और पीने का पानी रोज़ देवगिरि मार्ग के उस पार से मंगवाता था।

इस बार भी आरंभ में तो उसका विचार गलाल के साथ जाने का था, पर बीच के इन दस-पंद्रह दिनों में ईर्ष्यालु राजाओं और अग्रणी सरदारो द्वारा भीमसिंह के कान गलाल के विषय में बुरी तरह से भर दिए गए थे, "गलाल तो अजी घमंड मे चकनाचूर है वह इधर-उधर कहता फिरता है कि गलाल की असि ने ही ईडरिया गढ़ जीता और गलाल की तदबीर ने ही गनोरा-विजय का स्वर्णिम परिच्छेद मेवाड़ी-इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों से चिरकाल के लिए अंकित कर दिया है…!"

हालांकि भीमसिंह इन सारी बातों को मानता नही था, फिर भी वास्तविकता यह थी कि गलाल के प्रति उसका मन कुछ खट्टा अवश्य हो गया था।

गलाल ने भी भीमसिंह की इस नाराज़गी और उदासीनता को भांप लिया था। एक ओर जहां उसे भीमसिंह के विषय में सोचकर दुख होता था, वहीं दूसरी ओर वह यह भी महसूस करता कि जिस व्यक्ति के

कान कच्चे होते हैं, उसकी शुभाकाक्षा भी कागज की ढाल के समान होती है ! कोई बात नहीं ! यदि तुम्हे सरदारों की कमी नही है तो मुझे भी उनका कौन-सा अभाव है ? महाराणा की विराट राजसभा मे सरदार बनकर बैठने की अपेक्षा तो अपनी छोटी-सी राजसभा मे बापू बनकर बैठना कोई बुरी बात नहीं है ।

बादशाह के विरुद्ध लड़ाई भी अब स्थगित-सी थी। दुर्गादास इत्यादि ने भी शाहज़ादा अकबर से मित्रता स्थापित कर ली थी और औरंगज़ेब के स्थान पर अकबर को दिल्ली के सिंहासन पर शहनशाह के रूप में प्रतिष्ठित करने के विषय मे वे महाराणा से मत्रणा कर रहे थे ।

इस सारे माहौल को देखकर गलाल मन-ही-मन अनुभव करता था कि अब फिर बैठे-बैठे रोटी खाने और हिरन मारकर बहादुरी दिखाने के दिन आ गए हैं···। अतः गलाल ने निश्चय किया कि वह उदयपुर से सीधा घर जाएगा । उसने अपनी सैनिक टुकड़ी को तैयार होने का हुक्म भी दे दिया ।

गलाल तो भीमसिंह से, वक़ता भाई की मार्फत विदाई लेना चाहता था और वह भी ठीक प्रस्थान के पहले ! परंतु जैसे ही वह भीमसिंह द्वारा प्रदत्त उपहार-स्वरूप उस प्रतापी अश्व पर सवार होने लगा, उसका निर्णय बदल गया । और वह घोड़े पर बैठकर सीधा भीमसिंह से मिलने पहुंचा ।

भीमसिंह ने गलाल की ठंडी आवभगत की । बैठने को भी नही कहा।

पूछा, “रिसाले के साथ जा रहे हो न ?”

गलाल ने कही भीतर से स्वयं को आहत महसूस किया । कहा, “हां, कुंवर सा'ब ! उदयपुर होकर सीधा घर जाने का विचार है, इसलिए रिसाला भी ले जा रहा हूं ।”

भीमसिंह दो-चार पल तक कुछ नहीं बोला । उसने गलाल पर एक दृष्टि डाली । उस दृष्टि में विषाद गहरा रहा था, “दादाभाई से कुंवर सा'ब बना दिया न बापू ! ···बैठो ।” उसने आंखो के इशारे से अपनी ही गद्दी पर बैठने को कहा ।

भीम सिंह के इस मीठे व्यंग्य से गलाल का गला भर आया । भीमसिंह

के सम्मुख वीर की अदा से बैठते हुए उसने कहा, "आपकी आंखों में जब से दादाभाई नहीं दिखे तब से हम भी दूर हो गए, दादाभाई !" और फिर जोड़ दिया, "ज़बरदस्ती किसी के सीने से थोड़े ही चिपका जा सकता है !"

"बोलने में तुमसे भूल हुई है बापू ! पर आज से मैं उसे मन से निकाल देता हूं !" भीमसिंह ने स्थान, समय एवं जिसके आगे उसने ये बातें कहीं थीं उसका स्मरण कराया।

भीमसिंह की सेना में स्वयं भीमसिंह के बाद द्वितीय स्थान के अधिकारी एक राजसी सेनापति से वादविवाद में टक्कर हो जाने पर गलाल ने कुछ दिन पहले, महज एक मामूली सरदार कह कर उसे अपमानित करने वाले उस सेनापति से कहा था, "आप और दूसरे सरदारों ने तो कुमार सा'ब को प्रजा लूटने के लिए प्रेरित किया था, जबकि मैंने उन्हे गौरव और कीर्ति के पथ पर अग्रसर होने के लिए उत्प्रेरित किया था। फिर किस आधार पर आप मुझे छोटा मानते हैं, राजा सा'ब ?"

इस कथन में नमक-मिर्च मिलाकर उस राजसी सेनापति ने उसे इस रूप में प्रस्तुत किया था, " कुमार सा'ब ! आपको ईडर और गनोरा में विजय भले ही मिली हो, पर अलीगढ़ का यह छोकरा तो ज़मीन पर पैर तक नहीं टिकाता है और इधर-उधर चारों तरफ कहता फिरता है कि कुवर सा'ब की फौज तो सिर्फ प्रजा लूटने में पटु है। यदि मैं और मेरी मुट्ठी-भर सेना न होती तो ईडर और गनोरा की विजय का गौरव-मुकुट कुमार सा'ब को कहां से प्राप्त होता ?"

इसके पश्चात् तो कुछ अन्य घटनाओं ने भी भीमसिंह के हृदय में कटुता भर दी थी और तब से भीमसिंह का दिल जाने-अनजाने गलाल के प्रति खट्टा हो गया था। उसने शिकार में भी उसे साथ ले जाना छोड़ दिया था।

गलाल की जगह यदि कोई दूसरा सरदार होता तो वह भीमसिंह की नाराज़गी को दूर करने के लिए हर किस्म के उपाय करता और गलतफहमी दूर करवाने के लिए दूसरों के ज़रिये संदेश भेजता। पर स्वाभिमानी गलाल ने तो निश्चय कर लिया था कि जैसे कुछ हुआ ही

नही है और वह कुछ जानता ही नही है। स्पष्टीकरण देना उसके स्वभाव मे नहीं था।

इस सारे प्रकरण के प्रति गलाल द्वारा अपनाई गई उदासीनता और निर्लिप्तता ने भी भीमसिंह के अहं को आघात पहुंचाया। परंतु फिर भी जब गलाल ने छुट्टी लेने के पहले राजसी सेनापति के जरिये कहलवाया कि मैं अपने सैनिकों समेत कल प्रस्थान कर रहा हूं तो भीमसिंह अन्य-मनस्क-सा, उदास-सा हो गया था। उसके मन को यह आशंका भी बरा-बर साल रही थी कि कहीं ऐसा न हो कि गलाल जाने के पहले मिलने भी न आए।

और जब वह मिलने आया तो भीमसिंह के मन मे यह शिकायत उभर रही थी कि जब मुझे उस पर रोष चढ़ा था तब तो मिलने नही आया और अब आखिरी घड़ी में मुझसे मिलने आया है !

भीमसिंह के सम्मुख बैठने के बाद गलाल ने अपनी सफाई पेश की पर भीमसिंह वास्तव में एक विशाल-हृदय पुरुष था। गलाल की बचाव की दलीलो के दौरान बीच में ही कहने लगा, "जाने भी दो उस बात को बापू ! तुम्हे आज कई दिनो के बाद देखकर मेरा गुस्सा उतर गया है। तुम मुझे मिलने आए यही मेरे लिए काफी है—तुम्हारा आना ही तुम्हारा स्पष्टीकरण है। अच्छा, अब बताओ कि उदयपुर तो जा रहे हो न ?"

भीमसिंह की यह आत्मीयता और सहृदयता देखकर गलाल का शिलाखंड-सा अहंकार पल-भर में ही पिघल गया। मधुर-मधुर हास्य सहित अनुराग-भरे लहजे मे कहने लगा, "दादाभाई का आदेश हो और राणाजी के दर्शन का सुअवसर मिले तो क्या नही जाऊंगा, दादाभाई !"

भीमसिंह का मन भी गलाल के साथ जाने को मचलने लगा। परतु उसे लगा कि एक बार 'नही' लिख देने के बाद जाना उचित नहीं होगा भारी निःश्वास के साथ गलाल से कहा, "खैर, मैं तो नहीं आ रहा हूं, पर राणाजी तुम्हें इनाम के रूप में क्या देते हैं इसकी सूचना ज़रूर देना !"

भीमसिंह उठ खड़ा हुआ। ग़लाल को हृदय से लगाते समय इस धीर-वीर योद्धा का दिल भी भारी हो उठा। लगा कि जैसे अपने किसी

अतरंग प्रिय जन से बिछड़ रहा है। प्रेमपूर्वक हंसते हुए कहा, "जिस नेह के साथ मैंने तुम्हें पहले दिन गले लगाया था, वही नेह आज भी जीवंत है। किसी दिन मेरे योग्य काम पड़े तो ज़रूर कहलाना और दादागुरु से मिलने पर उनको मेरा प्रणाम कहना।"

गलाल जैसे निर्मोही युवक की आंखें भी आर्द्र हवाओ की तरह भीनी और भारी हो गईं। वह भीमसिंह से नज़र न मिला सका।

नि.शब्द और मूक भीमसिंह उसे द्वार तक छोड़ने आया। द्वार पर खड़े स्तंभित-से भीमसिंह को देखकर दूर खड़ा लीलागर हिनहिना उठा। घोड़े पर निगाह पड़ते ही भीमसिंह ने भी गलाल के साथ उसी ओर कदम बढाए। निकट पहुचते ही अश्व की गर्दन से लिपट गया। एक बार पुनः उसकी आखें डबडबा आईं। उसने घोड़े की विशिष्टताओ के बारे मे गलाल को समझाने के बाद लीलागर को थप-थपाते हुए, सहलाते हुए कहा, "नाम रोशन करना, बेटा! तुम इसे (गलाल) मेरा छोटा भाई समझना!"

गलाल ने घोड़े पर सवार होकर भीमसिंह से विदा मांगी, "जय एकलिंगजी की, दादाभाई!" यहा आने के बाद से वह भवानी के बदले 'जय एकलिंगजी' कहना सीख गया था। भीमसिंह ने आशीर्वाद दिया, "एकलिंगजी तेरी रक्षा करे!"

गलाल जब तक दृष्टि-पथ से ओझल नही हुआ तब तक भीमसिंह मूर्तिमान् विषाद-सा उन्हे यों घूरता रहा जैसे कि वह अश्व और अश्वा-रोही में तारतम्य स्थापित कर रहा हो। लौटते हुए अस्फुट स्वरों में बुदबुदाया—'लगता है, मेरे गले मे विजय की वरमाला पहनाने के लिए ही दादागुरु ने इस तरुण योद्धा को मेरे पास भेजा था···!'

इस विचार के साथ ही भीमसिंह ने निश्चय किया कि कल ही एक साढनी-सवार भेजकर दादागुरु को ईडर और गनोरा-विजय की सूचना के साथ-साथ गलाल के शौर्य और बुद्धिमानी की स्तुति-गाथा भी लिख भेजूंगा।

गलाल के जाने के पश्चात् भीमसिंह को ख्याल आया कि क्योंकि उसने लिखा है इसलिए महाराणा राजसभा आयोजित कर गलाल का

अतिशय मान-सम्मान करेंगे और उसे उपहार-पदवी भी देंगे ही; परंतु फिर भी गलाल के अद्वितीय पराक्रम और प्रखर बुद्धि-कौशल का न तो महाराणा ठीक-ठीक अनुमान लगा सकेंगे और न राजसभा ही इस अद्भुत वीर का सही मूल्याकन कर सकेगी। यह विचार आते ही भीमसिंह को पहली बार न जाने का पछतावा होने लगा। उसे लगा कि काश वह स्वयं जा पाता !

भीमसिंह को विश्वास था कि यदि वह स्वयं जाता तो इस महान् विजय के उपलक्ष्य मे महाराणा स्वयं नगर के सीमात पर आकर उसका और उसके सभी साथी सरदारों का स्वागत करते, नगर में राजसी जुलूस निकालकर उनका अभिनंदन करते ! पर हालाकि इस युद्ध का प्रमुख विजेता गलाल है, तथापि उसे इस विजय के अनुरूप मान-सम्मान थोड़े ही मिलना है ?

इस प्रकार की चिता-धारा मे से भीमसिंह को एकाएक जैसे कुछ याद आया। उसने आदमी भेजकर छावनी के चारण-भाटों को बुलाया और उनके अगुए से सवाल किया, "कविराज ! गलाल बापू की वीरता आपको कैसी लगी ?"

"कुवर सा'ब ! मेवाड़ के इतिहास में उसका नाम अमर रहेगा। मैंने तो उस पर काव्य-रचना भी प्रारंभ कर दी है।"

"तो फिर ठीक है, अभी ही घोड़े पर चढो। रास्ते में गलाल बापू से मिल लो और राणाजी की राजसभा में गलालसिंह की वीरता का बढ-चढ़कर काव्यात्मक अभिनंदन करो।"

"जो आज्ञा" कहकर चारण कवि ने भीमसिंह को झुककर प्रणाम किया और इस तेज़ी से कदम उठाए कि जैसे अभी से ही उसने भाव-ऊर्मियों के पंख लगाकर उड़ना निश्चित कर लिया हो।

चारण कवि घोड़े पर बैठकर गलालसिंह के पीछे-पीछे दौड़ पड़ा।

पहली बात तो यह कि वह भाट और फिर शौर्य और पराक्रम का वह अद्भुत युग तथा ऊपर से शूरवीर राजपूत योद्धाओं से खचाखच भरी हुई महाराणा की वह भव्य राजसभा !

भाट ने भीमसिंह और गलालसिंह के अपूर्व पराक्रम का ऐसा जय-

गान किया कि किसी-किसी को तो चूड़ावत सरदार की वीरता भी उस प्रशस्ति-गाथा की तुलना में फीकी जंचने लगी।

महाराणा राजसिंह गलाल की वीर गाथा सुनकर प्रसन्न हो उठे। भारतमाता के ऐसे सपूतों पर उन्होने गौरव महसूस किया। गलाल के योगदान को उन्होंने भारत माता का सौभाग्य उद्घोषित किया और अंत में कहा, "मेवाड की स्थिति अभी भी डावाडोल है। मैं तुम्हें जो जागीर दे रहा हूं वह तो सिर्फ़ शुभाकाक्षा की प्रतीक मात्र है। उसका स्वयं में कोई महत्व नही है। मैं इस तथ्य से भी अपरिचित नही कि कितने ही सरदारों की वीरता का ऋण मेवाड़ की गद्दी पर चढा हुआ है। लेकिन वीरो! कुछ दिन के लिए रुक जाओ। शाति-युग का अवतरण होने दो। मैं यथाशक्ति एक-एक का ऋण चुकाऊंगा।"

इसके पश्चात् उन्होने गलाल से कहा, "वीर युवक! तेरी बहादुरी की याद के रूप में मैं तुझे जकारा की पदवी और साथ मे मगरा ज़िले में पचास हज़ार का पट्टा, एक श्रेष्ठ नशल का अश्व, यह पोशाक और शमशीर देता हूं।" और इसके साथ ही महाराणा ने अपने पीछे खड़े अंगरक्षक से पोशाक, तलवार तथा बीडे के रूप मे लिपटा हुआ रेशमी कपड़े पर अंकित दस्तावेज़ ग्रहण किया।

मंच पर राणाजी की गद्दी के पास गलीचे पर खडे हुए गलाल ने लेने के लिए हाथ पसारा। राणाजी से पोशाक और तलवार ग्रहण करने के बाद उसने उन्हें सविनय प्रणाम किया। राणाजी की दाईं तरफ बैठे युवराज जयसिंह को भी प्रणाम किया। अंत में उसने समस्त राजसभा को नमस्कार किया और मंच से उतरकर ठीक उसी स्थान पर. आ बैठा जहां सभा आरंभ होने के पूर्व उसे बैठाया गया था।

महाराणा ने एक बार पुनः राजसभा को संबोधित किया, "बहादुरो! यह न समझना कि चूंकि शाहजादा अकबर और सिपहसालार तहव्वर खां गनोरा के युद्ध में परास्त हो गए हैं, अतः युद्ध का अंत आ गया है। यह युद्ध तब तक जारी रहेगा जब तक भारत-भूमि आततायियों के बोझ से दबी रहेगी···पर संप्रति, मैं आप सबको अपने-अपने घर जाकर अपने प्रिय बाल-बच्चों को मिल आने की अनुमति देता हूं।" तुरंत जोड़ दिया,

"यदि बीच में कोई ज़रूरत पैदा हुई तो आपको सूचित किया जाएगा।" महाराणा ने इसके बाद राजसभा को नमस्कार किया और पार्श्व द्वार से प्रस्थान किया। युवराज जयसिंह ने भी पिता का अनुसरण किया।

जिस प्रकार से दल बनाकर स्त्रियां किसी सुंदर बालक को हुलराती-दुलराती हैं, ठीक वैसे ही कई योद्धाओं ने गलाल की तलवार को हाथ मे लेकर उसे ध्यान से देखा और उसकी सराहना की। कितनों ही ने उसकी पोशाक का निरीक्षण किया और कई लोगो ने तो बल्कि उसका दस्तावेज़ खोलकर उसमे अंकित गावों आदि के नाम पढ़कर अपने भूले-बिसरे भौगोलिक ज्ञान से उसका तारतम्य स्थापित किया, उसे तरोताज़ा किया।

तभी डूंगरपुर के महारावल, जो गलाल के बहनोई लगते थे, पीछे से आ खड़े हो गए। उन्होंने गलाल को गले लगाकर उसका अभिनंदन किया, उसकी वीरता पर गौरव प्रकट किया और अलग होते समय डूंगरपुर आने का साग्रह निमंत्रण भी दिया।

विश्राम-भवन पर पहुंचकर गलाल विचार में पड़ गया। एक विचार तो यह हुआ कि स्वदेश लौटने के पहले जागीर का दौरा करने के साथ-साथ एक चक्कर शक्ति-मंदिर का भी काट लिया जाए ताकि दादागुरु के दर्शन भी हो जाएं। पर इस विचार के मूल में भी उन तूफानी घोड़ों का प्रसंग और पुरुष-वेश में हृदय-पटल पर अंकित उस सौंदर्य-प्रभा को ढूंढ निकालने का प्रयोजन अवश्य विद्यमान था। पर साथ ही वह यह भी बखूबी समझता था कि यह प्रयोजन यूं खड़े-खड़े चक्कर काटने से पूरा होने वाला नहीं है। आखिरकार उसने विचार किया, घर पहुंचने पर यों भी मुझे एक बार जागीर पर तो जाना ही पड़ेगा और तब मैं दूसरा क्या काम करूंगा?

गलाल ने घर पहुंचने का तय किया।

गलाल ने वकता भाई आदि से भी कहा, "सैनिक घर जाने की रटन लगा रहे हैं। अतः ऐसा क्यों न करें कि यदि रंगा सहमत हो तो वह जाकर जागीर संभाल ले और इस बीच हम पियोली मां को प्रणाम कर लौट आएं! तुम क्या सोचते हो? ठीक है न?"

वकता भाई को भी यह सुझाव पसंद आया। रंगा भी अनिच्छापूर्वक

अनमने भाव से सहमत हो गया। अनमने भाव से इसलिए कि वह विवाहित था। पर अंततः अक्खड़ सैनिक स्वभाव के उस वीर-पुरुष ने यह कह-कर मन को मना लिया कि सैनिक के लिए विवाहित या कुआरे होने में क्या फर्क है ? बापू के लौट आने पर आराम से जाऊंगा !

और दूसरे दिन गलाल अपने सैनिको सहित स्वदेश के लिए रवाना हो गया।

फूलां की विचित्र मनोदशा

अमरिया जब लड़ाई में गए हुए गलालसिंह के समाचार प्राप्त करने के लिए बार-बार शक्ति-मदिर के चक्कर काट रहा था, उस समय गुज-रात से लूट का माल लेकर लौटते हुए गलाल के कुछ सैनिको ने रास्ते में शक्ति-मंदिर में विश्राम किया था और ईडर के युद्ध तथा गलाल बापू के पराक्रम की जयगाथा दादागुरु को सुनाई थी। दादागुरु ने यह वीरगाथा सुनकर अमरिया से कहा, "अमरा ! अब गीतों की रचना कर। गलाल बापू द्वारा काटी गई हुसैन की उंगली का गीत, ईडरगढ़ की विजय का गीत !"

"दादा ! गीत-रचना तो कर लूगा, पर यह तो बताओ कि गीत को सुनने वाला कब आएगा ?"

"यदि सचमुच गीत सुनाने की इच्छा रखते हो तो तुम्हे स्वयं ही गलालसिंह के पास जाना पडेगा !"

अमरिया तो अपने पैर रूपी घोड़े अभी से दौड़ाने को प्रस्तुत था, "आप कहें तो अभी चल दूं; लेकिन दादा ! यह तो बताओ कि चलकर जाऊंगा कहां ?"

"कुछ दिन और प्रतीक्षा कर, अमरा ! संप्रति बादशाह की सेना जोधपुर की ओर अग्रसर हो रही है और शीघ्र ही उसकी भीमसिंह से टक्कर होगी। गलालसिंह भी उसी के साथ है। सो एकाध माह में कुछ नतीजा अवश्य निकलेगा।" फिर रुककर जैसे स्वयं को ही आश्वस्त करने लगे, "अच्छा ही निकलेगा; बस महीने-भर के लिए ठहर जा !"

इस बात को हुए अभी थोड़े दिन भी नहीं बीते थे कि भीमसिंह का भेजा हुआ सांढनी-सवार एक विस्तृत पत्र लेकर आ पहुंचा। पत्र में भीमसिंह ने दादागुरु के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की थी और गलाल बापू की वीर-गाथा का भी सविस्तर वर्णन किया था।

कुछ दिन बाद अमरिया ने फिर से एक चक्कर काटा। दादागुरु ने भीमसिंह का पत्र देते हुए कहा, "बना अब गलालसिंह का गीत!" और फिर जैसे स्वयं को ही संबोधित करते हुए जोड दिया, "बाहुबल का सूर्य अस्त हो रहा है, अमरा! समझ ले कि प्रज्ञा-युग का अवतरण हो रहा है।" साथ ही दादा ने अमरा को 'प्रज्ञा' शब्द का अर्थ भी समजाया।

उत्साहित अमरा ने अपने पहले प्रश्न को ही आगे बढ़ाया, "प्रज्ञा-गीत भी लिखूगा, दादा! किंतु पहले इस अवतारी पुरुष के दर्शन करना चाहता हूं।"

"अब दर्शन भी हो जाएंगे। गीत-रचना करके सीधा अलीगढ़ के लिए प्रस्थान कर। इस समय औरगज़ेब इतना जर्जरित हो गया है कि भविष्य में वह युद्ध और मेवाड़ का नाम नही लेगा!"

दरअसल अमरिया ने अभी तक फूलकुवर के पास राजकुमार का नाम-पता नही पहुचाया था। वह पहले गलालसिह को फूला के स्वप्न पर आधारित अपना गीत सुनाना चाहता था और बदले मे फूलकुंवर के लिए कुमार का संदेश लाना चाहता था। पर अब उसे लगा कि फूलां के स्वप्न को काफी दिन बीत गए है और अंततः फूला एक स्त्री है! नारी-हृदय का क्या भरोसा अमरिया! उसके हृदय रूपी वृक्ष के हर पत्ते पर अलग-अलग मत अंकित रहता है, वह हर क्षण, हर कदम बदलता रहता है। इसलिए अच्छा यही है कि एक बार तू कडाणा का चक्कर काट आ। अपनी आंखों से परख ले कि इन तिलो मे कितना तेल है! और यदि तुझे लगे कि प्रणय का प्रारंभिक अंकुर अभी भी सजीव है तो फिर मिलना गलालसिह से और सुनाना उसे सपने का गीत! अतः बेहतर यही है कि एक बार तू फूलां के पास उसका नाम-पता पहुंचा दे।

इस निर्णय के बाद तो अमरिया कडाणा की राह पर बढता गया और गलाल पर गीत-रचना भी करता रहा

लालसिंग ना सवा गलालेंग
तारू धरती मोघुं नामे जीयु
पूरबिया पूरबगढ ना राजा
तमे आचलगढ ना राजा जीयु
वडबो आपणो पृथ्वीसिग जे
जगत भर मा पकायो जीयुं
जेपुर कुंवरी संयुक्ता नो
स्वयंवर मंडायो जीयुं
चकमक मा थी अग्नि उठ्यो
चौहाण पुतले प्रगट्यो जीयु
हावक हुलक रजवाडयुं ने
तलवार्यु ताणेली जीयु
पण पुतला थई ग्यां, जोता रही ग्या
संयुक्ता हरी लइ ग्यो जीयुं
वणा कुल मा पाक्यो दुजो
गलालसिंग पूरवियो जीयु
असि मढी मखमल थी एवी
मढ़ी वीरता रूपे जीयुं
बेऊं हाथ में बे तलवारो
झीके डाबी जमणी जीयुं
तलवारो नी ताली पडे मे
ढालडिये आभ छवाया जीयु
लण्यां मुगला गण्या अणगण्या
गढ ईडरियो जीत्यो जीयु···

(अर्थ : ओ लालसिंग के सवाये गलालसिंह ! पृथ्वी पर तेरा नाम प्रिय है। ओ पुरबिया पूरबगढ के राजा, तुम अचलगढ के राजा हो ! तुम्हारे पूर्वज पृथ्वीराज थे जो कि विश्व-भर में विख्यात है। जयपुर की राजकुमारी संयुक्ता का स्वयंवर रचा गया था। जिस प्रकार चकमक पत्थर से सहसा अग्नि प्रकट होती है, वैसे ही पृथ्वीराज चौहान पुतले

में से प्रकट हुआ था। स्वयंवर-समारोह में उपस्थित सभी राजाओं में सहसा हलचल मच गई थी और सभी ने अपनी तलवारें खींच ली थी। पर अंततः वे सभी मूर्तिवत् देखते के देखते रह गए और पृथ्वीराज ने संयुक्ता का अपहरण कर लिया। उसी प्रतापी तेजस्वी वश-परपरा मे इस दूसरे चौहान वीर गलालसिंह का जन्म हुआ है। उसकी तलवार पर मंडित मखमल का आवरण ऐसा प्रतीत होता है जैसे वीरता का सौदर्य से श्रृंगार कर दिया गया है। उसके दाये और बायें दोनों ही हाथो में दो तलवारें सुशोभित है। रणभूमि में तलवारों की टकराहट ने ताली का रूप धारण कर लिया है और आकाश ढालो से छा गया है। लगता है जैसे ढालों के आकाश तले तलवारो की ताली पड रही है! उसने अन-गिनत मुगलो के सर यों काट डाले है जैसे किसान सुगमता से फसल काटता है···। उसने ईडर का विख्यात किला भी जीत लिया है···।)

कडाणा पहुंचने पर अमरिया ने देखा कि पहरेदारों में वही दुर्दमनीय बेचैनी है। जमादार ने आते ही सीधा सवाल किया—

"अबे ओ मुआ! तू किस गाव का है?"

"सागवाड़ा के निकट ठाकरडा का हू, बावजी!"

"गधा कही का! तुझे अपना पता यहां देकर जाना चाहिए था न! तेरे ही कारण हमें बाई सा'ब का यह उलाहना बार-बार सुनना पड़ता है कि महल में आने-जाने वालों का नाम-पता क्यो नहीं दर्ज किया जाता!" यह कहकर जमादार ने खिड़की में पड़ी हुई किताब उठाई और पन्ना खोलकर धागे से बंधी हुई पेंसिल हाथ मे लेते हुए कहा, "देख साले! तूने हमारे लिए यह नाम-पता लिखने की कैसी मुसीबत पैदा कर दी है! अबे, अब भौक भी दे अपना नाम-पता। अपने बाप का नाम भी लिखवा देना। सब बातें विस्तार से लिखवा दे, वरना समझ लेना कि तेरी खैर नही है!"

और उसका पूरा पता लिखने के बाद जमादार उसे ड्योढी पर ले गया। दरोगा ने भी अमरिया की ओर आंखें तरेरकर कहा, "अबे ओ निकम्मे, तू तो एक पखवाड़े मे कविता लिखकर लौटने वाला था न!"

पर इस बार अमरिया शांत और स्वस्थ था। जैसे कोई उसका अपूर्व

स्वागत कर रहा हो यों मन ही मन वह अत्यंत प्रसन्न हो रहा था।

अमरिया ने ठंडे स्वर में दरोगा से कहा, "आप सभी अधिकारीगण अमरिया पर झुंझला रहे है, क्रोध प्रकट कर रहे है। पर यह तो पूछो कि दाढ़ी वाले सियार तुझे कहां मिले थे और तुझ पर क्या-क्या बीती !"

"यह बात है क्या ? फिर कहता क्यों नही कि मुगलों का शिकार हो गया था।" दरोगा के रोष का पारा उतर गया था ।

"अरे दरोगा सा'ब ! मैं तो मुगलों को भी खुश कर देता। पर अपने राम के पास राजपूतो के शौर्य एवं देवी-देवताओं के गीतों के अतिरिक्त और कुछ है ही नही । और अगर भूल से कही ये गीत सुना दू तो समझ लो कि फिर अपने राम सीधे कब्र में···।"

"फिर ?" पर दरोगा को सहसा फूलकुवर की व्यग्रता याद हो आई। कहा, "एक बार पहले बाई सा'ब को तेरे आने की सूचना दे दू, बाद मे फिर तेरी बात···।"

आज भी फूला ने एक आंख में हर्ष और दूसरी आंख मे क्रोध भरकर अमरिया को बुलवाया।

पर बहाने के तौर पर इस बार अमरिया के हाथ में मुगलों की दाढी आ गई थी। फूलां ने उसकी मनोरंजक आपबीती आधी सुनी, आधी नहीं सुनी। चिक की ओट मे से धीमे स्वर मे प्रश्न किया, "स्वप्न को सत्य बनाकर आया है न ?"

"हा बाई सा'ब ! स्वप्न की बात को सच्ची बनाकर लाया हूं।"

चौकी पर आसीन फूला की हृदय-वीणा के तार झंकृत हो उठे। उसने कहा, "तो फिर बोल न !"

फूलां की अधीरता को लक्ष्य कर अमरिया स्वाभाविक रूप से घबराया। मन में विचार भी आया—'स्त्री की जाति, अमरिया ! घायल सिंहनी और आशाभंग स्त्री ! इसलिए आशा बंधाने के पहले परिणामों के विषय में खूब सोच लेना !' और अमरिया ने श्रीगणेश ही फीके शब्दों से किया, "बाई सा'ब गीत में सिर्फ़ स्वप्नजगत के अश्वारोही का नाम-पता भर जोड़ दिया है। अभी वह साकार नही हुआ है। अभी तक प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हुए हैं, बाई सा'ब !"

फूलां यह सुनकर जैसे आधी दुबली हो गई। निःश्वास के साथ बोली, "ओ, तब तो, खैर नाम-पता तो···"

गीत मे सभी बातों का वर्णन किया है बाई सा'ब ! सुनिएगा।" इतना कहकर कालू कडाणिया की बेटी से सीधी बात करने से घबराया हुआ अमरिया रामैया संजोता गया और गीत गुनगुनाता रहा। वह रामैया सजाकर यूं झूमने लगा जैसे नशे में हो और फिर गाने लगा—

लालसिंग ना सवा गलालेंग
तारूं धरती मोंघु नामे जीयुं
पूरबि या पूरबगढ ना राजा
तमे अचलगढ़ ना राजा जीयुं···

अपने चित्त मे चित्रित प्रियतम का नाम गलालसिंह है, यह जानकर फूलां के हृदयाकाश में चारों ओर जैसे हर्ष की गुलाल उडने लगी। उसे पूरबिया उपनाम के विषय में भी पता था कि यह चौहान वंश की एक शाखा है। और जब अमरिया ने गलाल की ईडर और गनोरा-विजय का उल्लेख किया तो फूलां का मन-मयूर नाचने को अधीर हो उठा।

इसकी पूरी-पूरी संभावना थी कि संस्कृत-साहित्य और काव्य की अनुरागिनी फूलां के मन में गलाल की बुद्धि और शौर्य की प्रशंसा सुनकर, तिल का ताड़ बना देने वाले चारणो की कल्पना-शक्ति के लिए संदेह पैदा होता। पर उसे यदि यह प्रशसा अतिरंजित नहीं लगी तो इसके एक नही अपितु दो-दो कारण थे। प्रथम साक्षी तो उसकी स्वयं की अंतरात्मा थी और दूसरा साक्षी उसका एक मामा था जो चार-छः दिन पहले ही उदयपुर से आया था। उसने न केवल महाराणा की भरी राजसभा में, चारण द्वारा इस गलाल नामक युवा पुरुष की की गई स्तुति का वर्णन किया था, अपितु उसने अपनी आंखों से उस देवोपम कुमार का जो सौदर्य देखा था, उसका भी प्रशंसा-प्रचुर चित्रण किया था। पर उस क्षण मासूम फूलां को क्या मालूम था कि मामा जिसके रूप और शौर्य का इतना बखान कर रहा है, वह तो पहले से ही उसके हृदय-कक्ष में प्रस्थापित है !

मामा से उस युवा पुरुष की रूप-छटा का वर्णन सुनकर होंठ बिचकाकर फूलां का मन यह कहने को तत्पर हो गया कि देवोपम पुरुष यों रास्ते

पर थोड़े ही पड़े रहते हैं ? देवोपम पुरुष तो केवल वही था जिसे मैंने एक बार माही के किनारे पर देखा था ।

पर मामा की बात का अमरिया के गीत में समर्थन पाकर हर्षविभोर फूला अपने इस सीमाहीन सौभाग्य पर रह-रहकर संदेह करती हुई अपने-आपसे कहने लगी—'जा रे पगली ! नाम और कुल मे तो साम्य है, पर स्थान का नाम कहां मिलता है ? मामा कहते है अलीगढ और यह कहता है अचलगढ़ !···' पर फूलां की आत्मा इस संशय के बावजूद निष्कंप दीपशिखा-सी प्रशांत थी। उसकी आत्मा उसे बारंबार कह रही थी—'वह यही है, फूलां ! वह यही है···!'

अंतःकरण ने पहली ही दृष्टि में वीरत्व की सुषमा से परिपूर्ण जिस पुरुष-सौंदर्य पर प्रेमकलश ढलवाया था, उसे आज इस सीमा तक चरि-तार्थ होते देखकर फूलां अपनी कुलदेवी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने लगी। मंद स्वर में कहा—'इसे चमत्कार नही तो क्या कहूं मां ? चम-त्कार ही तो मानना पड़ेगा ! तुम्हारे दर्शनार्थ आ रही थी और तुमने ही तो जैसे उस युवक को मेरे सामने भेजा था !···' फूलां को तो बल्कि तलवार के आदान-प्रदान के समय गलाल के साथ हुए हस्तमिलाप मे भी दैवी संकेत का आभास होने लगा। उसे लगा कि शक्ति-मां स्वयं आत्माओं के इस महामिलन की साक्षी है।

परंतु गलाल के लिए छटपटाने वाला फूलां का मन इस वास्तविकता को भी बखूबी समझता था कि मधुर-कोमल कल्पना और कठोर यथार्थ के मध्य हज़ारों कोस की दूरी है। आह भरकर फूलां ने अमरिया से प्रश्न किया, "अब क्या करूं अमरिया ?"

अमरिया नही समझ पाया कि बाई सा'ब क्या कहना चाहती है। उसने कहा, "आपकी जो आज्ञा हो बाई सा'ब !"

कभी तो तू कहता है कि वह पूरबगढ का है और कभी कहता है अचलगढ़ का है ! जबकि मैंने तो सुना है कि वह अलीगढ का राजकुमार है···तो फिर···?"

अमरिया जैसे पकड़ लिया गया हो यों बीच ही में बोल उठा, "बाई सा'ब ! यह तो कवियो की वाणी है ! वैसे सही स्थान अलीगढ़ ही है।

आप जो भी आज्ञा देंगी उसे शिरोधार्य करने को अमरिया प्रस्तुत है।" तुरंत जोड़ दिया, "दादागुरु कहते थे कि संतों और वीर पुरुषों का कोई ठौर-ठिकाना नहीं होता।"

फूलां अब भी गंभीर बनी हुई थी। कहा, "याद रखना अमरिया कवि! अभी तक तो यह केवल एक स्वप्न था पर अब तो तूने उसमें प्राण-प्रतिष्ठा कर दी है। इसलिए···" कहते-कहते वह अटक गई। गला साफ कर दो-चार क्षणों के बाद फूला ने अमरिया से पूछा, "नल-दमयंती की वार्ता याद है न?"

"हां बाई सा'ब!"

"बोलो, जरा सुनू तो कि क्या जानते हो?" फूलां का स्वर अतिशय गंभीर था। किसी देश का नल नामक राजा है और किसी देश की दमयंती नामक राजकुमारी है···।"

सहसा अमरिया को फूला के अभिप्राय का एहसास हुआ। कहा, "और एक हंस इन दो आत्माओं का मिलन करवाता है···।"

"बस, बस! ठीक है। वह हंस था, तू कवि है। इसलिए अब आगे की बात तेरे हाथ में है, अमरिया!" फूलकुवर अपने आसन से उठ खड़ी हुई।

फूलां के शब्दों मे, उसकी आवाज में घनीभूत विषाद परिलक्षित कर अमरिया भी अनायास ही उदास हो उठा। अब तक तो यह समस्त घटना-प्रवाह उसकी दृष्टि में एक खेल के समान था, महज़ पुरस्कार प्राप्त करने का एक कौशल मात्र था! पर अब···

फूलां ने जाते-जाते कहा, "सुनो, ठहर जाओ; तुम्हें पुरस्कार···"

अपने स्थान से उठते हुए अमरिया ने बीच में ही कहा, "ना बाई सा'ब, पुरस्कार तो अब स्वप्न साकार होने पर ही···" और हंसने का प्रयास करते हुए अमरिया ने जोड दिया, "मुंह-मागा पुरस्कार लूंगा, बाई सा'ब!"

उसके विरोध के बावजूद फूला ने अलमारी खोलकर डिब्बे में से मुट्ठी-भर स्वर्ण-मोहरें निकाली और सदा के हाथों अमरिया के पास भिजवाते हुए कहा, "कहना कि सिर्फ राह खर्च है।"

दोनों हथेलियों में पडी हुई चार-पांच स्वर्ण-मोहरें देखकर खुश होने के स्थान पर अमरिया चौंक पड़ा। पर 'हां' या 'ना' कहने का अवसर ही नही था। दासी से कहा, "बाई सा'ब से कहना कि अमरिया एक जोगी है। पर यह आदम की औलाद हंस का काम करके ही चैन की सांस लेगी।" इतना कहकर वह चलता बना।

वह इस समय इस हद तक गंभीर था कि अपनी सहज आदत के अनुसार उसने दरोगा या सिपाहियों को खुश करने की कोशिश भी नही की। उसके पैर यंत्रवत् बढ़ते रहे। एक अज्ञात अवसाद ने उसके मन-प्राणों को घेर लिया। द्वार पर से तलवार और झोला उठाते वक्त रूखी-सूखी वाणी में बोला, "फिर आऊंगा दरोगा सा'ब। जय अंबे!"

'जय-अंबे' के जयनाद के साथ प्रस्थान करते समय, अमरिया का मन-मस्तिष्क दादागुरु से मिली जानकारी के आधार पर चतुर्दिक क्षितिजों में दूर-दूर तक किसी की तलाश में भटक रहा था। वह अपने-आप से कह रहा था—अमरिया कवि! तू फूलकुंवर के प्रेम को मामूली मत समझना! उसने तुझे हंस का नाम दिया है, इसी से समझ लेना कि···!

वतन से विदाई

उदयपुर से प्रस्थान कर अलीगढ़ पहुचने पर, नगर की जनता उसका स्वागत करने के लिए उमड़ पड़ी। यद्यपि ईडर-विजय का समाचार पुराना हो गया था, पर गनोरा-विजय तो अभी भी लोकमानस पर चक्कर लगा रही थी। नगर-प्रवेश करने पर लोगों ने हर्षोल्लास सहित 'गलाल बापू की जय' का नारा लगाते हुए उसे जैसे आकाश मे उठा लिया। नगर के दोनों राजमार्गों पर गुलाल के बगूले उठे हुए थे और फूलों की वर्षा हो रही थी। नगर की युवतियों को युद्ध-वीर गलाल युद्ध करने के लिए जाते समय किशोर वय का प्रतीक हुआ था, पर आज तो वह उन्हें पूर्ण युवा पुरुष लग रहा था।

अश्व से उतरकर राजगढ़ में प्रवेश करते ही झाली भाभी ने अपने

इस लाडले देवर का आनंदाश्रुओं से स्वागत किया, "कुशल तो हो न देवरजी ?" फिर कुकुम-तिलक लगाकर अक्षत से अभिनंदन किया। पुष्प-हार पहनते हुए कहा, "तुम्हारे कारण सारे कुल का नाम रोशन हुआ है। तुम कुल-दीपक हो, देवरजी !" और फिर कहा, "जब तक आकाश मे चाद-सूरज है, तब तक तुम्हारा यह कीर्ति-प्रकाश अजर-अमर रहेगा।"

बड़े भाई ने भी गलाल को हृदय से लगाया। पियोली मा जैसे ही अपने इस लाडले पराक्रमी पुत्र को हृदय से लगाने लगी, वह उनके चरणों मे दंडवत झुक गया। मां और बेटे की आखों में मिलन के, हर्ष के आंसू थे। द्वादशवर्षीय अनुज गुमानसिंह भी गलाल से लिपट गया।

दूसरे दिन दरबार का आयोजन कर बडे भाई ने गलाल का विधिवत् सत्कार किया। गलाल ने महाराणा से मिले सभी उपहार—पोशाक, तलवार तथा अश्व—बडे भाई को अर्पित किए। चार गांव की जागीर का खरीता और अदंर अंकित जकारा की पदवी भी बड़े भाई को समर्पित कर दी।

बडे भाई ने यह मानते हुए कि जकारा की पदवी को गलालसिंह से अलग नही किया जा सकता, उसे गलाल को प्रत्यर्पित कर दिया और इसके अलावा मेवाड़ की जागीर भी उसी पल गलाल को लौटा दी। सिर्फ़ इतना ही नही, इस शुभ मिलन एवं विजयोत्सव के उपलक्ष्य मे, अपनी ओर से इसके पहले दिए गए बारह गांवों में और पाच गांवों को जोड़ दिया।

सभा समाप्त होने पर गलाल अपने आवास पर लौटा। बड़े भाई द्वारा दिए गए पाच गांवों की चर्चा करते हुए उसने मां से कहा, "मां ! मेवाड़ के चार गाव भी दादाभाई ने मुझे दे दिए है।"

मा ने आशानुरूप स्वीकृतिसूचक उद्‌गार प्रकट नही किया। वह वक्र स्वर में बड़बड़ाई, "भाई है, देगा ही।"

गलाल को यह भांपते देर नही लगी कि मां नाराज है। उसने मां का मन परखने के लिए इधर-उधर की दूसरी बातें की, पर मां के मन की बात ताड़ नहीं सका। गलाल ने कहा, "मां ! मेवाड की जागीर को अधि-कार मे लेने के लिए रंगा को भेजा है, उससे समाचार मिलने पर चलेंगे।" स्वीकृति के नाम पर सिर्फ़ सिर हिलाती हुई मां की चुप्पी देखकर गलाल ने आखिर सीधा सवाल किया, "मां! तुम मेवाड़ की जागीर पर आओगी न?"

पियोली मां कितने ही समय से भीतर ही भीतर घुटन महसूस कर रही थी, छटपटा रही थी। आखिर वह इस घुटन को अभिव्यक्त किए बिना रह न सकी, "क्यों नही बेटा ! वहा तो फिर लबा-चौड़ा महल जो होगा ? मां को आना ही चाहिए, क्यों नही आएगी ?"

अभी तक तो गलाल मां की बातों को बच्चा बनकर सुनता रहा था। उसके गहरे मातृप्रेम और अतस के विनय ने प्रतिवाद के द्वार बंद कर रखे थे। पर आज वह कहे बगैर न रह सका हालाकि हास्य और प्रेम के साथ, "महल और धरती कितने ही लंबे-चौड़े क्यो न हो, पर मानव को खड़े रहने के लिए दो पैर रख सके उतनी जमीन और सोने के लिए अंततः शरीर के बराबर ज़मीन की ही ज़रूरत रहती है।" और फिर तुरंत जोड़ दिया, "तुम तो बस चलो मेरे साथ। अभी जागीर मिली है तो भविष्य मे कभी महल भी अवश्य खड़ा होगा !"

"जो बना-बनाया मिल रहा था उसे तो तूने जाने दिया ! अब नया बनवाकर क्या करना है ?"

गलाल समझ गया कि मां गहरी भेदभरी वाणी मे बोल रही है। पर अभी तक वह भेद उसकी पकड़ में नही आया था। उसने हंसते हुए पूछा, "मां ! तुम किस महल की बात कर रही हो ?"

"ईडर के महल की।" और फिर गलाल पर कठोर दृष्टि डालकर प्रश्न किया, "मिल रहा था या नहीं ?"

गलाल चुप रह गया, वह क्या उत्तर देता ? उसका चेहरा यूं झुक गया जैसे वह कोई भारी अपराध कर बैठा हो। हृदय के किसी कोने में पछतावा भी हो रहा था। मन कहता था—'अपनी धुन मे मां की बात को भूल गया न !' उसे अब भी इसमें रत्ती-भर भी संदेह नही था कि उस वक्त यदि वह स्वीकृतिसूचक सिर हिला देता तो दादाभाई उसे उसी वक्त ईडर की राजगद्दी पर आसीन कर देते! पर जो बीत गई सो बीत गई। अब क्या हो सकता था ?

वस्तुतः बीती बातों पर अफसोस करना गलाल के स्वभाव में नहीं था। वह मां के आगे बनने लगा। कहा, "भीमसिंहजी तो ईडर की राजगद्दी दे रहे थे मा ! परंतु मैंने यदि उसे स्वीकार किया होता, तो

उदयपुर तो दूर रहा, हमारी अपनी सेना में ही गड़बड़ी और फूट पैदा होने की सभावना थी !"

"राजपूत का बेटा होकर गड़बडी और प्रतिरोध की आशंका से डर गया ! तू मेरा यह वाक्य सदैव याद रखना कि ऐसे सुनहरे अवसर जीवन में बार-बार नही आते !" सौभाग्य लक्ष्मी एक ही बार जीवन के द्वार खटखटाती है, वह बार-बार नही आती !" मा की आवाज मे दुख ही दुख था, "और कुछ नही तो तुझे इतना ख्याल तो होना ही चाहिए था कि मेरे बेटे, तुझे छोटी-मोटी राजगद्दी दिलाने के लिए ही मैं दादागुरु के पास ले गई थी और दादागुरु ने आशीर्वाद भी दिया था। उस आशीर्वाद के फलस्वरूप सौभाग्य-लक्ष्मी तेरे भाल पर राजतिलक लगाने आई थी और फिर भी तूने…!" और इसके साथ ही जाने घुटनजनित उमडते रुदन को छुपाने के लिए या किसी अन्य कारण से तकिये पर झुकी हुई पियोली मां तुरत उठ खडी हुई। तिरस्कार और क्रोध से बराबर बोलती, बडबड़ाती रही, "पड़ा रह उस निवाले जैसी जागीर मे। अरे, इसमे भी तेरी मनोवृत्ति ऐसी है कि तुझे कोई उस स्थान पर स्थायी रूप से रहने ही न देगा। तू तो जीवनपर्यंत इसी प्रकार भटकता हुआ पेट भरेगा और दुनिया-भर के राजाओ की चाकरी करता रहेगा !"

पता नही यह मा का शाप था या दुर्निवार नियति बोल रही थी ! जो भी हो, गलाल को रह-रहकर परिताप हो रहा था—'स्वयं के लिए नहीं तो मां के संतोष के लिए ही मुझे राजगद्दी स्वीकार कर लेनी चाहिए थी ! ईडर की गद्दी अगर स्वीकार कर ली होती तो मां कितनी खुश होती ! उसका मेरे जैसे पाषाण को जन्म देना सार्थक हो जाता !'

एकाएक गलाल को भीमसिंह द्वारा पहनाया हुआ हार याद आया। जोश के साथ उठ खड़ा हुआ। मां के पीछे धीरे-धीरे पैर बढ़ाते हुए गले से हार उतारने लगा…और एकदम आगे बढकर मुडा और मा के गले में हार डालकर बोला, "मा ! यह राणाजी की कुल-परंपरा का हार है…।" रोष ही रोष मे मा गले से हार निकालने लगी, पर गलाल ने मा का हाथ पकड़ लिया। बोला, "क्या करती हो मां ? इतना तो विचार करो कि यह भीमसिंह की मां का हार है !!"

गलाल ने कल ही भीमसिंह द्वारा दिए गए लीलागर अश्व और अनमोल हार की चर्चा के समय मा को यह हार दिखाया था। पर मा तो उस पर तब से आगबबूला हो रही थी जब से उसने गुजरात की लूट का माल और ईडर की जीत का पैगाम देने के लिए आए हुए सैनिकों से सुना था कि उसने भीमसिंह द्वारा प्रस्तावित ईडर की गद्दी के उपहार को ठुकरा दिया था। गलाल के गले में सुशोभित हार को मां ने बिल्कुल अनदेखा कर दिया। उसके लिए तो जैसे उसका अस्तित्व ही नही था।

गलाल अब भी मा की विष-दंशित बुद्धि को झिझोड़ रहा हो यों उनका हाथ हिलाकर बोला, "ज़रा इतना तो विचार करो मां कि यह हार किसी समय मेवाड़ाधिपति महाराणा राजसिंह की महारानी और प्रतापी कुमार भीमसिंह की मां के गले मे झूलता था!"

यह सुनकर मां तनिक पिघल गई। पर फिर भी यह कहे बिना न रह सकी कि "अकेले हार का क्या करू? मुझे तो मेरे कुवर को गद्दीपति देखना है!" और बाजू मे झूलते हुए हिंडोले पर धम से बैठ गई।

गलाल ने व्यथित स्वर मे कहा, "मां! तुम यह क्यों भूलती हो कि अपनी ड्योढ़ी पर चारण-भाटों और दूसरे कवियों ने पांच-दस बार नही, अपितु अनेकानेक बार एक गीत गाया था। उस गीत को हम दोनो ने सुना था। क्या तुम यह भी भूल गई कि एक बार तो तुमने स्वय ही मेरा उस गीत की ओर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया था?"

चूकि मां का क्रोध अब शात होने लगा था, अतः उसका चित्त भी हाथ मे लटकते हार मे केंद्रित हुआ। वह सोच रही थी—'यह हार मेवाड़ाधिपति महाराणा राजसिंह की महारानी और प्रतापी भीमसिंह की मा के गले में सुशोभित था!...' और इसलिए गलाल की बात उसके कानों में आधी-अधूरी ही पहुंच रही थी। यदि वह गलाल की ओर देखती भी थी तो एक अजीब द्विधाभाव से! पर गलाल अपनी ही धुन में लीन था। जैसे स्मृति-कोश के पन्ने पलट रहा हो यों बोला, "एक बार तो इसी गवाक्ष में ही हम-तुम दोनों खड़े थे और तुमने मुझे इस दोहे का अर्थ समझाया था। तुम्हें याद है मां?—

नाम रहंतां ठक्करा नाणां नव रहंत
कीर्ति तणां कोटडां, पाड्यां नव पडंत !"

(राजपूतो का तो नाम ही शेष रहता है, धन-दौलत नही ! कीर्ति की प्राचीरें लाख कोशिश करने पर भी नही टूटती !)

मा के चेहरे पर विषाद, दुख और क्षोभ की छाया ओझल होते देखकर हर्षित गलाल और भी अधिक जोश के साथ कहने लगा, "राजगद्दी भले ही छोड आया मां ! पर कीर्ति अवश्य कमा लाया हूं ! नही ?" और सदर्प जोड़ दिया, "महाराणा की राजसभा में गनोरा-विजय का गुणगान करते हुए चारण कवि ने कहा था कि वीरत्व से छलकती हुई अतीत की सभी विजय-गाथाएं विस्मृति के गर्भ में खो जाएंगी, पर शक्ति-बुद्धि द्वारा अर्जित गनोरा-विजय विश्व इतिहास मे बेजोड़ है और संसार-भर की विजय-गाथाओं में उसका स्थान अमर रहेगा !"

"यह तो ठीक है, बापू ! पर फिर भी तू रहेगा तो जागीरदार ही न ?"

"गलाल यदि ईडर की राजगद्दी पर बैठता तो गनोरा के युद्ध में कैसे जा सकता था ?" क्षणभर रुककर हकीकत के तौर पर कहा, "नही जा सकता था मां ! नये मिले हुए राज्य की व्यवस्था में ही लगा रहना पड़ता ।"

"खैर बेटा ! अब यही मानना पड़ेगा कि तेरी किस्मत में ईडर की गद्दी नहीं लिखी थी ।" और फिर पियोली मा हार में जड़े हुए हीरे, नीलम, पन्ना और मानिक को एक-एक कर देखती रही और उस हार की संपूर्ण कहानी के बारे मे नये सिरे से पूछती रही…।

सारा इतिहास सुनने के बाद वह मन को मनाने लगी, "मेवाड़ के राज-घराने का हार अपने कुल में आया, यह कोई कम बात थोड़े ही है…।"

शाम को देवर से मिलने के लिए जब झाली भाभी आई तो मां ने ही गलाल से कहा, "बापू ! भीमसिंह का वह हार बहूरानी को दिखा। वहा रखा है मेरी अलमारी मे । जा, ले आ।"

स्त्रियां वैसे भी गहनों की पारखी होती हैं और फिर झाली रानी तो

कोटा जैसे राज्य की राजकुमारी थी। उसके हाथो में स्वाभाविक रूप से भांति-भाति के हीरक हार आते-जाते रहे थे। पर मेवाड़ के इस हार ने तो झाली रानी को भी चकित कर दिया। स्वयं उसकी मां का वह 'एकावल-हार' भी उतना देदीप्यमान और मोहक नही था। और कोई दिन होता तो सास को जलाने के लिए झाली यही कहती, "बहुत बढिया तो नही है, परंतु फिर भी मध्यम श्रेणी का ठीक-ठीक है!" पर आज तो उसे भी कहना पड़ा, "मेवाड के राजवंश का यह अनमोल हार गलाल बापू के गले मे!! इससे बढकर सौभाग्य और गौरव की बात और क्या हो सकती है!" और नाममात्र के लिए बीच में व्यवधान बनी हुई चिक के बाहर लगभग आधा चेहरा निकालकर झाली ने गलाल से सविनोद प्रश्न किया, "बोलो बापू! मेवाड के अत:पुर का यह उत्तम हार तो ले आए, पर अब बहू रानी कब आएगी ?"

देवर-भाभी की इस बातचीत मे पियोली मा आगे-पीछे हो रही थी।

"आने वाली जाने, भाभी सा'ब !"

संभव है झाली को इस क्षण पियोली मा की संयुक्ता वाली बात याद हो आई हो, किंचित् खिन्न स्वर में कहा उसने, "बापू, इस युग में तो नही आएगी, लानी ही पड़ेगी !"

"आप भूलती हैं, भाभी सा'ब! राजपूतो मे तो हमेशा आती ही हैं। मामूली राजपूत भी लेने नही जाता।"

झाली भाभी एकदम सहमत हो गई, "हा, बात तो ठीक है। यू रिवाज के अनुसार तो आपके लिए भी एक नही अनेक मंगनिया आई है और अब तो और भी अच्छे-अच्छे घरानो से आएगी !"

पर मां जानती थी कि ये तथाकथित अच्छे-अच्छे ठिकाने कोई बूदी अलवर, जोधपुर या जयपुर जैसे सुविख्यात राजघराने नही हैं। बहुत हुआ तो इन राजघरानो के बंधु-बांधवो मे से किसी का नारियल आएगा!

मां को थोडा सशय भी हुआ कि झाली के ध्यान में अपने काके-वाके की साधारण कोई लड़की होगी और इसीलिए उसने यह प्रसग छेड़ा है!

अभी तक तो गलाल विवाह-प्रसग को मजाक में ही उड़ाता आया था। पर युद्ध से लौटने के बाद से वह काफी बदल गया था। यह तो नही कहा जा सकता कि वह लडाइयो से तृप्त हो गया था, पर निश्चय ही युद्ध की पिपासा को उसने काफी हद तक तृप्त कर लिया था और इसीलिए अब उसके जीवन और चिंतन में एक विशिष्ट प्रकार का ठहराव आ गया था। वह इस वक्त झाली भाभी से कहना चाहता था—'भाभी ने तुम्हारे जैसी कोई मिल जाए तो विचार किया जा सकता है।' और यह सोचने के साथ ही उसे माही नदी के किनारे पर मिली उस लड़की की याद आ गई। पर यह कैसे संभव था कि गलाल जैसा राजकुमार सामने जाकर लड़की लाए या उसकी तलाश करे।

भाभी के प्रश्न के उत्तर मे गलाल ने मात्र ये शब्द कहे, "आएं तो आने दो, भाभी सा'ब, देखेंगे।"

"बापू! आपको वह देखने को नहीं मिलेगी। बहुत हुआ तो हम लोग उसे देखेंगी!" फिर तुरंत प्रश्न किया, "बोलो! कैसी रानी चाहिए तुम्हे?"

गलाल के होंठों पर ये शब्द आते-आते रह गए कि तुम्हारे जैसी। पर इन शब्दों के स्थान पर "कहूं, कैसी चाहिए?" और बडबड़ाता हुआ वह कहने लगा, छरहरा बदन···बडी-बड़ी आंखें" पर आगे कहते-कहते शरमा गया, "ना, नही कहूंगा···" और वह सुखासन पर से उठकर चलता बना।

स्वयं गलाल भी नही जानता था कि उसकी कल्पना में झाली भाभी का बिंब है अथवा शक्ति-मंदिर के पास दोनों हाथों में तलवार लिये लचक-भरी अदा में खड़ी हुई, टकटकी लगाए ताकती हुई उस अज्ञात युवती का बिंब है! यदि उसने अपने अंतर्मन का गहराई से विश्लेषण किया होता तो उसे पता लगता कि तीस वर्षीय झाली भाभी ही बीस वर्ष की बनकर उस मुद्रा में खड़ी हुई थी।

झाली भाभी का विचार ठीक अपने ही जैसी चचेरी बहन का विवाह-प्रस्ताव गलाल के लिए पेश करने का था और इसी उद्देश्य को लेकर वह कोटा जाने का विचार भी कर रही थी।

परंतु ठीक उसी समय गलाल और बड़े भाई के बीच मनमुटाव पैदा हो गया। विवाद का पहला कारण भीमसिंह का हार था और दूसरा कारण लीलागर अश्व था।

बड़े भाई ने एक जागीरदार द्वारा यह सदेश भेजा कि अन्य उपहारों के समान ये दो उपहार भी तुम्हें गद्दी को अर्पित कर देने चाहिए और यदि वे तुम्हें अति प्रिय है तो बड़े भाई से फिर माग लेना चाहिए।

जवाब मे गलाल ने कहलाया कि ये चीज़ें मुझे निजी पुरस्कार के रूप मे मिली है। दरअसल पुरस्कार से अधिक तो भीमसिंह का मेरे प्रति जो प्रेम है उसी के ये प्रतीक हैं।

पर बड़े भाई को इन चीज़ों की अपेक्षा गलालसिंह के संपूर्ण समर्पण की आशा थी। हालाकि गलाल झगडा बढ़ाना नही चाहता था, पर साथ ही वह बड़े भाई की ज़बरदस्ती को स्वीकार करने के लिए भी तैयार नही था। उसने पुनः सविनय कहलवाया, "हार तो मैंने मां को दे दिया है और जहां तक घोड़े का प्रश्न है मैं उसे किसी को भी नही दूगा। मैंने आपको राणाजी का दिया हुआ घोड़ा पहले ही सौंप दिया है। उसी से संतोष कर लीजिए !"

मनमुटाव की सूचना मिलने पर पियोली मा ने भी बड़े भाई को डाटा। चीजो के प्रति गलाल की निर्लिप्तता की साक्षी देते हुए मां ने कहा, "असल में तो यह सारी कमाई अक्ल और तलवार के बल पर अकेला गलाल ही कमाकर लाया है। फिर भी यदि तू जिद्द करता है तो मुझे कहना पडेगा कि तू मेवाड़ाधिपति द्वारा दी गई जकारा की पदवी अर्जित करने पर ही गलाल की जागीर और उसके उपहारो का अधिकारी बन सकता है।"

परिणाम यह निकला कि जो क्लेश अब तक बडे भाई के मन मे छिपा हुआ पड़ा था वह प्रकट हो गया। और अंततोगत्वा एक दिन लीलागर अश्व पर सवार होकर स्वाभिमानी गलाल मा-भाभी को प्रणाम कर अपने सैनिकों समेत स्वयं-अर्जित मेवाड़ की जागीर की ओर चल पडा। जाते-जाते दादाभाई को कहलाया :

"अपनी तलवार में तेज होगा तो जहां भी जाऊंगा, नये प्रदेश जीतूगा, राज करूंगा।"

अमरिया सियाड पहुंचा

घोड़ा और घुमक्कड़ आदमी कभी इस बात की चिंता नही करते कि पथ लंबा है या छोटा। उनका तो जन्म ही जैसे पथ पर हुआ है। इस बार राह काटते समय अमरिया के विचारों में न तो युवा पत्नी के लिए कोई जगह थी और न ही उसकी कमर में बंधे सोने के कंदोरे के लिए। हंस के समान प्रेमदूत बनकर कडाणा से निकले हुए अमरिया ने उत्तर दिशा में स्थित अलीगढ को अपना लक्ष्य बनाया था। यू तो वह दूरस्थ अलवर तक हो आया था, पर अलीगढ़ कभी नहीं गया था।

जब तक अलीगढ का नाम गीत से बहिष्कृत रहा तब तक उसके मन में बढिया इनाम पाने की लालसा बद्धमूल रही। पर ज्यों ही नाम का भेद खुल गया तथा प्रेमबावरी वियोगिनी फूलां ने उसे हंस का किस्सा याद दिलाया, अमरिया की कवि-आत्मा उभरकर सामने आ गई। पग-पग पर वह सोचता था—'हंस तो आखिर पक्षी था, जबकि मैं तो मानव हूं। याचक हूं तो क्या हुआ, अच्छे-अच्छे पढ़े-लिखे लोग—अरे, खुद दादागुरु जैसे व्यक्ति भी मुझे कवि के रूप मे स्वीकार करते हैं···। तो फिर ठीक है अमरिया ! इस कलियुग मे अपना भी नाम हो जाए···।'

अमरिया ने जिस कारण से अलीगढ़ का नाम छिपाया था, वही कारण अब उसे और अधिक भयभीत करने लगा। परंतु इस बार लालच इनाम का नहीं, नाम का था। उसे लगा कि नाम प्रकट हो जाने से कही ऐसा न हो कि कालूसिंह या फूलां की मां, गलालसिंह के साथ फूलां की सगाई के लिए ब्राह्मण या नारियल रवाना कर दें !

पर साथ ही कालूसिंह की अपकीर्ति पर विचार करने पर यह भय निर्मूल लगता था। आखिर राजा लोग इतना तो सोचते ही है कि ऐसा महान धर्मयुद्ध हुआ, पर कालू कडाणिये ने नाममात्र के लिए एक भी सैनिक मुगलों से लड़ने के लिए नहीं भेजा। अत: ऐसे राजा की बेटी से विवाह का प्रस्ताव गलालसिंह जैसा विख्यात वीर पुरुष क्यों स्वीकार करेगा ?

इस विचार के साथ ही अमरिया की एक आंख हंसने लगी, परंतु

तुरंत ही दूसरी आख उदास हो गई। वह सोचता था—'यदि वह नारियल स्वीकार नही ही करता है तो तेरी स्वप्न-कहानी सुनकर क्यों स्वीकार करेगा ? अमरिया ! क्यों भूलता है कि अंततः वह लड़की तो उमी लुटेरे राजा की है न !'

इन दो संभावनाओं पर गंभीर चितन करता हुआ अमरिया अपने अंतर के महासागर की गहराई में उतर गया—'नही अमरिया, नारियल और मंगनी की बात तथा आत्माओ के महामिलन की बात एक नही, जुदा-जुदा हैं। पर तुझे इस बात को पूरी तरह से ध्यान में रखना है कि तेरे गीत को सुनकर गलाल को यह बोध हो जाना चाहिए कि फूलां की आत्मा गलाल की आत्मा मे विलीन हो चुकी है। उसे एक बार यह अनुभूति हो जाने पर कि फूला की आत्मा ने उसका वरण कर लिया है, वह उसे कदापि निराश नही करेगा। जिस प्रकार आगन पर खडे भिक्षुक और हृदयहारी समर्पिता नारी को उदार-हृदय पुरुष कभी निराश नही करता, वैसे ही प्रणय-पिपासु समर्पिता फूला को गलाल कदापि हताश नही करेगा···!'

आखिर आशा-अनुप्राणित अमरिया के पास भी एक मन था और मन का काम सदैव शंकाए उत्पन्न करना होता है। अतः अमरिया को पुनः संदेह हुआ—'यह तो निःसंशय सही है कि गलाल बापू शूरवीर और सुंदर है, पर यह कैसे मान लिया जाए कि वे उदार भी है ?' इस शंका का समाधान अमरिया ने स्वयं के अनुभव-मापदंड से किया। वह स्वयं से कहने लगा—'वीर पुरुष उदार होता है और सुदर पुरुप रसिक होता है। विश्वास न हो तो गलाल बापू से मिलकर इस उक्ति को प्रमाणित कर लेना !'

इस प्रकार के विचारों मे खोया हुआ अमरिया, अरावली की गिरि-मालाओं पर चढ़ता-उतरता हुआ, वीरान बियाबान वन प्रातरो को पार करता हुआ, संपन्न ग्राम प्रतीत होने पर रसिक ग्रामजनो का मनोरंजन करता हुआ एवं उनसे राहखर्च प्राप्त करता हुआ और रास्ता पूछता हुआ आगे बढा। मार्ग मे वह जहा भटक जाता वहा रुकता, रास्ता पूछता और मन ही मन यह कहकर हंसता कि अपने राम तो जन्म से भटके हुए हैं। आखिर पंद्रहवें दिन वह अलीगढ़ जा पहुंचा।

पर अमरिया हृतभाग्य निकला ! राजमहल के दरबान से सूचना मिली कि गलाल बापू अपने छोटे-से रिसाले के साथ इस नगर को छोड़ चुके है ।

"कहा गए ?" निःश्वास डालते हुए अमरिया ने सवाल किया ।

"इस धरती पर," दरबान का जवाब था ।

अमरिया को लगा कि दरबान उससे मज़ाक कर रहा है । उसने उसके पास बैठकर रामैया टिकाया और रसभरी वाणी मे बातचीत करने लगा, "जमादार सा'ब ! अपने को न तो कुछ देना है और न लेना है । पर गलाल बापू ने 'गढमा गढ ईडरियो, ने बीज बधां गढ़ैया, जैसा ईडर गढ जीता और गनोरा-युद्ध मे महाकाली का खप्पर आततायियो के लहू से भर दिया, इस बात को मैने अपने गीत में वर्णित किया है और उसी गीत को मैं उन्हें सुनाना चाहता हूं ।"

"सुन जोगी, तेर कंधे पर रामैया देखकर ही आधी बात तो मैं भांप गया हूं ! परंतु मेरा कहा मान और जा, यह नगर गलाल बापू के गुण-गान करने लायक नही है ।"

दरबान की तेज आंखो ने जैसे शब्द से परे कई गुनी बात उसके कानों मे कह दी थी । अमरिया ने सहसा प्रश्न किया, "ऐसी बात है, जमादार सा'ब ?"

"हां, हा, ऐसी बात ! जिस रास्ते से आया है, उसी से लौट जा । अलीगढ़ की सीमा के बाहर जाकर ही गलाल बापू की वीरता के गीत गाना । उठ, रफूचक्कर हो जा !"

"ज़रा धीरे से मुझे बता दो न कि धरती पर यूं निकल पड़ने का कारण क्या है ?"

दरबान बीच मे ही बोल पड़ा, "गृह-कलह जोगी !" इधर-उधर देखकर पूछा, "दाह में सब से बड़ा दाह कौन-सा, मालूम है ?"

"गृह-दाह ।"

"बिलकुल ठीक कहा तुमने, जोगी !" दरबान प्रसन्न था । उसने फिर कहा, "तू यहां से चला जा । प्रेम और शौर्य के गीत तो हर किसी को प्रिय लगेगे, इसमें गलाल बापू का क्या प्रयोजन ?"

पैंतीस वर्ष का अमरिया पंद्रह दिन की आशा-उमंग-भरी यात्रा के बाद अलीगढ़ के राजमहल पर पहुंचने पर पच्चीस वर्ष का लगता था। पर गलाल बापू के न होने की सूचना मिलने पर जब उसने पीठ फिराई तो पैंसठ वर्ष का बूढा प्रतीत होता था। नगर मे दो-तीन अन्य स्थानों पर पूछताछ के बाद उसे विश्वास हो गया कि दरबान की सूचना एकदम सही है। एक विशेष सूचना यह मिली कि गलाल बापू ने मेवाड़ की दिशा मे प्रयाण किया है। एक ने यह सूचना भी दी कि बापू को मेवाड़ मे जागीर मिली है सो वहीं जाकर खोज। पर कोई अमरिया को जागीर का नाम-पता नहीं दे सका।

दूरस्थ बागड़-प्रदेश से आए हुए इस निराश जोगी को एक-दो समझ-दार व्यक्तियों ने सलाह दी कि यदि तू राजगढ में लौटकर पियोली मां को गलाल का गीत सुनाएगा तो तेरा पूरा न सही, आधा फेरा अवश्य सफल हो जाएगा।

परंतु पहली बात तो यह कि अमरिया महल मे जाने से घबराता था और इसके अतरिक्ति यू भी उसके मन मे गीत सुनाने की या इनाम पाने की ज़रा भी तमन्ना शेष नही रही थी। उसे तो सिर्फ गलाल बापू से मिलना था और उन्हें स्वप्न-गीत सुनाना था। अमरिया ही एक ऐसा अभागा प्राणी था जिसके पैर गृह-वियोग से पीडित होने के बदले टूट गए थे।

मेवाड़ में प्रवेश के बाद वह गलाल बापू की विजय-गाथा गाता हुआ राणाजी की ओर से प्रदत्त जागीर के विषय मे लोगो से पूछता जाता था। पर इतने सारे लोगो में सिर्फ एक-दो ही ऐसे मिले जिन्हे गनोरा-विजय की जानकारी थी। उन दो मे से एक को तो गलाल बापू का नाम तक नही मालूम था। ऐसी स्थिति मे जागीर मिलने और जागीर के ठौर-ठिकाने की किसी को क्या खबर हो सकती थी।

अमरिया को अपने जीवन में पहली बार बोध हुआ कि दुनिया दुरंगी नही, अपितु बदरंगी है। अब तो मन में सिर्फ एक आशा शेष रह गई थी। दादागुरु से यदि पता मिल जाए तो ठीक है, अन्यथा यही मान लेना पड़ेगा कि गलाल बापू धरती की गोद मे कही खो गए है! वह निराश

स्वर में मन ही मन बड़बड़ाया—'सीपियों जैसी, संध्या के दो तारों जैसी आंखो में आशा-प्रतीक्षा के दीप जलाए बैठी हुई उस फूलकुवर को कह दूगा कि शकुन ठीक नही लगते, इसलिए गलाल की आस छोड़ दे और किसी दूसरे राजकुमार को खोजकर उसके भाग्य को रोशन कर !'

थका-हारा अमरिया सीधा घर पहुंचा। कुछ दिन घर पर रहकर नयी बहू के प्रणय-ससर्ग से ताज़ा होकर पुनः एक कंधे पर रामैया, दूसरे पर झोला और हाथ में तलवार लिये निकल पड़ा। सीधा दादागुरु की शरण में पहुंचा।

अमरिया ने दादागुरु को अपने व्यर्थ के फेरे की बात विस्तार से कह सुनाई। अंत मे कहा, "गलाल बापू का विरह-गीत तो रच लिया दादा, पर उनके पीछे परिक्रमा लगाने में ही आधा जनम गुजर गया !"

"फिकर मत कर, अमरा ! अब तुझे अरावली की पर्वत-शृखलाएं नही रौदनी पड़ेगी।"

"क्यो दादा ?"

"यहा से थोड़ी दूर जाते ही माही-माता की एक शाखा पश्चिम की ओर मुडती है···"

"हां दादा, ढेबर तालाब के निर्गम-मार्ग वाला झरना ही न ?" अमरिया बीच मे बोल पड़ा।

दादा अवसादपूर्ण हसी हंसकर बोले, "बेचारा ढेबर तो भग्नावस्था मे है, पर शाखा वही है। मेवाड में प्रवेश करते ही तुझे मगरा ज़िला मिलेगा। मुझे ठीक से याद नहीं कि किस दिशा में, पर उसी ज़िले में गलालसिंह को चार गांवों का पट्टा मिला है। उनमे से दो के नाम तो मुझे याद है—बम्बोरा और सियाड ! मेरा खयाल है कि उसने सियाड मे अपना पड़ाव डाला होगा।" क्षण-भर रुककर पुनः कहा, "मेरी सलाह माने तो अभी कुछ दिन ठहर जा। बापू को अपना पडाव जमा लेने दे।"

"आपकी सलाह बिलकुल सही है दादा। पहला पडाव तो सम्राट के लिए भी भारी होता है। थोडे दिन उन्हे जम जाने दू। चौमासा भी सिर पर है और मेघो को भी बरस जाने दू, यही ठीक है।" फिर स्वगत-सा कहने लगा, 'थोड़ा विलंब हो जाए तो कोई बात नहीं, पर उसी वक्त

जाना चाहिए जब गलाल बापू का चित्त शांत हो।'

घर जाकर खेती में लगे अमरिया को अब माही नदी के ऊपरी भाग मे आ बसे गलाल बापू को स्वप्न-गीत सुनाना वैसा ही सुगम प्रतीत होता था जैसे मधुकोष से मधु निकालना। अब गीत सुनाने का कार्य अलीगढ़ के नारियल के पेड़ से नारियल तोड़ने जैसा कठिन थोडे ही था। उसे अब न समय की चिंता थी और न गलाल बापू के विवाहित हो जाने की। उस युग मे एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी पत्नी लाना कोई नयी बात नहीं थी। बल्कि गलाल जैसे पराक्रमी और आकर्षक राजपूत के घर में केवल एक पत्नी का होना ही विशेष आश्चर्य की बात होती।

इधर कडाणा, अमरिया के गांव से दो-तीन दिन की यात्रा के बराबर दूरी पर था। वहां के समाचार भी वह लेता रहता था। पथिकों से पूछता रहता, "कडाणा के राजा के यहां विवाह-जैसी कोई तैयारी तो नही हो रही है न?"

सारांश यह कि यदि कोई चिंता थी तो यही कि फूलकुवर किसी अन्य स्थान पर विवाह न कर बैठे। पर इस मुद्दे पर तो अमरिया अपने अंतर मे इस हद तक आश्वस्त था कि यदि फूलां को गलाल के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष के साथ विवाह-मंडप मे बैठी देख ले तब भी वह यही मानेगा कि फूलां ने अपने स्थान पर किसी अन्य लड़की को घूघट निकलवाकर विवाह-मडप में बैठा दिया है।

पावस के बादलों ने अपनी जन्मभूमि की राह पकडी। अमरिया ने भी लगभग तीन माह से खूटी पर लटके हुए रामैये को पुनः संभाला। धुनकी भी नयी ली और चादी के घुघरुओ को तो धुलवाकर उजला बनवा लिया पर पीतल के घुघरू बदलकर नये लगवाए।

नव वर्ष के रीते बादल जैसे किसी आशा-भरी कुमारी का हृदय शीतल कर भ्रमण पर निकलें, यों अमरिया भी घर से निकलकर सर्वप्रथम शक्ति-मंदिर मे वंदना करने पहुंचा। दादा की उपस्थिति मे सरस्वती-वंदना की और इसके बाद दादागुरु का आशीर्वाद प्राप्त कर निकल पड़ा मेवाड़ की ओर!

पर्वतीय दुर्गम राह और चौमासे की घास खा-खाकर मस्त बना हुआ सांड-सा विकराल और सघन जंगल ! अमरिया तलवार की म्यान ढीली रखकर ही मुसाफिरी करता था। खरगोश, हिरन, नीलगाय, सूअर इत्यादि वन्य जंतु तो उसे देखते ही भाग जाते थे। यदि डर था तो सिर्फ सिंह का। परंतु वह सिंह को राजसी स्वभाव का प्राणी मानता था। इसलिए वह सिंह से ज्यादा चीते से डरता था। ···चीता तो मनुष्य देखकर मुगलों की तरह नाक सिकोड़ेगा और अपने शिकारी दांत निपोरेगा !

सौभाग्य से अमरिया की किसी सिंह या व्याघ्र से भेंट नहीं हुई। वह एक गाव से दूसरे गांव रास्ता पूछता-पूछता तीसरे दिन सियाड पहुंच गया।

सियाड वैसे तो एक छोटा-सा कस्बा था, पर शिकार के लिए निर्मित राणाजी की एक कोठी उस क्षेत्र में विद्यमान थी और इसलिए उनके ठहरने के लिए एक छोटा परंतु सुविधा-संपन्न महल सियाड मे अवश्य विद्यमान था। इस क्षेत्र के सूबेदार ने पट्टे के साथ-साथ वह महल भी गलाल के हवाले कर दिया।

महल के दरबानो और राजा के सिपाहियों को अमरिया ने व्याघ्र की उपाधि दे रखी थी। उनका मिजाज भी दरअसल वैसा ही था। परंतु इनमें से अधिकाश अमरिया-जैसे याचक-वर्ग के लोगो के आगे तो शाही मिज़ाज के साथ ही व्यवहार करते थे। दरबान को प्रणाम करने के बाद अमरिया ने घुटनों तक विस्तीर्ण दरबारी अचकन की जेब मे से चिलम निकाली। अचकन की कुलीनता और अमरिया की पोशाक देखकर कोई भी यह कह सकता था कि यह अचकन राजघराने से मिली हुई होनी चाहिए।

अंबारी सहित हाथी प्रवेश कर सके ऐसा चौड़ा प्रवेश-द्वार था। उसके दोनों तरफ दो-दो खाट बिछाई जा सकें ऐसे दो बडे-बडे चबूतरे थे। एक चबूतरे पर लंबी नली वाली दो-तीन बंदूकें, तलवारें, तीर-धनुष और कटार आदि हथियार खूटियों पर लटके हुए थे। दूसरे चबूतरे पर चारपाइयां, बिस्तर, कपडे और दो-तीन जोडी जूते पडे हुए थे। बाजू मे एक टोकरी थी और टोकरी में तंबाकू भरी हुई थी। प्रवेश-द्वार के बाहर

पार्श्व मे—जैसा कि हर द्वार पर होता है—एक अलाव था और सिंह के सिर जैसी आकृति की दो बड़ी लकड़ियों में सुलगती हुई अग्नि भी दिखाई दे रही थी ।

अमरिया के हाथ मे चिलम देखकर तलवारधारी सिपाही ने उसे टोकरी दिखाते हुए कहा, "उस टोकरी में से तंबाकू का चूरा ले ले ।"

टोकरी के पास ब्योंत भर लंबी चिलम देखकर अमरिया ने पूछा, "आपकी चिलम भर दू सरदार ?"

अमरिया ने दो कारणो से प्रश्न किया था । प्रथम तो यह कि वह उस सरदार का मिज़ाज परखना चाहता था और दूसरा यह कि···सिपाही का यह जवाब सुनकर कि 'अच्छा, भर ले' अमरिया ने औंधी पडी हुई चिलम उठा ली । सूखी साफी को हाथ से मसलते हुए पूछा, "पानी कहा है सरदार ?" दरबान ने दरवाज़े के एक कोने की ओर हाथ लबा करते हुए कहा, "वह रहा दीवार पर मटकी मे ।" दरबान की चिलम भरने का दूसरा कारण यही था कि इस बहाने अमरिया अपनी साफी भी भिगोना चाहता था ।

इसके पश्चात् तो पैर नीचे लटकाकर चबूतरे पर बैठा हुआ दरबान चिलम के कश लगाता गया और साथ ही अमरिया से प्रश्न भी पूछता गया, "कहां का है ? इतनी दूर से यहा क्यों आया है ?" आदि-आदि ।

कारण सुनकर सरदार ने ठहाका लगाया । कहा, "अरे मूरख ! यहा तो ऐसे-ऐसे जबरदस्त कविगण आए है कि उनके मुख से गलालसिंह बापू का गुणगान सुनते ही पर्वत डोल गए हैं । उनके आगे तेरी क्या बिसात, जोगी !"

अपमान का यह घूट पीकर भी अमरिया का चेहरा ज़रा भी उतरा नही । बल्कि उसके मन में इस प्रकार का भाव था कि यह बेचारा क्या जाने कवि लोगों की बात ? अमरिया इतना नासमझ नहीं था कि आत्मश्लाघा से प्रसन्न होता । उसने भाट-चारणों को कई बार सुना था। उसके मन में इन लोगों के प्रति एक प्रकार का पूर्वाग्रह पैदा हो गया था । वह उन्हें चाटुकार कहता था ।

उसने दरबान से हंसते-हंसते सिर्फ इतना ही कहा, "अवसर मिला

तो गलाल बापू के समक्ष गाऊंगा; तब सुन लेना सरदार !"

"पता नहीं अवसर तो अब कब मिलेगा। बापू शिकार पर गए हैं, दोपहर भी ढलने को आई। आ गए तो आ गए समझना, वरना फिर रात पर बात गई जोगी !"

गांव में घुसते ही अमरिया ने मालूम कर लिया था कि बापू कहीं दूसरे गांव नहीं गए हैं और यह सूचना मिलने से उसके मन को बड़ी राहत मिली थी। उसने कहा, "मुझे कोई जल्दी नहीं है। आज नहीं तो कल सही। गीत सुनाने का मौका मिल जाए, बस वही मेरे लिए काफी है।"

"ज़रूर सुनेंगे, जोगी ! बापू से ज्यादा माताजी की गीत सुनने मे रुचि है। छोटा-बड़ा इनाम भी मिलेगा।"

अमरिया पुन: असमजस मे पड़ गया—मुझे तो मूलत: स्वप्न-गीत गाना है और यह कहता है कि माताजी भी सुनेंगी ! पूछा, "और अगर अकेले बापू को ही सुनना हो तो ?"

"अरे मूरख ! अकेले बापू को सुनाने की बात करता है ?" दरबान को इस प्रस्ताव से थोड़ा आश्चर्य भी हुआ। कहा, "पगले ! गीत तो सुनाने के लिए होता है न ? और गीत क्या किसी के कान में गाया जाता है ?" अमरिया को उत्तर के नाम पर मुस्कराते देखकर दरबान ने उपदेश दिया, "मेरी सलाह माने तो अकेले-वकेले की बात मत करना। माताजी को एसी बातों से बहुत चिढ़ है। उनको तो यदि दुराव-छिपाव की गंध भी मिल जाए तो परिणाम के विषय मे पूछ आना उस सांढनी-सवार से। उसने बापू को हाथों-हाथ पत्र देने की बात कही थी। बस, फिर क्या था ! कोठरी में पूरी तलाशी लेकर ऐसी पिटाई हुई कि द्वार पर रखे हुए अपने हथियार लेने की भी सुधि नहीं रही। सीधा साढनी पर बैठकर प्राण बचा-कर भागा।"

अमरिया को लगा कि दरबान सच कह रहा है। उसने तुरंत चर्चा का विषय बदल दिया। कहने लगा, "नहीं रे, नहीं ! मैं तो भरी सभा मे गाने को तैयार हूं, सरदार ! अकेले की बात तो सिर्फ यह सोचकर कही थी कि कोई जवानी का गीत हो तो उसे मां की उपस्थिति में थोड़े ही सुनाया जा सकता है।"

ठीक उसी क्षण पांच शिकारियों के साथ गलाल, लीलागर घोड़े पर सवार होकर आ पहुंचा। अमरा ने उठकर प्रणाम किया। पर गलाल तो घोड़े को भगाता हुआ सरपट उस पार निकल गया।

सांझ घिरने पर दरबान ने दरोगा की मार्फत अमरा का निवेदन महल में पहुंचा दिया।

इस तरफ अमरा भी दरबान की चेतावनी के अनुसार मन ही मन गीत दुहराने लगा, यह देखने के लिए कि गीत में कहीं फूला या कुवरी शब्द प्रकट रूप से तो नही आता है। एक-दो स्थलों पर स्त्री जाति का उल्लेख था। उसने उस अंश को भी बदल दिया। मन को भी सुदृढ बना लिया—इसमें मात्र घटना की ओर संकेत है! गलाल बापू के सिवाय किसी दूसरे को क्या समझ मे आना है?···बड़बड़ाया भी—'औरतो की तो इस गीत मे चोंच ही नही डूबेगी!'

फिर घड़ी-भर बाद रावले मे जाने का हुक्म मिलते ही अमरिया तार पर गंधा-बिरोजा घिसकर और सुर मिलाकर रामैया सजाने लगा। गुनगुनाते हुए आंतरिक उल्लास और तान को जगाने लगा।

स्वप्न-गीत

मुख्य द्वार से उठकर अमरिया एक सिपाही के साथ ड्योढ़ी पर जा बैठा। कुछ समय बीता होगा कि दासी आई। वह अमरिया को अपने पीछे-पीछे महल के आतरिक भाग मे ले गई।

दालान की बगल के कमरे मे शतरंज बिछी हुई थी। अमरिया शतरंज से हाथ-भर दूर खड़ा रहा। दासी इस जोगी के संकोच को भाप गई। मृदु स्वर में कहा, "इस दरी पर बैठ जाओ, कवि!"

छोटे-बड़े विभिन्न स्तर के रजवाड़ों में घूमा हुआ चतुर अमरिया, दासी की वाणी शतरंज का आसन देखकर गलाल के हृदय की शालीनता और वैभव से आधा तो स्वतः परिचित हो गया। हृदय में एक ऐसी गौरवानुभूति का स्पंदन हुआ जो स्वयं में अभूतपूर्व और अनिर्वचनीय थी।

दरी पर बैठकर अमरिया रामैये को टिटकारने लगा। दासी ने उसे कविनाम से पुकारा इस कारण से अथवा कि चारण-कवियों के समान दरी पर बैठने का सम्मानपूर्ण आमंत्रण मिला इस कारण से, पता नही, जो भी कारण रहा हो, पर अमरिया की आत्मा जैसे नाभि के बीच बैठी-बैठी कंठ की ओर अपूर्व स्वर-लहरिया प्रवाहित करने लगी। उसका अंतरतम गीत बनकर संगीत का मधुर स्वर लहरियों में फूट पड़ना चाहता था। अमरिया रामैये की धुन के साथ-साथ अपना गायक-स्वर गुनगुनाने लगा, "हा···हां···हा"

सम्मुख ही मखमली गद्दी वाला सुखासन था। सुखासन के पार्श्व में, दीवार में पत्थर की जाली थी। अमरिया समझ गया कि भीतर पियोली मां बैठेगी।

थोड़ी देर बाद गलाल आया। चूड़ीदार पायजामा, रेशमी कुरता, कुरते पर झूलता हुआ हार और आगमन के साथ ही हवा में इत्र की महक। पैरों में गुलाबी रंग की मखमली बेलबूटेदार मोजड़ी और चाल में एक निराली मस्ती और तेजी। सुरुचिपूर्ण ढंग से संवारे हुए और कानो के नीचे बल खाते हुए काले भुजंग-से केश। काली सघन मूछों के छोटे-छोटे बल! तेजस्विनी तथापि आह्लादित प्रतीत होने वाली हल्की गुलाबी आभा से सराबोर नींबू की फांक जैसी बडी-बडी आंखें। सुविशाल वक्षस्थल और उसी अनुपात में पतला कटि-प्रदेश। यह था गलाल का भव्य परिधान और व्यक्तित्व।

उठकर मुजरा (अभिवादन) करते समय गलाल बापू का प्रशस्त वक्षस्थल देखकर अमरिया के स्मृति-पट पर सहसा विद्युत्-रेखा सी राधा की यह गीत-कड़ी कौंध गई :

ऊंचो मटियार केडे पातव्गो
मने मों लाग्यो मोटियार होवे होवे
मने मों लाग्यो मोटियार !

(ऊंचे कद एवं पतली कमर वाला वह युवा पुरुष मेरे मन को भा गया है। हां, हां, मेरे मन को भा गया है!)

गलाल ने आसन ग्रहण करते हुए अमरिया से कहा, "बैठो।"

गलाल के अगल-बगल वकता भाई और रंगा के अतिरिक्त अन्य दो-चार सरदार भी आ बैठे ।

जाली में से पियोली मा ने गलाल से कहा, "जोगी से पूछो कि कोई भजन आता है या नहीं ? यदि आता हो तो बाद मे एकाध सुनाए ।"

गलाल ने मां की आज्ञा का पालन किया ।

भजन की बात सुनकर अमरिया खुश हो गया । कहता है, "शक्ति-माता वाले दादागुरु ने भी मेरी प्रशसा की है अन्नदाता !" यह याद आने पर कि गलाल को जकारा का खिताब मिला हुआ है, उसने 'अन्नदाता' शब्द का प्रयोग किया था ।

दादागुरु का नाम सुनकर पियोली मां ने आश्चर्यपूर्वक हर्ष प्रकट किया जबकि गलाल ने मां की इच्छा का अनुकरण करते हुए दादागुरु की कुशल-क्षेम आदि के समाचार पूछे । अंत मे कहा, "हा, गीत शुरू कर···तूने स्वयं बनाया है न ?"

"हां, बावजी । दादागुरु से आपके वीरत्व के समाचार सुनकर···"

गलाल ने बीच में ही रोककर कहा, "ठीक है, आरंभ कर···"

अमरिया ने रामैये के सुरों मे अपनी आत्मा घोलकर जो गीत फूलां के सम्मुख गाया था, उसे ही आरभ किया :

लालसिग रो सवा गलालेंग
तारुं धरती मोंघु नामे य जीयु

इसके बाद उसने स्थान इत्यादि की पक्तिया छोड़ दी और आगे जारी रखा .

लण्या मुगला गण्या अणगण्या
गढ ईडरियो जीत्यो जीयुं···

इस पंक्ति को पूरा करने के बाद नयी तर्ज मे और धीमे स्वर मे तुरंत दूसरी पंक्ति पकड़ ली :

कोई ए न जोयु एव जुए अमरियो

संभव है इस स्थल पर कवियो की अतिरंजित प्रशंसा की आदत के कारण गलाल की मूछो में स्मित उभरा आया हो ! पर अमरिया के अगले शब्द तो चारण कवियों से सर्वथा भिन्न प्रकार के थे । वह गा रहा था :

टेटा मा वडलो जुए, झूले वडवाईओ

चारणो की ऊची आवाज साधारणतया यदि आसमान नही तो सभा-कक्ष फाड़ डाले इतनी तीक्ष्ण तो होती ही है। पर अमरिया का स्वर हल्का और मधुर था। चेहरे का भाव भी कृत्रिम और आरोपित नही अपितु सहज और स्वाभाविक था। कवि गा रहा था

नाम गलाल बापू कामे य गुलाब जेवा
ऊड्यां ऊड्या ते ऊड्या जशे भविष्य मां

(नाम गलाल बापू और काम भी गुलाब जैसा है। उनकी कीर्ति की गंध उड़ती-उडती भविष्य की ओर उड जाएगी···)

अमरिया के मुख पर एक ऐसी दिव्य भावाभिव्यक्ति थी कि दर्शक को सहज ही कालातीत अनंतता की अनुभूति होती थी। सचमुच अमरिया युगद्रष्टा कवि की मुद्रा मे गा रहा था :

गनोरा नी घाटियो मा जोयो गलाल ने
करवट त्या बदली रहेलो दीठो मैं काल ने

(गनोरा की घाटियों में मैंने गलाल को देखा है·· मैंने साक्षात् काल को वहां करवट बदलते हुए देखा है···)

"वाह जोगी !" पियोली मां जाली की ओट से बोल पडी।

ऐसा नही प्रतीत होता था कि पियोली मा का साधुवाद अमरिया के कानों तक पहुंचा है; उसकी सपूर्ण चेतना, उसकी सारी इंद्रियां गीत की भावभूमि मे रमण कर रही थी :

बाहु देखाडयो बापु गढ रे ईडरिये
लाखों मशाले प्रगटी प्रज्ञा गनोरिए

(गलाल बापू ने ईडर के दुर्ग पर अपने बाहुबल का पराक्रम दिखाया और गनोरा-विजय में लाखों मशालो के रूप में प्रज्ञा का तेज प्रकाश प्रकट किया···)

वह बीच-बीच में रामैया बजाना बंद करके 'बाहु' शब्द का उच्चारण करते समय अपनी बाहुएं लंबी करके तथा 'प्रज्ञा' शब्द बोलते समय मस्तक पर उंगली रखकर उस स्थान को दिखाता जाता था।

वकता भाई के साथ रंगा भी बोल उठा, "वाह रे जोगी ! तू तो

सच्चा कवि है !"

आखिर अमरिया ने रामैये की धुन जगाकर अंतिम कड़ी इस प्रकार प्रस्तुत की जैसे किसी के कान मे, बल्कि मत्रमुग्ध बने हुए वक़ता भाई के कान में ही कुछ कह रहा था :

एथी अदकेरा भावि दलडाना दान नां

(और इससे भी बढ़कर उसका हृदय-दान है जो कि वह भावी पीढियों के लिए करेगा···)

दिल पर हाथ धरे हुए अमरिया की दृष्टि अंतिम शब्दो का उच्चारण करते समय जाली पर जा टिकी :

हालरडे गाशे लोको हेत रे गलाल ना !

(माताएं अपने शिशुओं को गलाल की प्रीत की लोरिया सुनाएंगी···!)

कौन जाने इस गीत और अंतिम कडी में क्या था कि इधर-उधर खड़ी दासियां ही नही अपितु अदर बैठी हुई पियोली मां भी जाने-अनजाने में उदास हो गई। गलाल भी जैसे 'प्रीत' शब्द सुनकर विषाद की धारा में प्रवाहित होने लगा।

अमरिया ने रामैया एक तरफ रखते हुए दूर खड़ी दासी से विनती की, "थोड़ा पानी···!" फिर एक ओर जाकर उसने अंजलि भरकर पानी पीया तथा बैठते हुए जैसे अपना असली काम शुरू कर रहा हो वैसे स्वर में कहा, "अब एक आखिरी गीत सुना दू, बापू ?"

रामैया हाथ मे उठाकर गलाल के सामने देखते हुए कहा, "इसमें आपकी प्रशंसा तो नही है बापू, पर किसी ने जैसे कोई स्वप्न देखा है और मैंने उस स्वप्न को इस गीत मे उतारा है···।"

गलाल को आत्म-स्तुति प्रिय नही थी, यह कहने की अपेक्षा यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि उसे अपनी प्रशंसा सुनना रुचिकर नही लगता था। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि अमरिया का प्रस्ताव सुनकर गलाल यूं सचेत हो गया जैसे कोई सुषुप्त सिह अगड़ाई लेकर उठ खड़ा होता है। उसने कहा, "जारी रखो। तुम्हारा गला सचमुच बहुत अच्छा है !"

वक़ता भाई और रंगा ने भी इस प्रशंसा मे अपना स्वर मिलाया,

"हिला दे ऐसा है बापू !"

अमरिया ने शांत स्वर मे गाना आरंभ किया :

विनवुं माता सरसती
मने खोबले धोबले वाणी दे
वातडी माड्डु समणा नी
समझु ने झाझु शु कहिये ?

(मा सरस्वती की वंदना करता हू। मां ! मुझे अंजलि भर-भरकर वाणी दे···सपने की कहानी आरंभ करता हूं। समझदार को ज़्यादा क्या कहना ?)

पहले पद की समाप्ति पर अभी रामैया के सुरो की झड़ी पूरी तरह से लगी भी न थी कि अमरिया जैसे तरतीब से बात रख रहा हो यों अभिनयपूर्वक गाने लगा :

खळभळ खळभळ महीनो कांठो
काठे फडके मां नी धजाओ
आवजजावन मनखा मेलो
ऊंट घोडा कोई पालखी वालो

(माही का किनारा कलकल ध्वनि से गूंज रहा है। तट पर मां की ध्वजाएं फहरा रही है । आने-जाने वाले मनुष्यों का मेला लगा हुआ है। कोई ऊंट पर तो कोई घोडे पर और कोई पालकीवाला है।)

पियोली की नज़रों के सम्मुख जिस प्रकार शक्ति-मदिर प्रत्यक्ष हो उठा, उसी प्रकार से संभव है गलाल की अंतर्दृष्टि के सामने भी उन तूफानी घोडों का दृश्य सजीव हो उठा !)

हणा हण घोडां !

अमरिया के हाथों में रामैया इस समय गौण बन गया था । वह अमरिया के स्वर को प्रतिध्वनित अवश्य कर रहा था, पर दूसरे ही क्षण भी अमरिया की भाति घोड़े की हिनहिनाहट सुनने के लिए कान लगाकर चुप हो जाता था :

हणां हण घोडां !
एके लीधी वनराई माथे,

(घोड हिनहिना रहा था। उसने अकेले ही अपनी हिनहिनाहट द्वारा सारा जंगल सिर पर उठा लिया था।)

उपर्युक्त पंक्ति दुहराते समय उसकी दृष्टि पश्चिम दिशा में लगी हुई थी :

एक लीधी वनराई माथे···
ने पडधो उठ्यो मही ना कांठे

(उस अकेले अश्व ने जंगल को अपनी हिनहिनाहट द्वारा सिर पर उठा लिया और उसकी हिनहिनाहट से माही का किनारा प्रतिध्वनित हो उठा।)

गलाल अब चौकन्ना हो गया। मन पर अकित माही-तट का वह सारा प्रसंग, समय और विस्मृति की परतें फेंककर आखो के समक्ष प्रत्यक्ष हो उठा। उसे संदेह भी हुआ कि शायद यह वही आदमी है जिसे उसने नदी-तट पर देखा था। मन पर अंकित उस धुंधली-सी छाप के आधार पर चेहरे को पहचानने की कोशिश भी की। पर इस समय तो अमरिया एक दूसरी ही मुद्रा मे था। रामैये की धुन जगाकर अचानक जैसे तार टूट गया हो यों मौन होकर वक़ता भाई पर दृष्टि डाले अभिनयपूर्वक गाने लगा। गाने ही नही लगा अपितु पूछने भी लगा :

केम जण्यु के
केम जण्यु के
आमने सामने
सवार ना छूपा
उरना पडधा
घोड ला वाटे उठता नों' ता ?

(क्या तुम्हें पता है कि आमने-सामने खड़े घुड़सवारों के हृदय की पुकार, हृदय की अनुगूज उन घोड़ो की राह पर प्रतिध्वनित हो रही थी?)

अमरिया यह सब एक ही सास मे कह गया। अमरिया के प्रश्न-वाचक चेहरे ने जाने-अनजाने गलाल को भी अतर्लोक में झाकने को बाध्य कर दिया।

रामैये पर उगलियो की झड़ी लगाकर अमरिया ने गीत की तर्ज़

और आवाज भी बदल दी। जैसे पहले कोई गुप्त बात कही हो और अब उसका भेद बता रहा हो ऐसे स्वर में गाने लगा :

रोझा रंगी घोडले बेठो
सवार छबीलो कामणगारो
पारेवडा शी घोडी ए दुजो
नमणो चेहरो फूल सरीखो

(नीलगाय-से घोड़े पर सजीला मनमोहक युवा पुरुष बैठा था, कबूतर के रंग-सी घोडी पर दूसरा घुड़सवार था। उसका आनत चेहरा फूल के समान सुकुमार और कोमल था।)

इस संगीत ने सब को मंत्रमुग्ध कर दिया था। किसी के पास गलाल की ओर देखने की फ़ुरसत नही थी। जाली के पीछे पियोली मा तीक्ष्ण नजर से कुमार को देखना चाहती थी, पर गलाल तो जैसे इस वक्त माही के कगारों मे खो गया था। परदे के उस पार मां को पता भी कैसे लगता कि गलाल पर इस गीत की क्या प्रतिक्रिया हो रही है ? अमरिया ने फिर आवाज़ बदली। वक़्ता भाई की ओर देखकर गाने लगा :

धीगामस्ती घोडले जूज्या
पापण ने पलकारे झाल्यां
भान भूल्या ए घोडलां वच्चे
सान भूल्या
तलवार भूली ग्यां !

(घोड़े धीगाधीगी में जूझ रहे थे। पलकों ने, बरौनियों ने उस प्रणय-विह्वल अश्व-युगल के दृश्य को पकड़ लिया। उनके हृदय में भी प्रणय-सिन्धु हहराने लगा। उन घोडो के तूफान के बीच वे दोनों भी अपना होश खो बैठे, बुद्धि खो बैठे। और तो और तलवार भी भूल गए।)

पाचेक पल के लिए अमरिया अपने रामैये सहित मौन बना रहा। चारों ओर एक सन्नाटा-सा छा गया जैसे काल को रात के पहले पहर मे प्राणियों के निद्राधीन होने से शांति मिल गई थी !

दूसरे ही क्षण जैसे कल मिली हो यों गाने लगा

ने तलवार पाछी लेता देतां
दिल डूब्या ते···
आज लगी कळ वळती नथी !
डूब्या दिल ने मंदिर मूकी
उपडी गयो ए सवार छबीलो
आज नो दन ने काल नी घडी !

(और फिर तलवार लेते-देते हुए जो हृदय डूब गया था, उसे आज तक चैन नही मिला है। उस टूटे हृदय को देवालय मे छोड़कर वह मन-मोहक घुड़सवार रवाना हो गया। वह आज तक, इस क्षण तक लौटकर नही आया···नही आया।)

अमरिया के शब्दो से ज्यादा गीत के स्वरो मे से करुणा उमड़ रही थी। गलाल का चेहरा तो बस देखते ही बनता था। अनेक प्रकार की भावनाओ के झंझावात मे न जाने वह कहां खो गया था ? पृष्ठभूमि मे पियोली मां का रुद्र चेहरा था। यह ठीक हुआ कि उसे कोई देखने वाला न था। दासिया भी गीत की धारा में डूबी हुई थी। सबने महसूस किया कि गीत समाप्त हो गया है। पर तभी अमरिया प्रशात भाव से पुनः गाने लगा :

कमल जेवी पादडी जेवो
हाथ रुपालो एक पा हतो
सामे खोल्यो हाथ राठोडी
शक्ति साथे लंबायो तो···

(एक ओर कमल के पत्ते जैसा सुकोमल सुंदर हाथ था। सामने राठौडी हाथ था जो शक्तिपूर्वक उसकी ओर बढाया गया था···)

साखी के ढग से गाने के बाद अमरिया की जिह्वा ने पुन. तेज गति पकड़ ली :

हेत घेलुडा उर तो के' छे
मा मंदिरे
सूरज शाखे
वचमा असि राखी' ती ने
आपणे तो भाई परणी बेठा !

(प्यार में पागल हृदय तो कहता है कि मां के मंदिर में, सूरज की साक्षी में, बीच में तलवार रखकर अपन तो भई ब्याह कर बैठे !)

रामैये की धुन में अंतराय पैदा करती हुई पियोली मां की तीक्ष्ण कर्णभेदी आवाज आई, "अबे ओ जोगी, बंद कर !"

रामैये की गूजती हुई प्रखर झनकार के कारण अमरिया या अन्य किसी ने भी पियोली मां की आवाज सुनी हो ऐसा नहीं लगता था। अकेले गलाल ने ही उस आवाज को सुना और तुरंत कड़ी आवाज़ में आदेश दिया, "गाते रहो, पूरा करो इस गीत को !"

पियोली मां ने बेटे के आज के मिज़ाज को शायद भांप लिया था। वे अंदर ही अंदर कुढ रही थी, घायल सर्पिनी की तरह फुंफकार रही थी।

अमरिया का कवि, अमरिया का गायक अपने चरमोत्कर्ष पर था। इस समय वह अपनी असली तान में था; गाने लगा :

समणा बापु ऊंघमां घूटया
उठे उठे एज वलोव्यां
आशा अम्मर
आंख मां आंजी
मण सवा नु काळजु राखी
परणी जणे पियर बैठां

(बापू ! स्वप्न तो वह नीद में रट रही थी। पर जागने पर भी वह उसी की याद में विलाप कर रही है। आशा अमर है। आंखों में उसी आशा का अंजन भरकर एवं सवा मन का कलेजा लिये हुए वह जैसे परिणीता होकर भी पीहर में बैठी हुई है !)

इस स्थल पर आकर अमरिया यह भी भूल गया कि वह एक कुंवरी की बात स्वप्न के रूप में गीत मे उतारकर गा रहा है। वह तो गाते-गाते जैसे प्रशंसा के नाम पर गलाल को कुवरी का परिचय ही देने लगा :

महेले बैठा वेद वांचे छे
नीरनां पाकां ताकोडी ने
रूप नी गागर छलकये जती
मही ना कांठे शाख भरी छे !

(महलों में बैठकर वेद पढ़ती है। नदी की जलराशि को एकटक देखती हुई वह रूप की गागर छलक रही है। स्वयं माही का किनारा इस दृश्य का साक्षी है।)

और जैसे बात को समेट रहा हो यों अवरोह में एक पंक्ति गलाल की ओर देखकर गाई :

हंस वदे छे टुक मां एवु

(हंस संक्षेप में यह निवेदन करता है···)

और जैसे अंतर्ज्ञान हुआ हो वैसे भावावेश मे चेतना-शून्य होकर अमरिया ने सीधा गलाल को संबोधित किया :

वीरता थकी रच्यु खच्युं
आपु नु जेवुं रूप रसीलु
एवुं पेलु वेद वाचेलु
रडियाळु जोबन जो भेगु !

(वीरता से लबालब परिपूर्ण जैसा आपका रसमय सुहाना सौंदर्य है, उसी के अनुरूप यदि वह वेदपाठी रमणीय यौवन भी उसमें मिल जाय तो···!!)

इस क्रियापद रहित वाक्य के अंत मे अमरिया के चेहरे पर के हाव-भाव और लहजे ने उस वातावरण में एक अपूर्व विस्मयबोधक चिह्न को जैसे जीवंत कर दिया था ! दूसरे ही क्षण उसने जोड़ दिया :

मानवी केरुं जीवन जाणे
धरती ऊपर
जीव्युं' तु के जीवशे पाछु

(इस पृथ्वी पर उस वियोगिनी ने मानव-जीवन कभी अतीत में जिया था कि अब फिर कभी भविष्य में जिएगी···।)

और अंत में उसने कह डाला :

समणु साचु···करशो···बापु !

(बापू ! तुम स्वप्न को सत्य करना !)

गीत समाप्त हो गया, पर उसकी प्रतिध्वनि अभी भी वातावरण में गूंज रही थी। अमरिया ने रामैया एक तरफ रख दिया। सारा वातावरण इतना विषादमय, इतना उदास बल्कि सोच-भरा हो उठा था कि···

गलाल तुरंत खड़ा हो गया। वकता भाई से कहा, "इस जोगी के ठहरने और भोजन की व्यवस्था करो," और जाते-जाते अमरिया से कहा, "इनाम के लिए मैं तुझे बाद मे बुलाऊंगा।"

न जाने क्या बात थी कि अमरिया का हृदय भी सीमाहीन विषाद की परछाइयो से घिर गया था। रामैया लेकर जैसे ही उठने लगा था, जाली के पीछे से पियोली मा का आदेश मिला, "वक़ता भाई! जोगी का बदोबस्त महल के रसोईघर मे करवा रही हू।" साथ ही दासी को हुक्म दिया, "इसे अपने पीछे-पीछे ले जा। इसे कबूतरखाने के आगे के कमरे मे ठहराना।"

वकता भाई का हृदय अनागत भय से आशंकित हो उठा। पर जिसके आगे गलाल बापू की भी नही चलती थी उस पियोली मां के हुक्म के आगे वह निरुपाय था।

वह दासी के पीछे जाते हुए अमरिया पर एक करुण दृष्टि डालने से स्वयं को नही रोक सका। एक ठंडी सांस भरने के सिवाय उसके पास दूसरा कोई उपाय भी तो न था!

अमरिया संकट में

अमरिया को रनिवास के पिछले भाग मे ले जाने की आज्ञा देने के बाद पियोली मां ने अलमारी में से एक गोपनीय पत्र निकाला। वह एक चौकी खीचकर उस पर बैठ गईं और फानूस के प्रकाश मे उस पत्र को पढ़ने लगी:

'स्वामीनाथ!

यह संबोधन पढकर आपको आश्चर्य तो अवश्य होगा कि बिना विवाह किए ही यह कौन है जो मुझे स्वामीनाथ कहती है! पर मैं तो उस दिन शक्ति-मंदिर के प्रागण मे जिस क्षण तलवार का आदान-प्रदान हुआ, उसी क्षण से ही शक्ति-मा की साक्षी मे आपसे विवाह कर बैठी हूं। अब तो महज़ शास्त्रीय रीति से विवाह होना शेष है और यह विधि कब

और कहां संपन्न होगी इसी की रटन लगी हुई है !

'यू तो बिना किसी परिचय के जब से चार आंखें हुईं, उसी क्षण से आपका वरण कर चुकी हूं। पर बाद मे जब से आपका नाम-पता मिला और यह जानकारी मिली कि आपने अपने बाहुबल द्वारा ईडर का सुप्रसिद्ध दुर्ग जीता है एवं अपने अद्‌भुत बुद्धि-चातुर्य द्वारा गनोरा मे पचास हज़ार मुगल-सेना को मौत के घाट उतार दिया है, तब से मैं यह सोचकर अपने नारी-जीवन को धन्य मानने लगी हूं कि मुझे आप जैसा धीर-वीर और तेजस्वी पति मिला है। मैने एक सूर्य-पुरुष का वरण किया है। सच तो यह है कि आपसे मन ही मन विवाह करके मै निश्चित हूं पर हृदय ही तो है। वह नही मानता। यह हठीला हृदय तृप्त होकर आपके दर्शन करना चाहता है, मनभर कर ढेर सारी बाते करना चाहता है। आप कब दर्शन देंगे ? मेरे देवता ! संसार के रिवाज के अनुसार विवाह भी तो करना ही पड़ेगा न ! आपके उत्तर के बाद मैं अपने गुरुजनो के आगे यह राज़ प्रकट करना चाहती हूं। मैं शक्ति मा से आपकी कुशल-क्षेम के लिए अहर्निश प्रार्थना करती हूं—

आपकी दर्शनाभिलाषी
फूला का आलिगन।'

पत्र समाप्त होते ही अंतिम शब्द 'आलिगन' पढ़कर पियोली मां क्रोधावेश के कारण दांत पीसने लगी। पियोली को अपनी लाई हुई पुत्र-वधू की प्रतीक्षा थी। वह इस प्रकार से आई हुई या गलाल द्वारा लाई हुई बहू नही चाहती थी। वह तो गलाल के विषय में भी यही सोचती थी कि वह क्या समझेगा कुल-परंपरा और ठिकाने की बात ? अभी तो उसने आयु के बीस वर्ष भी पूरे नही किए हैं !

उस दिन अमरिया को हंस-दूत के रूप मे बिदा करने के बाद फूला के मन में तरह-तरह के विचार उत्पन्न हुए। यह विचार भी मन में आया अवश्य था कि अलीगढ के इस कुमार की चर्चा मां से की जाए, पर उसने महसूस किया कि यह बात मां के अपने वश की नहीं हैं। और यदि मा इस प्रस्ताव को पति के सम्मुख रख भी देती तो डर यह था कि बेटी के विवाह-योग्य हो जाने का खयाल आते ही शराबी

पिता स्वयं ही अपने ढंग से विवाह कराने की ज़िद्द पकड़ सकता था।

फूलां के मन में यह विचार भी उठा कि अमरिया को ही पत्र लिख-कर दिया होता तो शायद बेहतर रहता। पर इस प्रकार का कदम उठाना एक राजकुमारी के लिए दुस्साहस होता और इसीलिए वह हिचकिचाई भी थी। गलाल के प्रति मन-वचन-कर्म से समर्पित बावली फूलां को तो इस बात की भी चिंता न थी कि गलाल उसके साथ विवाह करेगा भी या नहीं! उसे तो बस गलाल के कानों में केवल यह शब्द डालने थे : 'मैं तो तेरे साथ विवाह कर बैठी हूं!'

फूलां ने एक-दो बार पत्र लिखा और फाड़ डाला। पर एक दिन मन-मस्तिष्क में साहस बटोरकर उसने सदा को अपने विश्वास में लिया और उसके ज़रिये एक विश्वासी और सुयोग्य सांढनी-सवार को पत्र देकर कहलाया कि ठाकरडा ग्राम के अमरिया को यह पत्र देना और अगर वह न मिले तो स्वयं अलीगढ जाना और सीधे गलाल बापू के हाथों में यह पत्र देना। सवार को पहले से ही अलीगढ़ तक का राहखर्च और मनमाना इनाम भी दे दिया।

सवार ने अमरिया के गाव जाकर उसकी खोज अवश्य की, पर मन लगाकर उसका पीछा नही किया। वह स्वयं ही सीधा अलीगढ़ पहुंचा और वहा से पता मालूम कर अमरिया के सियाड पहुंचने के पहले ही वहां पहुंच गया।

पर वह बेचारा हतभाग्य निकला। उस समय गलाल उदयपुर गया हुआ था और ड्योढ़ी पर के सिपाही के पास से यह सूचना मिलते ही कि कोई ऐसा आदमी आया है जो गलाल बापू से ही गुप्त प्रयोजन हेतु मिलना चाहता है, पियोली मा ने साढनी-सवार को ड्योढी में बुलवाया। दासी की मार्फत कई सवाल किए लेकिन वह उनका संतोषजनक उत्तर नहीं दे सका। दरअसल वह नाम-स्थान बताने की स्थिति में ही कहां था! अंततः पियोली मां ने दरोगा को आदेश देकर उसे कोठरी में डल-वाया और उसकी तलाशी करवाई। तलाश करने पर यह पत्र मिला और मारपीट रूपी चौदहवें रत्न के प्रताप से उसने कडाणा का नाम स्थान व आने का गोपनीय प्रयोजन आदि सब-कुछ उगल दिया।

फूलां का पत्र पढकर उस दिन पियोली मां के मुख से जैसे तिरस्कार-पूर्ण शब्द निकले थे, वैसे ही शब्द आज भी फूट पड़े, "दूर हो री बला। यह कहां से मेरे बेटे के पीछे पड़ गई है ! कडाणा गद्दीधारी ठिकाना है। इससे क्या फर्क पड़ता है, आखिर राज्य तो लुटेरो का है ! नही, नहीं, मुझे तो अपना राजस्थान छोड़कर किसी दूसरे प्रदेश में जाना ही नहीं है ! यवनो के विरोध में राजस्थान उठा, दक्षिण जागा, पर गुजरात तो···! गलाल भी कहता था कि गुजरात के राजाओं ने मेवाड़ की सहायता के लिए एक भी सैनिक दिया हो ऐसा नही सुना···!" तिरस्कार-पूर्वक पियोली मां बडबडाई, "ये कैसे राजपूत हैं ?"

कबूतरखाने की बगलवाली कोठरी में घुसते ही अमरिया को आभास हुआ कि जैसे वह कैद में पड़ा है। बाहर निकलने का कोई रास्ता ही न था। तीन तरफ ऊंचा-ऊंचा परकोटा था तो एक तरफ रनिवास था। रनिवास के इस पिछले भाग मे से आगे जाने के लिए महल तथा परकोटे के बीच एक एक मार्ग था जो कि सीधा ड्योढी पर पहुंचता था। रसोईघर के बाहर बैठकर भोजन करने के उपरात तर्क-वितर्क में उलझे हुए अमरिया ने चिलम भरी और कोठरी से बाहर आया। सग-मरमर से निर्मित चबूतरे वाले कबूतरखाने की सीढ़ियो पर बैठकर वह चिलम फूंकने लगा। अभी उसगे आधी तंबाकू भी समाप्त नही की थी कि दासी उसे बुलाने आई। अमरिया दालान की जाली के आगे जा खड़ा हुआ।

जाली मे से एक सख्त और कठोर आवाज़ सुनाई दी, हालांकि वह एक स्त्री की आवाज थी, "देख जोगी, जो भी सवाल ूछा जाए उसका सही-सही जवाब देना, वरना याद रखना कि उस परकोटे की खिड़की खोलकर सिर्फ़ एक धक्का देने की जरूरत है और तू सीधा सौ हाथ नीचे कंदरा में होगा ! अच्छा, अब सच-सच बोल दे कि कहां से आया है, किसने भेजा है और भेजने वाले ने क्या काम सौंपा है ?"

भयभीत अमरिया शुरू-शुरू मे तो यही जवाब देता रहा कि "दादा-गुरु ने गीत सुनकर मुझे बापू को सुनाने के लिए भेजा है।"

क्रुद्ध पियोली मां ने फूलां का पत्र खोलकर उसमे से दो-चार रेखां-

कित वाक्यों की ओर अमरिया का ध्यान आकर्षित किया और उसके स्वप्न-गीत से उनकी तुलना कर दिखाई और कहा, "बोल रे कुत्ते ! पत्र-लेखिका जो बात लिखती है वह तेरे गीत मे कैसे आ गई ?"

अमरिया समझ गया । जिस बात का उसे पहले से अदेशा था, वही होकर रही। उसे लगा, जरूर कडाणा से नारियल भेजा गया होगा और उसके साथ यह पत्र भी भेजा गया होगा !

यों तो उसके लिए हिचकिचाने या डरने की कोई बात न थी । पर उसने अनुभव किया कि एक राजपुत्री सीधे ही किसी से प्रेम-संबंध स्थापित कर बैठे यह बात दुनिया के लिए तो विपरीत ही थी । और फिर ऊपर से यह रहस्य खुलते ही कि उस कुवरी ने उस कुंवर के पास गीत सुनाने के लिए जोगी भेजा है, कुवरी की सीमाहीन धृष्टता प्रकट होती थी ।

अमरिया गीत के विषय में सही बात न बोलकर टालमटोल करने लगा, "मुझे तो माजी सा'ब ! एक दासी ने सपने की बात कही थी ।"

"ठीक है, दासी ने कही थी पर दासी है तो कडाणा की न !" पियोली की आवाज में व्यंग्यात्मक परिहास था, "सच्ची बात कह दे । तू कडाणा की कुंवरी को ही दासी मानता है, सच है न ?"

"नही माजी सा'ब !"

"जा दासी । इस सूअर को पिछली खिड़की खोलकर मृत्यु की खोह दिखा ला, फिर भी न माने तो गारासिंग को बुला ला ।"

दासी ने आगे की ओर डग भरते हुए कहा, "चल जोगी" और फिर हाथ और सिर हिलाकर कहा, "अभी कोई तुझे फेंकने वाला नही है। अभी तो सिर्फ यह दिखाना है कि मृत्यु की खोह कैसी है । चल जल्दी !"

यू भी दासी के साथ गए बिना छुटकारा न था । पर भय-विकंपित अमरिया के मन मे पैर उठाते समय आशा बंधी थी । पहली बात तो यह कि दासी कुछ दयालु प्रतीत होती थी और इस कारण यह आशा जीवित थी यदि उसके मन में राम होगा तो इस संकट से मुक्ति का कोई उपाय भी दिखा देगी ।

रनिवास के दालान और परकोटे के बीच मामूली दूरी थी । थोड़ी

दूर जाकर दासी ने इस याचक पर तरस खाते हुए कहा, "मान जा जोगी, वरना आज तेरी खैर नही है।"

"पर मै क्या मानू ? मानने जैसा कुछ हो तब न !"

दासी को यह आदमी मूर्ख प्रतीत हुआ। अब तो सारी बात दीपक के प्रकाश-सी खुली हुई थी। उसे यही समझ मे नही आ रहा था कि यह जोगी मानता क्यो नही है !

दासी के लिए अमरिया की मन.स्थिति समझना संभव न था। यह तो खुद अमरिया भी समझ गया था कि रहस्य अब रहस्य नही रहा है। पर किसी रहस्य का प्रकट हो जाना एक बात है और स्वयं अपनी जबान से उस रहस्य को कबूल कर लेना दूसरी बात है। फूला ने उस पर जो विश्वास किया था उसे भग कर, वह यह कैसे स्वीकार कर सकता था कि कडाणा की राजकुमारी ने ही उसे स्वप्न-कथा सुनाई थी; उसी ने उससे गीत लिखवाया था; उसी के कहने से उसने गीत-धारा द्वारा गलाल बापू तक उस स्वप्न-कथा को पहुंचाने का बीड़ा उठाया था।

अमरिया की 'ना' सुनकर उस अधेड़ उम्र की दासी को वास्तव मे दया आ गई। बोली, "तेरी यह 'ना' तब तक ही है जब तक तू गारा-सिग को देख नही लेता ! वह राक्षसों का भी राक्षस है। माजी सा'ब यदि आधा हुक्म देगी तो वह पूरा हुक्म बजाएगा। वे कहेगी कि खिड़की के सामने ले जाकर उस जोगी को डराना-धमकाना। मगर गारासिग ऐसा है कि वह तुझे खोह मे धकेलने मे देर नही करेगा। मान जा और सब कुछ सच-सच बता दे।"

"लेकिन मैं क्या मानू बहन ?" अमरिया सोच में डूबा हुआ कह रहा था।

"कह दे, कुवरी के कहने से गीत भी लिखा है और उसी के कहने से बापू को गीत सुनाने आया हूं।"

"अच्छा !" अमरिया असमंजस मे बड़बड़ाया।

"अरे, अच्छा-अच्छा क्या लगा रखी है !" अब दासी भी अमरिया पर झुंझलाहट अनुभव कर रही थी, "सारी बात दीपक की तरह खुल तो गई है !"

खिड़की खोलकर दासी ने कहा, "नीचे नजर डालकर ठीक से देख ले। अंधेरे की नहर जैसी इस खोह को देखकर यह न समझना कि यह कम गहरी है। सिर डालकर झांक तो सही!"

"झुककर देख ली है बहन! ऐसी खाइयो का अरावली मे अभाव थोड़े ही है?" और अमरिया ने इसके बाद खिडकी से झाककर देखा। आंखों पर बल पड़ने पर अनुभव हुआ कि दासी ने तो इसे अंधेरे की नहर ही कहा था, पर अमरिया को तो यह अंधेरे की अतल खान प्रतीत हुई। भीतर गहराइयों मे से उल्लू की आवाज उठ रही हो ऐसा आभास भी हुआ।

"चल अब," दासी ने खिडकी बंद कर आडा भिड़ाया और पीठ फेर ली। लौटते हुए कहने लगी, "कह देना कि सारी बात स्वीकार करता हूं मांजी सा'ब!"

अब तक तो अमरिया के मन में केवल भय था, पर खोह मे नजर डालने के बाद तो उसे लगा कि जैसे वह साक्षात् मृत्यु के चंगुल में फस गया है। उसे लगा कि मृत्यु की काली परछाइयां उसे घेरती जा रही हैं।

फिर भी यमद्वार की ओर बढ़ते हुए अमरिया का एक पग 'हा' कहता था तो दूसरा जैसे उसे धिक्कार रहा था—'बस न अमरिया! तेरा विश्वास इतना ही है न? पर बात तो अब छुपी हुई नही है, दिन के उजाले-सी स्पष्ट है। बात छुपने का तो अब प्रश्न ही नहीं उठता अमरिया! तेरे कहने से फूलकुंवर की आबरू की बात खुल जाएगी ऐसी बात भी नही है। प्रश्न तो केवल अब तेरा है। तुझ पर किए गए फूलकुवर के विश्वास का है! क्या तू विश्वासघात करेगा?'

और अब पियोली ने फिर प्रश्न किया, "देख आया न मृत्यु की खोह? अब सच्ची-सच्ची बात कह दे वरना..."

परंतु अमरिया ने पहले से भी अधिक आत्मविश्वास के साथ उत्तर दिया, "सच्ची बात ही तो कह रहा हूं मांजी सा'ब! कडाणा की दासी ने मुझे सपने की बात कही और मुझे वह भा गई। मैंने उस पर गीत लिखा और दादागुरु को सुनाया। दादागुरु ने आज्ञा दी कि सियाड जाकर यह गीत गलालसिंह बापू को सुना आ।"

"अब भी वही पुरानी बात कह रहा है, कुत्ते !" पियोली मां ने चीखकर कहा। उनके क्रोध का पार न था। वह उसे ऐसी नजरो से देख रही थी जैसे कच्चा चबा जाएगी।

"आपके पैरो पड़ता हू माजी सा'ब ! मुझसे ज्यादा मत पूछो।" अमरिया ने जाली के सम्मुख घुटने टेक दिए। वह गिडगिडा रहा था।

पियोली को दया आ गई।

दया आ गई ऐसा कहने की अपेक्षा मूल रहस्य की बात यह थी कि अमरिया से कोई नयी सूचना तो मिलनी न थी। बल्कि व्यर्थ ही समय नष्ट हो रहा था। मा को भरोसा था कि गलाल का आदमी अब आने ही वाला है।

परेशान और व्यग्र पियोली मा ने दासी को हुक्म दिया, "गारासिंग को बुला ला। साथ लेकर आना।" अमरिया को चेतावनी दी, "मनुष्य की जाति यू समझाने से थोड़े ही मानती है? आने दे तू गारा को, हरामखोर !"

वकता भाई जिस प्रकार गलाल का दाहिना हाथ था वैसे ही गारासिह पियोली मा का दाहिना हाथ था। महल के रक्षण की जिम्मेदारी गारासिंग के कंधो पर थी। गारासिंग था भी घमंडी। बलवान भी इतना कि किसी से डरता नही था। अलीगढ मे तो गलाल से भी नही डरता था, बल्कि गलाल उससे दबता था। पर युद्ध से लौटने के बाद गलाल के मन से गारासिंग के बल का आतंक यो अदृश्य हो गया था जैसे मोम चढ़े कपड़े पर से पानी की बूद फिसल जाती है। गलाल अपनी वीरता का बडा जोरदार डका बजा आया था, परतु जहा तक गारासिंग का सवाल था वह अब भी गलाल को बच्चा ही समझता था।

लेकिन महीने-भर पहले सियाड में दशहरा का प्रथम महोत्सव मनाते समय गारासिंग को नही, अपितु पियोली मा भी गलाल के नये व्यक्तित्व का पूर्ण परिचय मिल गया था। देवी को बलि चढाने के लिए गलाल ने जो भैसा पसंद किया था। वह इतना हृष्टपुष्ट था कि स्वयं पियोली मां ने गलाल से कहा था, "एक ही झटके मे ऐसा भैसा किसी से भी नही कटेगा, बापू। हम लोग जैसा भैसा अलीगढ मे चढाते थे वैसा ही शिशु-

भैंसा ले आओ।" पर गलाल ने मां की सलाह नहीं मानी थी।

भैंसे से होड लगाए ऐसा बलवान गारासिंग भी अंदर से घबरा रहा था—'यदि बापू ने मुझे ही भैंसे की बलि चढाने का आदेश दे दिया तो? ऐसे मजबूत भैंसे को कोई भी एक झटके मे नही काट सकता!'

ब्राह्मण ने देवी के सम्मुख रखे हुए पूजा के खड्ग का पूजन समाप्त करने के बाद आह्वान किया, "उठाओ खड्ग, भैंसे का बध कौन करेगा?" सबके मन मे एक ही नाम था और वह था गारासिंग। कितनों ही ने तो उसकी तरफ देखा भी सही। कितने ही बापू के सामने यह देखने के लिए ताकते रहे कि वे किसे आज्ञा देते है!

गलाल झट से पूजा मे से उठ खड़ा हुआ। कई लोगों के कलेजे भय से कांपने लगे। पियोली मां तो चिंता से इस कदर व्याकुल हो उठी कि···

पर गलाल ने तो उसी पल खड्ग उठाकर 'जय-भवानी' के जयनाद के साथ दात कसते हुए उस भयंकर भैंसे के कंधे पर खड्ग-प्रहार किया और भैंसे का मस्तक कद्दू की तरह कटकर दूर जा गिरा।

इस दृश्य को देखते ही आसपास की टेकरियों पर एकत्रित लोगों की भीड़ ने और गलाल की छोटी-सी सेना ने तुमुल हर्षनाद और जयजयकार द्वारा गगन गुजा दिया।

पियोली मां और गारासिंग सहित सब के सब गलाल का यह बेजोड़ बल-विक्रम देखकर दातों तले अंगुली दबाने लगे। गारासिंग ने ऐसा भैंसा कभी भी नही मारा था और इसलिए उसके मन मे इस वक्त यह शंका उठी कि कदाचित् भैंसे का कंधा काफी कठोर न भी हो। पर एक रोज उसने राणाजी के लिए शिकार हेतु वन मे बंधे हुए ऐसे ही एक भैंसे पर तलवार से वार कर अपनी परीक्षा भी कर ली थी। तीन वार के बाद ही वह भैंसे का सिर धड़ से जुदा कर सका था। बस, उस दिन से गारासिंग गलाल का आदर करने लगा था और साथ ही साथ उससे डरने भी लगा था।

अमरिया ने दालान के आर-पार धुंधले उजाले मे से गारासिंग को आते हुए देखा। जितनी ऊंचाई थी उतना ही हृष्टपुष्ट! बीच में से विभक्त कानों की ओर कंघी की हुई काली दाढी इतनी सघन थी कि उस धुंधले

प्रकाश में उसका संपूर्ण चेहरा काले भुजंग-सा एकदम स्याह प्रतीत होता था। जब वह कुछ नजदीक आया तब भी अमरिया को केवल उसकी नाक का सिरा और थोड़ा-सा कपाल ही दिखाई दिया। यद्यपि आखे इस मूर्तिमान् कालिमा से पृथक लगती थी तथापि वे अमरिया को उस एकदम काली दाढ़ी से भी ज्यादा भयानक लग रही थी। गारासिंग की कमर पर लटकी हुई कटार भी इतनी चौड़ी प्रतीत होती थी कि अमरिया को अचानक कसाई की याद आ गई।

अमरिया की ओर क्रूर दृष्टि से देखते हुए गारासिंग ने धीमी गति से दरवाजे मे प्रवेश किया।

कहना कठिन है कि अमरिया के कान भय से बहरे हो गए थे अथवा मेवाडी बोली मे मंद स्वर से बातचीत के कारण कुछ सुनाई नही पड़ रहा था। कारण जो भी रहा हो, पर यह स्पष्ट था कि उसकी चेतना जड़ हो गई थी। उसे अपने इर्द-गिर्द के वातावरण का कुछ भी ज्ञान न रहा। उसे बिलकुल समझ मे नही आ रहा था कि यह सब-कुछ क्या घटित हो रहा है? आसन्न मृत्यु-बोध ने उसकी चेतना को निष्प्राण कर दिया था।

द्वार में से बाहर आते हुए गारासिंग ने भारी और क्रूर आवाज में अमरिया को हुक्म दिया, "चल बे सूअर, मेरे पीछे-पीछे आ!"

हुक्म सुनते ही अमरिया के पैरों ने जवाब दे दिया। न तो वह गारासिंग के पीछे-पीछे कदम उठा सका और न ही गिड़गिड़ा सका। गारासिंग रुकता तब तो अमरिया गिडगिडाता न! उसे अपने पीछे-पीछे आने का हुक्म देकर वह तो सीधा आगे बढ गया। थोड़ी दूर जाकर पीछे मुड़कर देखा तो अमरिया मूर्तिवत वही खडा था। गारासिंग दहाड़ा, "चल रे उल्लू! बहरा है क्या?"

दांतों के बीच से निकली हुई गारासिंग की यह दहाड़ इतनी भंयकर थी कि एकबारगी तो पत्थर भी उस आज्ञा के अधीन हो जाता, फिर बेचारा अमरिया तो अभी भी सुन-समझ सकता था! वह उस गर्जना को अनसुनी कैसे करता?

गारासिंग का अनुसरण किए बिना छुटकारा कहां था? उसके पीछे पैर उठाने में ही उसकी मुक्ति थी! और वह यंत्रचालित-सा चलने लगा··

जीवन-दान

पियोली मा का सदेह सही निकला।

जिस वक्त गारासिंग अमरिया को लेकर निकला, भवन के आगे गलाल का सेवक दासी से कह रहा था, "जोगी को भेजो, बापू बुला रहे है।"

दासी ने अंदर आकर पियोली मा से कहा। पियोली क्रोध के कारण कुछ समय तक तो बोल भी न सकी। उसे कुछ सूझता ही न था कि क्या जवाब दे। अत मे सहज स्वर मे कहा, "उससे कहो कि पीछे से जोगी को बुला ले जा। कहना कि कबूतरखाने के पास वाले कमरे में होगा।"

गलाल का सेवक पीछे के रास्ते से होकर कबूतरखाने की बगल के पांच-सात कमरों मे घूम आया। एक कमरे मे जोगी का सामान और रामैया देखकर उसे लगा कि यहीं कही आस पास होगा, पर चारो ओर तलाश करने के बावजूद वह नहीं मिला। उसने लौटकर पुनः डरते-डरते दासी से कहा, "जोगी तो कही पर भी दिखाई नही पड रहा है।"

इस बार घायल सिंहनी के समान पियोली ने झुंझलाहट प्रकट की, "कही चला गया होगा। दासियां यहां जोगी की रखवाली रखने के लिए थोड़े ही बैठी है!"

बेचारा सेवक इस उत्तर से सकपका गया। उसने डरते-डरते पिछले भाग का एक और चक्कर काटा। पर अमरिया वहा होता तब दिखाई पड़ता न? आखिरकार हारकर वह लौट आया।

गलाल का आवास-कक्ष महल के अग्रभाग में था। जिस समय सेवक पहुंचा, वह अमरिया के गीत को स्मरण करता हुआ टहल रहा था। सेवक ने आते ही सूचना दी, "जोगी तो नही है, बापू!"

गलाल के पैर ही नही अपितु धमनियों का रक्त-प्रवाह तक रुक गया। केवल इतना-भर बोल सका 'हूं?'

सेवक ने अपनी खोज और माजी सा'ब का जवाब आदि सभी बातें कह सुनाईं।

"दरअसल गलाल को उसी समय से शका-कुशंका होने लगी थी जब वक़ता भाई ने उसे समाचार दिया था कि मांजी सा'ब ने जोगी को

कबूतरखाने के पास वाले कमरे में ठहराने को कहा है और वह उसे भोजन भी रसोईघर से ही देंगी। कुशंका होने पर भी गलाल ने केवल यही सोचा था कि मा को इस स्वप्नगीत के कारण कुछ सदेह हो गया लगता है और इसीलिए जोगी को बुलवाकर शायद कुछ जाच करना चाहती है। पर सेवक से यह सूचना मिलने पर कि जोगी गायब है, उसके क्रोध की सीमा न रही। उसने सेवक को आज्ञा दी, "जाओ, वकता भाई को बुलाओ।"

गलाल ने अपनी उन्नीस साल की उम्र मे आज पहली बार महसूस किया था कि नारी क्या होती है और अनुराग किसे कहते है ? डेढ वर्ष पहले देखी हुई वह नजाकत-भरी देहलता जैसे आज भी लोह-चुम्बक बनकर उसके सामने खडी थी ! जोगी का वह संपूर्ण गीत जितना मनमोहक था उतना ही संवेदनशील भी लगा था। और उसमे भी विशेषकर ये शब्द तो उसके अतरतम की गहराइयों को छू गए थे कि "हम तो भई विवाह कर बैठे !" ये शब्द तो गलाल के हृदय-पट मे पत्थर की लकीर की तरह स्थायी रूप से अंकित हो गए थे। उसने मन ही मन मां के विरुद्ध निर्णय लिया—'जोगी के पास से इस कुंवरी का नाम-पता मिल जाने पर उससे विवाह किए बगैर नही रहूंगा। फिर भले ही मा नाराज़ होकर अलीगढ चली जाएं या गुमानसिंह को लेकर उसकी जागीर पर चली जाएं !...' पर यहां तो स्वयं जोगी ही लापता था।

जिस समय पियोली मा ने जोगी को उसके साथ न जाने दिया, उसी वक्त वकता भाई तो समझ गया था कि हो न हो सपने वाले गीत मे कुछ रहस्य है और पियोली मा को उस रहस्य का आभास मिल गया लगता है। अतः वे निश्चित रूप से जोगी को अपने शिकजे में कसेंगी ही। वह स्वयं भी गीत के आधार पर इतना तो समझ गया था कि किसी कुवरी के साथ बापू ने तलवार का आदान-प्रदान किया है। संभव है बापू ने उस कुवरी को किसी दुष्ट के पंजे से अथवा किसी विपत्ति से उबारा होगा। ऐसा हो सकता है।

कुछ भी हो, वक़ता भाई यह जानता था कि पियोली मा को यह बात बिलकुल पसंद नही आएगी कि कोई राजकुमारी मन ही मन बापू से ब्याह कर बैठे। और इसीलिए उसने दूरदर्शिता का परिचय देते हुए

जोगी के ठहरने की बात बापू के कानों में डाल दी थी। उस वक्त मन में किंचित-सा यह प्रश्न भी उठा था कि गलाल बापू इस स्वप्न-कथा की चर्चा मुझसे करते है या नही ?

क्रोधावेश मे चक्कर काटते हुए गलाल ने वकता भाई को देखते ही कहा, "जोगी लापता है। महल मे जाकर पता लगाओ कि क्या बात है ?"

"जो आज्ञा" कहकर विचारमग्न वकता भाई ने पैर बढाए।

"अरे हां !" गलाल की आवाज़ थी। वकता भाई वापस मुड़ा। गलाल ने उसके साथ थोडी चर्चा की और कहा, "यदि जोगी न मिले तो गारा की खोज करो।"

महल के पिछवाड़े मे जोगी का सामान वगैरह देखने के बाद वक़ता भाई ने न तो दासियों से कोई पूछताछ की और न पियोली मां को छेड़ा। वह तो सीधा गारासिंग के निवास-स्थान पर पहुचा। सिपाहियो से सूचना मिली कि गारासिग थोड़ी देर पहले मांजी सा'ब के पास गया है। एक सिपाही ने तो बल्कि यह सूचना भी दी कि थोड़ी देर पहले ही मैंने उसे एक आदमी के साथ उस ओर के परकोटे की तरफ जाते देखा है।

समाप्त ! वकता भाई समझ गया। संभव है गुप्तद्वार से बाहर निकल कर जोगी को सीधे खोह मे ही धकेल दिया हो !

भारी मन से वापस लौटकर वकता भाई ने यह सारी बात गलाल को बताई। गुप्तद्वार और गारासिंग—ये दो नाम एकसाथ सुनकर गलाल को एक घटना याद आ गई। जब गारा शुरू-शुरू मे यहा आया था, तब महल का एक सेवक खो गया था। बाद में वकता भाई ने सप्रमाण गलाल को सूचना दी थी कि एक दासी के प्रश्न को लेकर उस सेवक की गारासिंह से अनबन थी और गारासिंह ने ही उस आदमी को गायब कर दिया था। गलाल ने इसकी सूचना पियोली मा को भी दी थी, पर उन्होने उसे अनसुना कर दिया था। बल्कि ऊपर से यह कहकर उस बात के महत्त्व को घटा दिया था, "बापू ! तुम ऐसी छोटी-छोटी बातों को लेकर फिक्र मत करो। यदि गारासिंग का ऐसा एकछत्र रौब न हो तो महल का दबदबा निरापद नही रहेगा !"

उक्त घटना को स्मरण कर, उत्तेजित गलाल सीधा पियोली मां के पास पहुंचा। मन पर संयम रखते हुए जैसे मां को नयी बात की सूचना दे रहा हो यों कहा, "मा, जोगी का तो कही भी पता नही लग रहा है।"

गलाल की आहट पाकर मां ने पहले से ही संयम साध लिया था। कहने लगी, "चला गया होगा, बापू।" फिर गलाल को चुप देखकर आगे कहा, "एक तो याचक-वर्ग का और फिर ऊपर से कविता करता है। ऐसे लोगों के दिमाग का कोई ठिकाना नही होता।" पियोली ने जान-बूझ कर बैठने के लिए आसन नही दिया। इसके पीछे अभिप्राय यह था कि खड़े-खडे ही बात करके वह चला जाए।

"पर मा! मुझे ऐसा विश्वास नही होता कि वह चला गया होगा।"

"कैसे बापू?" मा के हास्य मे एकदम स्पष्ट सूचना थी—'तू तो जैसे बहुत समझता है न?'

पर गलाल ने तत्क्षण दीपक के समान स्पष्ट सूक्ति कही, "मां, यदि राजपूत का बेटा तलवार भूल सकता है, तो जोगी का बेटा अपना रामैया भूल सकता है!"

पियोली का मुह यो उतर गया, जैसे वह अपराध करती हुई रंगे हाथो पकड ली गई है। बोली, पर उनके शब्दो मे भी आत्मविश्वास का अभाव था, "ऐसा! अपना बाजा भी साथ नही ले गया!" उन्हे मन ही मन गारासिंग पर क्रोध भी आया। वह सोच रही थीं—'निकाल देने का मतलब यह थोड़े ही था कि उसे अपनी चीज़े भी न ले जाने दी जाएं? भयवश यदि जोगी अपना सामान भूल भी गया तो क्या हुआ? कम से कम हमे तो उसे याद दिलाना चाहिए था न?'

जवाब न सूझने पर पियोली मा ने बात बदली, "तो फिर वह नालायक जंगल मे चला गया होगा। इस याचक के लिए तुम क्यो व्यर्थ मे हैरान हो रहे हो!" वस्तुतः पियोली मा, यहा आने के बाद से गलाल के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने लगी थी।

"नही मां, मुझे शक है कि जोगी के जीवन के साथ खिलवाड़ किया गया है!"

मा के पास अब गुस्सा प्रकट करने के सिवाय अन्य कोई चारा न

था। गुस्से के दौरान वह मेवाडी बोली बोलने लगी। कहा, "कुमार, तुम भी कैसी पागल-जैसी बात करते हो ? जोगी के पास आखिर ऐसी कौन-सी जागीर थी या खजाना था कि उसके जीवन के साथ···।"

"गारा भी महल मे नही है मा !"

"अरे, तो इसमे क्या है ? कही गया होगा और गारा न भी हो तो तुम्हें इससे क्या काम है ?" मा ने मुस्कुराने की कोशिश की।

गलाल समझ गया। उत्तर के नाम पर टेढी बातों के अलावा मा से कोई जानकारी नही मिलेगी। नाराजगी और रोष के साथ उसने मा से पीठ फेरी। वह बडबडा रहा था, "ठीक है, आज मैं उस गारा की खबर लेता हूं !" गलाल को भी मेवाडी जबान खूब आती थी।

"बात सुनो, बापू !" मा भौचक्की सी सहसा खड़ो हो गई।

गलाल भी थम गया।

कमर पर दोनो हाथ टिकाए गलाल के सामने एकटक आग्नेय दृष्टि से देखती हुई मां कह रही थी, "सियाड़ के जगल की हवा तुम्हें भी लग गई है बापू ?"

"कैसे !"

"देखो न ! मां के सामने किस तरह से बात कर रहे हो ?"

इन शब्दो के साथ ही गलाल के होठो पर जैसे लिहाज-मर्यादा की डाट लग गई ! वह बिना कुछ कहे रोषभरी चाल से चला गया। उसका इस ओर भी ध्यान नही गया कि पीछे से पियोली मा कुछ कह रही है।

आवास पर पहुचते ही गलाल ने वकता भाई को आदेश दिया, "जाओ, गारा आ गया हो तो उसे ले आओ और न आया हो तो वहीं बैठकर उसकी प्रतीक्षा करो। उसे साथ लाए बगैर मत लौटना।"

जीना उतरते समल वकता भाई की पीठ के पीछे गलाल बड़बड़ाया, "आज उसकी खैर नही है !" और इसके साथ ही जाने-अनजाने उसकी नजर खूटी पर लटकती हुई तलवार पर जा पड़ी।

परकोटे की उस खिडकी की ओर जाने के स्थान पर गारासिंग सीधा दालान मे से होकर जा रहा था। अतः अमरिया को लगा कि जीवन की आशा अभी पूर्णतया निःशेष नही हुई है। एक पतली-सी सूक्ष्म

आशा-किरण अभी भी शेष है । इस धुंधली-सी आशा के कारण ही अमरिया के पैर उसके पीछे-पीछे उठ रहे थे । परतु यह निश्चित था कि यदि गारासिंग उस खिडकी की तरफ गया होता तो जीवन से हताश होकर अमरिया कभी का मूर्छित होकर वही धरती पर ढेर हो गया होता !

दालान पार कर लेने पर गारासिंग परकोटे से जुड़ा हुआ दूर के कमरो की ओर बढने लगा । एक कमरा खोलकर वह उस भग्न-हृदय अमरिया की राह देखता हुआ दरवाजे पर खडा रहा । कह रहा था, "जल्दी से पांव उठा सूअर ! अभी से टागे टूट गई है क्या ?"

अमरिया सोचने लगा कि गारासिंग के पास पहुंचते ही उसके पैरों में गिर पड़ूंगा । पर अभी पास पहुंचने में दो डग शेष थे कि गारासिंग ने छलाग मारकर उसे बाहों में उठा लिया और बकरे की तरह कमरे में खीच लिया, "सूअर ! कभी से कह रहा हू कि पैर उठा, पर उठा पर सुनता ही नही !"

अमरिया को कमरे मे फेंककर गारासिंग ने दरवाजा बंद कर दिया। कमरे के उस गहरे अंधेरे में कहीं छिप जाने का विचार भी उसके मन में आया जरूर, पर इस छिपने का क्या परिणाम होगा, यह उसके कांपते हुए अंग-प्रत्यंग बिना पूछे ही पहले से बता रहे थे ।

संभावित मृत्यु की त्रासदी से भी अधिक भयंकर घुटन यह थी कि उसे कुछ समझ मे नही आ रहा था कि यह दैत्य उसके साथ क्या करना चाहता है ? अंधेरे मे परकोटे की दीवार के साथ गारासिंग को कुछ मेहनत करते देखकर यह समझ ही नही पड़ रहा था कि सर पर कुछ गिरने···।

यकायक परकोटे के द्वार खुल गए हो ऐसा प्रकाश अमरिया की आंखों में पड़ा। साथ ही गारासिंग की आवाज भी आई, "आ जा रे सूअर !"

स्थान के साथ-साथ समय की एकात नीरवता भी इतनी भयानक थी कि अमरिया चीखने से भी डरता था। उसे तो जैसे विश्वास हो गया था कि सहायता की पुकार लगाते ही यह राक्षस तत्काल उसका गला घोट देगा । गारासिंग की ओर कदम उठाता हुआ अमरिया दबी आवाज में गिड़गिड़ाने लगा, "सरदार सा'ब ! मैं तो आपकी गाय हूं !"

गारासिंग खिड़की से बाहर निकलकर कह रहा था, "इसी कारण माजी सा'ब ने तुझ पर रहम किया है कुत्ते ! आ, निकल यहां से बाहर। वह याचक और ब्राह्मण को एक-सा मानती है इसीलिए···!"

अमरिया परकोटे की खुली हुई छोटी-सी खिडकी से बाहर निकल, गारासिंग के पास खडा रहकर पुनः गिड़गिड़ाने लगा, मिमियाने लगा, "मां-बाप ! छोटे-छोटे दो बच्चे है !"

"चुप रह बदमाश ! सुन, भिक्षुक समझकर माजी सा'ब ने तुझे जीवित छोड़ देने का हुक्म दिया है। लेकिन एक शर्त याद रखना। जीवन-भर गलाल बापू से कभी मत मिलना और न किसी को स्वप्न-गीत का भेद बताना। किस राजा की राजकुमारी है, कहा रहती है, क्या नाम है—कुछ भी मत कहना ! नहीं तो सूअर के बच्चे···!" आगबबूले गारासिंग ने अमरिया की गर्दन पकड़कर उसे झकझोर दिया। दात भीच-कर पूछा, "बोल, है मजूर ?"

"हा बापा ! हा ! मंजूर है।"

"देख इस तरफ," कहकर गारासिंग ने उत्तर दिशा में अपना हाथ फैला दिया।

अमरिया नही समझ पाया कि गारासिंग क्या दिखा रहा है। उसे तो गारासिंग के हाथ की दिशा मे क्षितिज के ठीक नीचे कुछ तारे दिखाई दिए। कुछ अन्य तारे क्षितिज के ऊपर थे।

गारासिंग ने प्रश्न किया, "कुछ समझ मे आता है या नही—यह मृत्यु की घाटी कितनी गहरी है और वह पर्वत कितना ऊंचा है ? तेरे स्थान पर यदि कोई दूसरा होता तो उसे इसी घाटी में महाकाली का नाम लेकर कभी का विसर्जित कर दिया होता ! पर याचक समझकर आज तुझे जीवन-दान दिया है। इसलिए याद रख कि अगर तू कभी गलाल बापू से मिला और और उनके आगे इस भेद को खोला तो मेरा नाम गारासिंग है ! तेरे गांव का नाम-पता मुझे मालूम है। तुझे और तेरे उन पिल्लों को मौत के घाट उतारते मे मुझे देर नही लगेगी !" मूछों पर ताव देते हुए पुनः कहा, "मेरा नाम गारासिंग है, हां !" सवाल किया, "बोल रे, क्या जवाब देता है ?"

अमरिया ने प्रमाण के रूप मे गारासिग की शर्त को अक्षरशः उच्चरित करने के बाद यह बात भी जोड दी कि, "जो मैं इस रहस्य का पता गलाल बापू को दू तो यह रात मुझे निगल जाए !"

"नही, सूअर, तू तेरे रामैये की कसम खा।" गारासिग अपनी इस मौलिक सूझ पर अत्यत खुश था।

"रामैये की कसम, बापू !"

"कह।"

"किसी भी दिन यदि मैं गलाल बापू को राज्य या कुवरी का नाम बताऊं तो रामैये की कसम, बस ?"

"ठीक है। सुन, इस परकोटे के समानांतर एक पगडंडी जा रही है। उस पगडंडी पर आगे बढता जा। फिर मुख्य मार्ग मिलेगा। उस मार्ग पर चले जाना। पहुंच जा सीधा अपने गांव। एक बात और याद रखना। पीठ पीछे सदेशवाहक भी छूटेगा, पर उसकी पकड़ में न आना, छिप जाना। अगर वापस आया तो गारासिग की तलवार का भोगे बनेगा। बखूबी याद रखना कि बापू के पास जिंदा नही पहुचने दूगा। जा अब, भाग यहां से।"

और पुनर्जीवन प्राप्त कर अमरिया, गारासिग के पैरो मे गिरने के पहले बोला, "आपका उपकार कभी नही भूलूगा। आपने मुझे जीवन-दान दिया है।"

पर जैसे ही वह अंधकार में भयानक लगने वाले उस जंगल की ओर मुडा, उसे अपने सामने एक दूसरी मृत्यु खडी दिखाई दी। उसकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। याद आया कि तलवार तो उस रामैये और झोले के साथ कमरे मे ही रह गई है।

क्षण-दो क्षण के लिए ठिठका न ठिठका कि पग उठाता हुआ मन को समझाने लगा—'ऐसा ही है तो पेड़ पर चढकर रात गुजार लूगा, पर फिलहाल तो इस राक्षस से मुक्ति पा लू !' और इसके साथ ही उसने शक्ति माता का स्मरण कर तेजी से कदम बढाए।

पलभर बाद ही वह उस अंधकार में विलीन हो गया।

गारासिग ने अंदर की ओर मुह फेरा। दीवार मे से निकला हुआ

पत्थर यथास्थान रख दिया। द्वार खोलकर आज्ञा पूरी करने की सूचना देने के लिए मांजी सा'ब के कक्ष की ओर चल पड़ा। थोड़ी दूर जाते ही पीछे से आवाज सुनाई दी, "ठहरो गारासिंग।"

गारासिंग के लिए इस प्रकार का आदेश नया-नया-सा था। पीछे मुड़कर देखा तो सेनापति वकता भाई खड़ा था। फिर भी गारासिंग डरने वाला जीव नही था। वकता भाई ने कहा, "चलो मेरे साथ, बापू ने तुम्हे इसी वक्त बुलाया है।" सुनते ही गारासिंग का हृदय कांप उठा। वकता भाई की ओर डग भरते हुए संतुलित स्वर मे कहा, "आप जाइए, मैं माजी सा'ब से मिलकर आता हू।"

"मिल आओ। मैं तुम्हारी बाट जोहता हुआ यही खड़ा हूं।" फिर कहा, "बापू का आदेश तुम्हें साथ लेकर आने का है।"

और पियोली मां के कक्ष की ओर पैर उठाता हुआ गारासिंग अपनी पैंतालीस वर्ष की उम्र में आज पहली बार घबराया हुआ था।

दूसरे काम में मन पिरोया

गारासिंग के आते ही गलाल ने छूटी हुई कमान के से मिजाज के साथ प्रश्न किया, "गारा, वह जोगी कहा है ?" आज पहली बार उसने, गारासिंग के बदले केवल गारा शब्द का प्रयोग किया।

"मैं क्या जानू, बापू सा'ब ?" गारा के मुह से भी आज बापू शब्द के साथ सा'ब शब्द निकल पड़ा।

"क्या जानूं ?" गलाल उछल पड़ा। खूटी से तलवार उठाकर सटाक से खीच ली। बस प्रहार करने की देर थी कि भीतर से पियोली मा की कठोर और गरजती हुई आवाज आई, "ठहरो, बापू ! न तो उसने कोई भूल की है और न उसका कोई गुनाह है। तुम इतने अविचारी कैसे हो गए ? पियोली की कोख से तुम जैसा पाषाण ?" पियोली की एक आंख से क्रोध की लपटें निकल रही थी तो दूसरी से तिरस्कार के तीर बरस रहे थे। उसने गलाल के सम्मुख झट से चौकी खीची और उस पर बैठते हुए कहा, "मुझसे बात करो। बोलो, क्या कहना चाहते हो ?" गारासिंह

की ओर देखकर कहा, "गारा, तुम जाओ और वकता भाई, तुम्हारा भी यहा कोई काम नही है।" और फिर गलाल को हुक्म दिया, "इधर आओ, मेरे सामने!"

गलाल ने तलवार म्यान में करते हुए कहा, "नही मां! मै आपसे कोई बात करना नही चाहता।" फिर कहा, "मै अब यहा रहना भी नही चाहता।" और तलवार खूटी पर लटकाकर रोष ही रोष मे भीतर की ओर चलता बना।

मां ने सपने में भी नहीं सोचा था कि पुत्र-हृदय को इतनी ज़बरदस्त चोट लग सकती है। यह बात भी शायद उसके ध्यान मे नही आई थी कि पुत्र दिन-प्रतिदिन बड़ा हो रहा है। उसकी आयु के चरण यौवन के द्वार पर खडे है। जिस ढंग से वह अपनी तलवार पर अडिग रहकर जीता है, उसी प्रकार से उसकी रसवृत्ति भी दिन-प्रतिदिन विकसित होती जा रही है।

पियोली भी पीछे-पीछे अंदर आकर पलंग पर लेटे हुए गलाल के सिर पर हाथ फेरती हुई कई प्रकार की बातें करने लगी, जिनका सारांश यह था—"जो राजकुमारी यह भी नही जानती कि यह व्यक्ति राजकुमार है या कौन है और रास्ते चलते-चलते उसके प्रेम मे पागल हो गई है, वह आखिर कैसी लडकी होगी इस पर तो जरा विचार करो, कुमार?··· और तुम्हे तो शक्ति मा ने इतना विपुल रूप दिया है कि राह चलती कोई भी नवयौवना तुम्हारे रूप की आकाक्षा कर सकती है, तुम पर मुग्ध हो सकती है। और अब तो फिर तुम्हारा शौर्य और तुम्हारी कीर्ति दिग-दिगंतर में फैल गई है! ऐसी स्थिति मे तुम इस तरह के भिक्षुको के गीत सुन-सुनकर उनकी बातों में आ जाओ तो इससे अपना गौरव कितना···"

और अंत में पुनः जाते-जाते कह गईं, "बापू! एक बात याद रखना। तुम सब-कुछ करना, पर इस घर मे एक ऐसी बहू लाकर पियोली की कोख मत लजाना जो राह चलते-चलते प्रेम कर बैठती है और भिक्षुकों के द्वारा संदेश भेजती है!" चौखट के आगे ठिठककर खडी रही और गलाल की ओर एकटक देखते हुए गद्‌गद कंठ से हाथ जोडकर

कहने लगी, "वापू ! मैं तुमसे हाथ जोड़कर विनती करती हूं !" और चल दी।

बिच्छू के डंक-से तीक्ष्ण स्वभाव की पियोली मां का पुत्र के आगे हाथ जोड़ना और आखें भर लाना कम से कम गलाल के लिए तो साधारण बात नही थी।

इस घटना के बाद तो स्वप्न की वह बात गलाल के हृदय-लोक के सातवें पाताल में समाधिस्थ हो गई। वकता भाई ने बाद मे गलाल को सात्वना दी कि गारा ने जोगी को मारा नही है, सिर्फ जंगल में निकाल दिया है। पर गलाल अब उस बात को फिर से उधेड़ना नहीं चाहता था, कोई अर्थ भी नही था। वह बखूबी जानता था कि मां की इस कुवरी के प्रति नाराजगी मिटनेवाली नही है और न वह स्वयं ही मा की इच्छा की अवहेलना कर उसे कभी महल मे लाने की हिम्मत कर सकता था।

फिर तो शक्ति-मंदिर के प्रागण में तलवार के लेने-देने की बात जिस प्रकार अभी तक केवल स्वप्न थी, उसी प्रकार यह घटना भी गलाल के चित्त में एक स्वप्न बनकर रह गई···कोई एक घूमता-घामता जोगी आया था···वह गले में जैसे हृदय उडेलकर गाता था···और अपने गीतों द्वारा एक स्वप्न को साकार कर गया था—

मेले बेठां वेद भणे छे
तीरनां पाछां ताकोडी ने
रूप नी गागर छलकये जती
मही ना काठे शाख भरी छे !

और इसके साथ ही गलाल के कानों मे घोड़े की टापों की आवाज और उस मासूम घुड़सवार का अंतर्द्वंद्व, उसकी उद्विग्नता···। किसी-किसी रात को तो स्वप्न में यह सारा का सारा दृश्य बार-बार जाग उठता था, 'जय-भवानी' के उस मधुर स्वर सहित।

गलाल यदि चाहता तो, दादागुरु का नाम तो उसके पास था ही। वह अब ज्यादा दूर भी नही थे, पूछकर कम से कम जोगी का तो पता मालूम कर ही सकता था···और इसके बाद तो···।

परंतु जैसे उस गीत के शब्द हृदय मे गूंजते थे, उसी प्रकार से पियोली

मां के ये शब्द भी मन-मस्तिष्क में रेखांकित हो गए थे, 'ऐसी बहू लाकर तुम पियोली मां की कोख नही लजाओगे। बापू ! मैं तुमसे हाथ जोड़-कर बिनती करती हूं !' मां का उस समय का करुण चेहरा आज भी गलाल के आगे प्रत्यक्ष हो उठता है। जैसे अभी भी चौखट पर खड़ी हुई उससे विनती कर रही है···।

और तब गलाल ने राजकीय कार्यों और बड़े-बड़े शिकार खेलने में अपना मन पिरोया।

इस दरम्यान पियोली मां के पास एक ताजिमदार महाराजा की पुत्री का विवाह-प्रस्ताव भी आया था। उसने गलाल से इस सबंध में पूछा था, पर गलाल ने इस प्रस्ताव को बलपूर्वक अस्वीकार कर दिया, "अभी तो उसकी चर्चा ही मत करो।" हंसते-हंसते मा के आगे अस्वीकार का कारण भी रख दिया, "एक बार फिर से नाम अर्जित कर लू, बाद में उसकी बात करेंगे !"

इस समय न तो किसी युद्ध की संभावना थी और न नाम होने की कोई आशा थी। रार्जसिह का निधन हो चुका था और नये महाराणा जर्यसिह ने औरंगज़ेब से संधि कर ली थी। अतः इस वक्त तो केवल बढ़िया-बढ़िया शिकार खेलकर ही नाम कमाया जा सकता था। इस क्षेत्र में भी गलाल ने एकबारगी नाम हो जाए वैसा शिकार किया था। हाथी के शिशु के समान विशालकाय सूअर का उसने एक ही झटके में काम तमाम कर दिया था। पर बाद में जंगल के शिकारियों से पता लगा कि यह तो वही अकेला सूअर है जिसके लिए महाराणा जर्यसिह तीन-तीन बार आ चुके है और अतिम बार तो अभी दो दिन पहले ही अपना वार खाली जाने पर मायूस और निराश होकर लौटे हैं।

महाराणा के शिकार का किसी अन्य द्वारा वध किया जाना स्वयं महा-राणा का भयंकर अपमान करने के समान था। शिकारी भी घबराया। आखिर एक बुद्धिमान् शिकारी ने अक्ल लडाई। उसने कहा, "मैं उदयपुर जाकर राणाजी को खबर दूंगा कि हुजूर ने सूअर पर जो वार किया था उसे हम खाली मानते थे, पर असल में तो उस वार से सूअर बुरी तरह से घायल हो गया था और आज वह एक झाड़ी में मृत्यु-शैया पर

पड़ा हुआ मिला है।"

इस सूझ के साथ ही गलाल ने वकता भाई को उदयपुर भेजा। महाराणा से विनती की गई कि यदि आपको हमारा निमंत्रण स्वीकार्य हो तो आपके द्वारा किए गए उस शिकार के उपलक्ष्य में हम सियाड मे एक दावत रखेंगे और इसी सूअर की गोठ मनाएगे।

अपने वार की सफलता की सूचना से हर्षित महाराणा ने गलाल की विनती स्वीकार कर ली। वस्तुतः महाराणा जयसिह अभी भी गनोरा-विजय और गलाल को भूले नही थे।

साझ होते ही एक तरफ सियाड में रसोई तैयार हुई और दूसरी तरफ महाराणा अपने लाव-लश्कर सहित आ पहुचे। राणाजी का लंबा-चौड़ा रिसाला देखकर गलाल चिंता में पड़ गया। पियोली ने दूसरी तरफ फिर से चूल्हे जलवाए।

खैर, रसोई तो जैसे-तैसे पर्याप्त हुई पर पानी की खूब किल्लत रही, हालांकि गाव से पानी मगवाकर पूरा किया गया। परतु गलाल ने इस अवसर का लाभ उठाकर इस क्षेत्र के निवासियो को पानी के अभाव के कारण जो दिक्कत महसूस होती थी उसकी सूचना महाराणा तक पहुंचा दी।

महाराणा ने भी आश्चर्य व्यक्त किया, "अरावली जैसी पर्वत-श्रृंखला के होते हुए पानी की तकलीफ !"

और गलाल ने इस स्थल पर अवसर देखकर निवेदन किया, "इस प्रदेश मे ढेबर नामक एक तालाब है जो अब टूटा पड़ा है। परतु यदि उसका पुर्ननिर्माण किया जाए तो लाखों लोगों की पानी की तकलीफ दूर हो सकती है और राजसमद को भी भुला दे ऐसे जयसमंद का निर्माण हो सकता है, हुजूर !"

गलाल इस इलाके मे जब भी शिकार पर निकलता तो जाने-अनजाने ढेबर का निरीक्षण अवश्य कर लेता था। उसने चारो ओर के प्रदेश की छानबीन करने के बाद एक योजना भी सोच रखी थी।

जयसिह ने साश्चर्य गलाल से प्रश्न किया, "राजसमंद से भी श्रेष्ठतर ?"

"दुगुना बढिया हुजूर !" गलाल ने बेधडक जवाब दिया।

"बढिया तो बन सकता है पर उसमे पानी टिकता नही है, अन्नदातार! सुना है अब तक सात बार ढेबर का निर्माण हो चुका है," एक सरदार ने ढेबर की विशिष्टता का परिचय दिया।

"मजबूत बाधो, ऐसा कि टूटे नही," जयसिह तान मे था। जब-जब वह लंबे-चौडे विस्तार वाला नयनाभिराम राजसमंद देखता था, तब-तब उसके मन मे भी पिताश्री द्वारा निर्मित इस भव्य सरोवर के समान ही विराट सरोवर बनवाने की इच्छा जाग उठती थी।

सुयोग मिल जाने से जयसिह ने भी जयसमद बनवाने के विचार को मजबूती ने पकड़ लिया। खर्च इत्यादि का अनुमान पूछकर, कल से ही निर्माण-कार्य आरभ करने का आदेश देते हुए सवाल किया, "जवाबदारी कौन लेगा ?"

गलाल के मन में इस दायित्व को उठाने की प्रबल इच्छा थी, पर वह अपने मुह से कैसे कहता कि ज़िम्मेदारी मैं उठाता हू! कहने जा रहा था—'आप जिसे भी हुक्म दें!' पर इसके पहले ही जयसिह की प्रिय परमार रानी का एक संबंधी जो कि अगरक्षक था, बोल पड़ा, "आपका हुक्म हो तो सेवक तैयार है!"

और उसी पल जयसमंद निर्माण का दायित्व महाराणा ने उस व्यक्ति को सौंप दिया।

महाराणा ने उदयपुर लौटकर इस निर्णय की सूचना दीवान को दी और कोषाध्यक्ष को भी हुक्म दिया, "जयसमंद निर्माण के लिए जो भी खर्च आवश्यक हो वह दिया जाए।"

पर कुछ दिन बाद ही गलाल काम देखकर इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि परमार राजपूत उतना होशियार नही है जितना कि उसे होना चाहिए। कामगार तो उसने बहुत सारे एकत्रित किए थे, पर उन लोगों में सरोवर-निर्माण के लिए आवश्यक कुशलता का अभाव था। इसके अतिरिक्त मजदूरी भी उन लोगों को आधे काम की दी जा रही थी। शेष आधा काम बेगार मे करवाया जाता था। लोग भी ऐसी स्थिति में, स्वाभाविक था कि, बेगार के अनुरूप ही बेगार काम करते।

जो भी हो, ढेबर जलाशय का निर्माण-कार्य बिगड़ता देखकर गलाल एक आतरिक घुटन और बेचैनी महसूस करने लगा। राणाजी से मिलने का समय मागा और उनसे रूबरू मिला। किसी प्रकार के संकोच और शरम की परवाह किए बगैर उसने साफ-साफ शब्दो में कहा कि बेगार से निर्मित तालाब बिलकुल बेकार सिद्ध होगा और अगर आठवी बार भी टूट गया तो भविष्य मे कोई ढेबर की तरफ आख उठाकर भी नही देखेगा और इसका जीवन स्थायी रूप से बिगड़ जाएगा।

जयसिह गहरे सोच मे पड गया। पूछा, "क्या करने पर जयसमंद-निर्माण के कार्य मे सफलता मिल सकती है?"

"हुजूर, राजसमंद से भी दुगुना बढ़िया बनाना हो तो बलवाडा की खान का पत्थर, लोहारिया की खान का लोहा, मालवा के शिल्पी और वही के मजदूर लाने पडेंगे।" तुरंत जोड दिया, "पैसा तो खर्च होगा हुजूर! पर जयसमंद ऐसा बनेगा कि आपका नाम युग-युगांतर तक अमर रहेगा!"

"पैसे की फिकर नही है गलालसिंहजी! काम बढिया होना चाहिए।" और इस कथन के साथ ही गलाल से नजरें मिलाकर पूछा, "कहिए, क्या आप इस उत्तरदायित्व को उठाने के लिए तैयार हैं?"

"हुजूर का हुक्म हो तो तैयार हू।"

"तो ठीक है।" और उसी समय दीवान को बुलाकर जयसमंद-निर्माण का दायित्व लिखित रूप में गलाल को सौंप दिया।

आज्ञा-पत्र सहित लौटते समय, लीलागर घोड़े पर सवार गलाल के हृदय में जयसमंद-निर्माण का हर्ष हिलोरें ले रहा था। जयसमंद के चारों ओर का संपूर्ण भूभाग उसकी मन की आंखों के आगे एक नक्शे की तरह मूर्त हो उठा।

सियाड पहुंचा तब तक तो कौन-सा काम पहले और कौन-सा बाद में, कौन-सा काम कितनी अवधि में और कितने लोगों द्वारा पूरा करना है इत्यादि संपूर्ण विवरण उसके स्मृति-कोश में लिखा जा चुका था। दूसरे ही दिन सवेरे गलाल ने रंगा को बुलाया। मालवा जाने की सूचना देते हुए कहा, "रंगा, शिल्पियों से कहना कि मालवा की कारीगरी और

और मेवाड़ के दाम ! ऐसा काम करना है कि ढेबर का नाम विश्व के सरोवरों में अमर-पट पर अंकित हो जाए ।"

युद्ध-समाप्ति के बाद से बैठे-ठाले रोटी खाने वाला रंगा भी खुश हो गया कि चलो काम भी मिला और ऊपर से घूमने का आनंद भी । कमर पर पट्टा कसते हुए कहने लगा, "संपूर्ण मालवा छान डालूगा और चुन-चुनकर कारीगर और मजदूर लाऊगा, बापू ! कल नही, परसों भी नहीं पर आज से पाचवें दिन तो मालवा-ढेबर एक कर दूगा !"

रगा घोड़े पर सवार हो गया । गलाल बापू को 'जय-भवानी' का अभिवादन किया और घोडे को मालवा की दिशा में मोड़ दिया । उत्साह से ओतप्रोत रगा कहता जा रहा था, "बापू ! विश्वास न हो तो नाहर पहाड़ पर चढकर देख लेना ! मकोड़ो की पंक्ति के समान मानव-माला मालवा की ओर से आती हुई दिखाई पडेगी । देख लेना···!"

रंगा की कार्य-कुशलता गलाल से छिपी नही थी । गलाल को तो बल्कि अरावली की पर्वतीय दुर्गम राह पर चढाई-उतराई करती हुई, गधों के साथ आती हुई ओडों की मीलों लंबी कतार मकोड़ो की माला के समान ढेबर और मालवा को अभी से ही एकतार करती हुई दिखाई पड़ने लगी ।

कहना कठिन है कि गलाल का उस समय का युद्ध-अभियानजनित उत्साह अधिक तीव्र था या जयसमंद बाधने की आज की उमंग !

ढेबर जलाशय का निर्माण

जयसिंह की प्रिय रानी कमला देवी परमार-सरदार को जलाशय-निर्माण के उत्तरदायित्व से मुक्त कर दिए जाने के निर्णय से दुखी थी । उसने पति के समक्ष अपने दुख को व्यक्त भी किया, "आपने तेजसिंह से जलाशय-निर्माण का काम छीनकर अच्छा नही किया । वह इस निर्णय को बिना गुनाह दी गई सज़ा मानता है ।"

जयसिंह को गलाल की कार्य-कुशलता पर पूरा भरोसा था । किंतु रानी के समक्ष इस कार्य-कुशलता को प्रमाणित करना स्वयं में एक

मुश्किल कार्य था। काफ़ी विचार करने पर एक उपाय सूझा। रानी को आश्वस्त करते हुए कहा, "कल सुबह हम दोनो ढेबर चलेगे। परमार का कार्य देखेगे और कुछ दिन बाद गलाल के काम का भी निरीक्षण करेगे। दोनों की कार्य-कुशलता मे कितना अंतर है, यह देखने के बाद ही अतिम निर्णय लूगा।"

रानी को इस सुझाव मे कुछ भी आपत्तिजनक नही लगा। इस बात पर तो वह भी सहमत थी कि जयसमंद राजसमंद से बढकर होना चाहिए। यू भी रानी के मन मे इस स्थान को देखने की उत्कट इच्छा थी। तीसरे दिन सबेरे पालकी मे बैठकर, आगे-पीछे घुडसवारों की टुकड़ियो और अश्व पर आरूढ़ राणा के साथ, वह ढेबर देखने चल पड़ी। राणाजी की आज्ञा के अनुमार एक उपयुक्त स्थान देखकर रानी के ठहरने के लिए एक रावटी खड़ी की गई। उस ऊंचे स्थान पर से लग-भग बारह-पद्रह मील के फैलाव को ठीक-ठीक देखा जा सकता था।

तालाब का अतहीन विस्तार और काम पर लगे हुए हजारो श्रमिकों की कार्य-कुशलता देखकर पर्वत-शिखर पर स्थापित रावटी के बाहर खड़ी हुई रानी आश्चर्यचकित हो उठी। राणा से उसने कहा भी, "इतने सारे लोगों को काम पर लगा देने के बावजूद आपको तेजसिंह का काम पसंद नही आया ?" दृश्य भी इतना अद्भुत था कि जैसे किसी विराट कडाह में असंख्य मानव-जंतुओ को उबाला जा रहा हो।

राणाजी भी अनुभव करते थे कि गलालसिह मालवा से मजदूर-शिल्पी आखिर कितने लाएगा ? फिर भी वह यह तो मानते ही थे कि गलालसिह के आ जाने से तेजसिह की अपेक्षा काम की गति में तेजी आएगी। रानी से भी कहा, "प्रश्न संख्या का नहीं, काम के स्तर का है ?" और तुरंत जोड़ दिया, "दस दिन ठहर जाओ—पुनः आकर देखेंगे और तब बात करेंगे।"

और लगभग पंद्रह दिन बाद उसी स्थान पर से जब रूत्ता रानी ने पुनः निरीक्षण किया तो उस दिन के और आज के काम में आकाश-पाताल का अंतर था। पिछली बार जब काम देखा था तो कुछ समझ में नही आता था कि क्या हो रहा है। संपूर्ण कार्य-पद्धति मे एक अजीब

अव्यवस्था दृष्टिगोचर होती थी। मजदूरो का आना-जाना, हिलते हुए हाथ-पैर और पत्थरों की तोडाफोडी यही सब कुछ दिखाई दिया था। मदूजरों पर निगरानी रखते हुए घुडसवारों और पाल पर जारी चुनाई के काम पर ध्यान जरूर गया था, परंतु आज जब रूत्ता रानी ने गलाल की देख-रेख मे होने वाले काम को देखा तो पहली ही दृष्टि में अनायास उसके मुंह से निकल पडा, "बढिया काम चल रहा है।"

एक नही, अनेक स्थानो पर एकसाथ काम चल रहा था। प्रत्येक टोली के पास जुदा-जुदा कार्य होने पर भी लगता था कि जैसे सारा कार्य एक ही सूत्र मे पिरोया हुआ है। एक तरफ बोझ से लदे ऊटो की माला आ रही थी तो दूसरी तरफ रेत के टीलो के समान बैठे हुए ऊंटों पर से सामग्री उतारी जा रही थी।

रावटी के पीछे खडे गलाल ने दूर-दूर से आती हुई गाड़ियों के काफिले की ओर ध्यान आकर्षित किया, "वह हुजूर, बडे-बड़े पत्थरों को उठाए हुए छोटी बैलगाडियो का कारवा आ रहा है ··वहा देखिए···हुजूर के हाथी पत्थर उतारकर बलवाडा की दिशा में वापस झूमते हुए जा रहे है···।"

मंदगति से बढते हुए पच्चीस हाथियो का वह बादल तथा चीटी की गति से आ रही छोटी बैलगाड़ियों की लबी कतार देखकर राणाजी के नयन उल्लास से हंसने लगे। पार्श्व मे खड़ी रानी को दिखाते हुए कहा, कैसा अद्भुत दृश्य है रूत्ता ? बढ़िया ढंग से काम चल रहा है न ?"

फिर गलाल ने, तालाब के उस विराट कड़ाह मे जारी कार्य की ओर राणाजी का ध्यान आकर्षित किया, "वह जो जगह-जगह से धुआ उठ रहा है न, वे भट्ठियां है हुजूर ! उनमे सीसा पिघलाया जाता है और उसे किनारों पर चुने जा रहे पत्थरो पर उंडेला जाता है।"

इसके अतिरिक्त तालाब के थाले में से खोदकर निकाली गई मिट्टी तथा पत्थरो को उठाकर चारो दिशाओ मे जाती हुई गधो की लबी-लबी कतारों और बाजू के पथ पर से आती हुई गधो की पक्तिबद्ध कतारो का दृश्य भी ऐसा मजेदार लगता था कि जैसे कोई एक विराट तबू सीया गया है और मजबूती के लिए उस तंबू के हर सिरे को सूत की रस्सियों

से कसा जा रहा है···।

यह सब देखने के बाद प्रमुदित परमार रानी ने, जिसे सब रूत्ता रानी कहते थे, तेजसिंह को समझा-बुझाकर उसे हिसाब-किताब के अधिकारी के रूप मे नियुक्त करवा दिया।

स्थानीय और मालवा के सैकड़ों शिल्पियो और हजारो मजदूरों के बस जाने से ढेबर तालाब एक महानगर मे बदल गया था। दुगुनी मज़दूरी के प्रलोभन से डूगरपुर, सागवाड़ा और बांसवाडा जैसे पड़ोसी राज्यों से भी सैकडों संगतराश आए थे। रात के समय दीपकों और अलावो की वजह से, दूर से देखने वालो को एक सैनिक-छावनी का भ्रम हो जाता था। मालवा से आए हुए ओडों को व्यवस्थित रूप से तंबुओं मे ठहराया गया था। चौमासे मे भी तालाब का काम जारी रहने की वजह से कितने ही मजदूरों ने झाड़ियों की झोंपडियां बनाकर उन पर पत्तियों का छप्पर छा दिया था। रोज़मर्रा की ज़िंदगी के लिए जरूरी चीजो के दो-तीन बाजार भी अपने आप लग गए थे। रात के समय मनोरंजन के लिए मजदूर-कारीगरों मे से कुछ मनचले निकल पड़ते थे। दो-तीन जगहों पर शराब की भट्ठिया भी स्थापित हो गई थीं। सूरज ढलते ही काम पर से छूटे हुए आधे कारीगर-मजदूर तो सीधे इन भट्ठियों की ओर ही दौड़ पड़ते थे। दिन में काम जारी रहने के कारण स्थान-स्थान पर मजदूरों के लिए प्याऊ लगी हुई थी और औजार बनाने के लिए लुहारों के कारखानों में दिनभर खटाखट मची रहती थी······।

कोई-कोई रसिक मनचला तो काम के दौरान ही दोहे ललकारता था। कुछ ऐसे भी थे जो ओडणों को भी छेड़ते रहते थे :

ओरी थारो जोबनो
काईं थंनक थंनक थाय
एसी कली रो घाघरो
थानी ठोकर देती जाय

(ओ री ओडण ! तेरा मदमाता यौवन क्या ही ठुनक-ठुनक रहा है? तेरा अस्सी कलियो का घाघरा ठोकर लगाता हुआ जा रहा है !)

जवाब के तौर पर सामने से कोई नटखट ओडण टोली मे छुपकर

घूघट की ओट मे से सुना देती थी :

जोबन झुल्या घाघरे
काचळिए फोर्या जाय
रसिया हरखे जोई ने
थारो कलिए जीव कपाय !

(घाघरे मे यौवन झूल रहा है···वह कचुकी चीरकर बाहर निकल रहा है···रसिक तो उसे निहार-निहारकर प्रसन्न हो उठता है, परतु तेरे मन को तो घाघरे की कलियो ने घायल कर दिया है···)

और तभी बीच मे कोई सयाना वयोवृद्ध पुरुष इन जवान लोगों के आगे ज्ञान की बात छेड बैठता था :

छोरा खेल्या खेलणे
काइ मोटा जोबन सग
बूढां करमे लाकडी
वा रंग संगरो ढंग ! ···

(छोटे छोटो के साथ खेल खेलते है। बूढ़े नौजवानो के साथ क्या खेलेंगे ? उनके भाग्य मे तो छडी ही लिखी है ! दुनिया की यही रीति है कि रंग के अनुरूप संग मिलता है, कि वय के अनुरूप ही साथी मिलता है !)

तो किसी-किसी स्थान पर झगड़ा हो जाने पर गैती, फावड़े, हथौड़े और हरपुणिये भी बजने लगते थे।

घुडसवार गलाल इस रौद्र-रम्य वातावरण मे झगडे सुलझाता हुआ, लोकवाणी से प्रवाहित गीत-दोहो को सराहता हुआ काम मे इतना निमग्न रहता कि उसे यह भी पता नहीं लगता था कि कब दिन उगता है और किस दिशा में अस्त होता है ?

गलाल का इन लोगो से काम लेने का तरीका न केवल परमार से अपितु सारी दुनिया से जुदा किस्म का था। परमार का आग्रह था कि काम मे ढील नही होनी चाहिए और उसे शीघ्रातिशीघ्र पूरा करना चाहिए, जबकि गलाल का मूलमंत्र था कि देर भले ही हो पर काम बढिया होना चाहिए, जल्दी के नाम पर अपना हाथ मत बिगाडो।

परमार ने घोषणा की थी, "ज्यादा काम करने वाले को इनाम दिया जाएगा!" जबकि गलाल ने ऐलान किया, "जो व्यक्ति सर्वश्रेष्ठ काम करेगा उसे लिबास दिया जाएगा।"

काम के दौरान किसी को चोट लग जाने पर वैद्य की व्यवस्था थी। गलाल स्वयं भी ऐसे व्यक्तियो की देखभाल करता था, विवेक या औचित्य से प्रेरित होकर नही अपितु उसका स्वभाव ही ऐसा था। युद्धभूमि में वह हजारों का वध करने मे भी नही हिचकता था, पर महल मे नौकर के शरीर पर सामान्य फोडा उठने पर वह उसे चिकित्सा के लिए तुरत वैद्य के पास भेजता था।

हरेक पूर्णिमा को गलाल छुट्टी रखता था और कभी-कभी तो वह प्रमुख शिल्पियो को गोठ (प्रीतिभोज) देने के लिए शिकार पर भी निकल पड़ता था।

रूत्ता रानी और महाराणा जयसिंह अक्सर आते रहते थे। वे भी जयसमंद का श्रेष्ठ निर्माण-कार्य देखकर गलाल की प्रशंसा करने से नही चूकते थे। पूरी होने को आ रही मुख्य पुलीन की रौनक देखकर प्रमुदित रूत्ता ने एक बार तेजसिंह से कहा था, "देख लिया न काम ? यह ठीक ही हुआ कि तुझे बदल दिया ! स्वप्न में भी तू इतना बढिया काम नही करवा सकता था !"

वैसे भी तेजसिंह के मन मे गलाल के प्रति ईर्ष्या का भाव तो था ही! रानी के इस व्यग्य ने तो उसे जैसे शराब पिलाकर बहका ही दिया ! तेजसिंह जवाब के तौर पर कहना चाहता था—'बाई सा'ब, बढिया काम तो हुआ है, पर यह बढिया काम मेवाड की तिजोरी को खाने लगा है—आप इसे कहा जानती है ? मालवा से ओड गधों पर खाली बारदान लेकर आए थे; उसकी जगह आज वे रुपयों से भरे बारदान लेकर जा रहे है ! आप सुन लेना, भविष्य मे चारण लोग गाएंगे कि ढेबर बाधने मे मालवा के ओडो ने इतना रुपया-पैसा कमाया कि गधों के मुह पर सोने के मोहरे और ओडो के हाथो मे चादी के चाबुक रहते थे!'

पर तेजसिंह अपने अंतरतम मे जानता था कि जलाशय की उत्कृष्ट

निर्माण-कला और रौनक इतनी भव्य है कि दर्शक उसके सामने खर्च की बात भूल जाएंगे ।

तटो के निर्माण का कार्य पूरा हुआ । केवल तीन दिन मे पूरा हो जाए इतना सफाई का कार्य ही शेष था । स्थानीय कामगारो को तो छुट्टी भी दे दी गई थी । ओडों ने भी तंबू उखाडने शुरू कर दिए थे ।

गलाल ने इन लोगो के लिए समापन गोठ का महोत्सव आयोजित किया । प्रमुख ओड और शिल्पी मदिरा पीकर बैठे हुए थे । गलाल अपने तंबू मे वक़ता भाई और रंगा आदि से बातचीत कर रहा था । इतने में एक सवार चिट्ठी लेकर आया । चिट्ठी पढकर गलाल सोच मे पड़ गया । सेनापति की मुद्रा से अकित उस चिट्ठी मे लिखा था कि सेना के जो तंबू आपको उपयोग के लिए दिए गए थे वे फटी हुई हालत में वापस मिले है, इसलिए हर तबू की दुरुस्ती के लिए कम से कम पाच रुपये भेजो, अन्यथा सभी तबू वापस कर दिए जाएंगे ।

गलाल के पास तो एक पैसा भी नही था । लाखो रुपयों का काम हुआ, पर उसने न तो कभी पैसो को छूआ और न स्वयं का वेतन लिया था । हिसाब रखने वाले हिसाब रखते थे और वेतन देने वाले वेतन देते थे । इस सारे कार्य पर परमार की निगरानी थी । तंबू भी कोई दस-बीस नही, हजारों की सख्या में थे । इतने सारे रुपये आखिर आते कहा से ?

वकता भाई और रंगा आदि से मंत्रणा के अनंतर निश्चित किया कि तंबू का उपयोग करने वाले ओडों से प्रति-व्यक्ति एक-एक रुपया वसूल किया जाए ।

रुपयो-पैसो की ज़िम्मेदारी परमार के हाथो मे होने की वजह से गलाल ने उसे बुलवाया तथा सेनापति का संदेश और अपना निश्चय कह सुनाया । अत मे कहा, "ओडो से एक-एक रुपया वसूल करो ।"

"जैसी आपकी इच्छा," परमार ने सुझाव स्वीकार कर लिया । ईर्ष्या की अग्नि तो परमार के हृदय में पहले से ही प्रज्वलित थी और ऊपर से एकलिंगजी का भेजा हुआ यह सुयोग उसे मिल गया । उसने उसी क्षण जाकर शराब के नशे मे डूबे हुए ओडों से कहा, "गलालसिह बापू का

आदेश है कि फटे हुए तंबुओ की मरम्मत के लिए प्रत्येक ओड से एक-एक रुपया वसूल किया जाए।"

सुनते ही नशे मे चूर ओडों के ललाट पर गुस्से की रेखाएं उभर आईं। जेब मे पडा हुआ पैसा निकालना किसे अच्छा लगता है; और फिर यह आदेश तो कमोबेश एक किस्म का दंड भरने के बराबर था! मदिरा-पान किए हुए तो थे ही, ऊपर से जैसे कुछ कमी रह गई थी सो परमार ने भी समझाकर बात करने के बजाय दबाव और आतंक की भाषा का इस्तेमाल किया। ओडो मे से एक अगुआ ने कहा, "ऐसा क्यो नही कहते कि गलाल बापू प्रति ओड एक-एक रुपया नजराने का मांग रहे हैं?"

परमार ने अधिकारपूर्ण और उद्धत स्वर में कहा, "हा-हा, नजराना ही सही, रख दो अभी और इसी वक्त!"

"नजराना तो राणाजी के सिवाय इस जन्म में हम किसी दूसरे को देने से रहे!"

"तो फिर रुपया दिए बगैर घाटी में से एक भी गधा बाहर निकलने से रहा।" और परमार ने अपना घोड़ा घुमा दिया। जाते-जाते कहता गया, "गलालसिंह बापू का हुक्म है कि जो ओड रुपया देगा वही घाटी से बाहर निकलेगा।"

ओडो के उस लंबे-चौडे पडाव में अल्पकाल में ही इस छोटी-सी बात ने बतंगड़ का रूप धारण कर लिया। तरह-तरह की बातें की जाने लगी, "तंबू का तो बहाना है, असल में गलाल बापू नजराना चाहते हैं। उन्हें मालूम है कि ओड लोग राणाजी के सिवाय अन्य किसी को नज़राना देंगे नही, इसीलिए तंबू के बहाने रिश्वत लेना चाहते हैं। यदि हम लोग नहीं देंगे तो उनका इरादा आगे घाटी में रोककर सारा रुपया-पैसा छीन लेने का है···"

क्रोध में उन्मत्त लगभग पच्चीस अगुआ ओड गलाल के तबू पर आए। उनके पीछे पांच सौ ओड बाहर खड़े-खड़े शराब के नशे में अंधे होकर मनमानी बकवास करने लगे। जाते ही अगुओं ने प्रश्न किया, "क्या यह सही है कि हरेक ओड से एक-एक रुपया लिया जाएगा?"

"सही है" कहकर गलाल उन लोगों को कारण समझाने लगा। पर

शराब के नशे में चूर इन लोगो ने तो गलाल के मुंह से हां सुनते ही अनाप-शनाप बकना शुरू कर दिया। किसी ने कहा, "तू राणा नही है जो नजराना मांगता है!" दूसरे ने कहा, "तू इस बहाने हमारा रुपया छीन लेना चाहता है!" तीसरे ने बुद्धि लडाकर कहा, "क्या इसीलिए तूने हमे मुहमागी मजदूरी दी थी? जरूर तेरे दिल मे पहले से पाप बसा था।" और इसके साथ ही शराब के नशे मे बेसुध बने हुए एक बूढ़े ओड ने 'थू' कहकर गलाल के चेहरे पर थूक दिया। गलाल संयम खो बैठा। एक ही लात मे बूढ़े को धूल मे मिला दिया। यह दृश्य देखते ही दूसरे ओड भी उत्तेजित हो उठे। वे लोग गलाल, वकता और रगा पर टूट पडे। बाहर भीड़ ने भी तंबू पर पत्थरों की वर्षा आरभ कर दी।

गलाल ने स्थिति की गंभीरता को तत्काल भांप लिया। उसने उसी क्षण तलवार खीच ली। वकता और रंगा आदि ने भी गलाल का अनुसरण किया। और जैसे थूहर की बाड काट रहे हों यो ओडो के घेराव में से मार्ग बनाने हुए तीनो जन निकटस्थ घुडसाल मे पहुंच गए। घोडो पर जीन कसने का भी वक्त नही था। सिर्फ लगाम चढाकर ही सवार हो गए। और फिर गलाल ने ओडो की भीड मे अपना घोड़ा छोड़ दिया और इस तेजी से हवा मे तलवार घुमाने लगा कि घडीभर मे ही फावडा-गैती घुमाती हुई ओडो की भीड़ तितर-बितर हो गई।

बाद मे पता लगा कि अकेले गलाल के हाथों अनेक ओड मारे गए थे। पर साथ ही इस मुठभेड मे कई सैनिकों सहित बत्तीस लक्षणधारी रंगा की जीवनलीला का भी अंत हो गया था।

स्वयं कठोर-हृदय गलाल भी नयनों में आंसू लिए सियाड लौटा। उसके नयनो में केवल रंगा के लिए ही नही, अपितु उन अभागे निर्दोष ओडों के लिए भी आसू थे जो कि उसके हाथों मृत्यु के ग्रास बने थे।

गलाल को तो यही लगा कि मुहूर्त के समय ढेबर को पांच बकरों का जो भोग चढ़ाया था, वह उसके लिए काफी नही था। उसे रंगा के समान बत्तीस लक्षणो से युक्त पूर्ण पुरुष के रक्त का भोग चाहिए था। उसे श्रमजीवियो के रक्त की अपेक्षा थी! इसीलिए तो बात-बात में ही

अकारण झगड़ा हो गया और शराब पिए हुए ओड बिगड पडे ! उस क्षण की स्थिति को याद कर वह बडबडाया—'भोग तो मेरा भी लिए जाने को था, पर महाकाली की करुणा से वह बच गया !'

ओडों मे से कितने ही लोग करुण क्रदन करते हुए उदयपुर जाकर महाराणा की सेवा मे उपस्थित हुए और विलाप करते हुए उन्हे अपना दुखडा सुनाया। परमार ने भी उनके पक्ष में साक्षी दी।

ओडों की करुण-कथा सुनकर महाराणा को दुख हुआ। उन्हें गलाल पर क्रोध आया। उन्होने तत्काल ही गलाल के पास काला घोड़ा और काला लिबास भेज दिया।

गलाल इसका आशय समझ गया—'देश-निकाला !'

विधि-विधान की विडबना पर आह भरते हुए निर्वासित गलाल ने काली पोशाक को ढेबर के हिलोरे लेते हुए स्याह जल मे विसर्जित कर दिया और काले अश्व को ढेबर के तट पर छोड़ दिया।

उसके अधरों पर एक विद्रूपमयी करुण मुस्कान फैल गई—'ढेबर के निर्माण के बदले में कितना श्रेष्ठ पुरस्कार मिला है ?' वह समझ ही नहीं पा रहा था कि इस विडंबना के लिए, इस त्रासदी के लिए कौन उत्तर-दायी है, किसे दोष दिया जाए ?

सियाड की धरती और ढेबर-तालाब को उसने अंतिम बार प्रणाम किया। अपने रिसाले को आगे बढने का हुक्म दिया और लीलागर पर सवार होकर, सूबेदार द्वारा राणाजी को कहला भेजा, "राणाजी से कहना, गलालसिंह ने कहलाया है :

पेली सलाम मेवाड़ ने
बीजी सरवर ढेबर ने
त्रीजी मारा तोखार ने
ने चौथी आ तलवार ने !

(पहला सलाम मेवाड़ की धरती को, दूसरा ढेबर सरोबर को, तीसरा मेरे इस अश्व को और चौथा सलाम मैं अपनी इस तलवार को करता हूं···!)

परख भी, अभिनंदन भी

सियाड से विदा लेते समय पियोली मां शायद जीवन मे पहली बार रो पडी। पियोली जितनी महत्त्वाकांक्षिणी थी उतनी ही बदनसीब निकली। गुजरात के उस छोर पर स्थित उनके पीहर मे अब चचेरे भाई का शासन था। जबकि उनके अपने राज्य में उनका स्वयं का बड़ा बेटा उनकी आशा-आकाक्षाओ के अनुरूप सुयोग्य नही था, हालांकि स्वयं पियोली का प्रभाव इतना बढा-चढा था कि वह सम्मानपूर्वक वहां मजे से जीवन व्यतीत कर सकती थी। पर इसमें भी कठिनाई यह थी कि उन्हे अपना मझला पुत्र गलाल अत्यंत प्रिय था। इसके अतिरिक्त दादागुरु के आशीर्वाद से वह रूप और शौर्य में भी इतना अद्वितीय था कि रात-दिन पियोली यही सोचती रहती थीं कि किस विधि से गलाल को छोटी-बड़ी गद्दी मिल सकती है ?

पर राजसिंहासन कोई रास्ते में तो पडा नही होता कि देखते ही देखते उसे मिल जाए। अलबत्ता ईडर का राजसिंहासन गलाल को देखते ही देखते मिल रहा था, पर उसे तो उसने स्वयं ही ठुकरा दिया था।

अभी भी यदि खुद गलाल के मन मे राजसिंहासन का अरमान होता तो जिसकी लाठी उसकी भैंस के उस युग मे गलाल जैसे मृत्यु की परवाह न करने वाले वीर पुरुष के लिए यह कोई बड़ी बात नही थी। गलाल यदि विशाल सेना खड़ी करना चाहता तो उसे धन की भी कोई कठिनाई न थी। अलीगढ मे, पियोली के पास अपरिमित धन था। और तो और, गुजरात की लूट मे सैनिको ने उसे सेनापति के रूप में नैवेद्य-स्वरूप जो धन अर्पित किया था, वह भी सेना खड़ी करने के लिए पर्याप्त था। पर गलाल स्वयं राजसिहासन की एषणा रखता हो तब न ?

सियाड छोड़ते समय मां के नयनों में आंसू देखकर गलाल समझ गया कि मां को इस समय कौन-सा दुख साल रहा है और वह मन ही मन परिताप भी प्रकट करने लगा—'यदि ईडर का राजसिंहासन स्वीकारा होता तो बेचारी मां आज कम से कम एक स्थान पर जमकर तो रह सकती थी !'

मेवाड़ की सीमा पार कर लेने के अनंतर सोम नदी के किनारे पर दोपहर के विश्राम के समय गलाल ने मां से पूछा, "बोलो मां, कहां जाना है ! इस ओर डूगरपुर है, उधर देवलिया है और इस दिशा मे बांसवाडा है । किस राज्य मे प्रवेश करना है !"

मां यह जानती थी कि राजपूत के लिए किसी भी राज्य मे जाकर नौकरी की मांग करना अपने-आप मे जरा भी हीन कार्य नहीं है। फिर गलाल का व्यक्तित्व तो इतना तेजस्वी और प्रभावशाली है कि उसके नाम और यश से अपरिचित दर्शक भी उसके प्रति सम्मान प्रकट किए बिना नही रह सकते। ऐसे युवा पुरुष का दरबार मे होना किसी भी राज्य के लिए गौरव का विषय हो सकता है। उसके होने से उस राज्य की प्रतिष्ठा में वृद्धि ही होगी। तथापि पियोली मा के मन में कहीं कुछ चुभ रहा था। वह स्वय को हीन भावना का शिकार महसूस कर रही थ

प्रश्न सुनते ही पियोली मां के मुख से एक करुण निःश्वास निकल पड़ा। उत्तर भी दिया तो ऐसे अनमने भाव से कि नाराज़गी छुप नही पाती थी, "तुम जानो और तुम्हारे सरदार जानें, बापू !"

गलाल को इस समय रंगा का अभाव बुरी तरह से अखरने लगा। रंगा अपने-आप में आधे चारण के समान था। चारों तरफ के राज्यों के विस्तार, स्थिति एवं राज्यकर्त्ताओ के गुण-दोषो की उसे ऐसी पक्की जानकारी थी कि प्रश्न किया नही कि उत्तर तैयार मिलता ! यदि रंगा आज जीवित होता तो महाराणा द्वारा भेजा हुआ काला घोडा देखते ही वह तुरंत अपने घोड़े की लगाम मुक्त छोड़ देता और गलाल मेवाड़ की सीमा से बाहर कदम रखते ही अपनी सैनिक टुकड़ी सहित पडोसी राज्य द्वारा अभिनंदित किया जाता !

डूंगरपुर के महारावल गलाल के बहनोई लगते थे। अतः अतिथि के रूप में डूगरपुर जाना किसी भी दृष्टि से अनुचित नही था। पर इसमें भी बाधा पियोली मां के स्वभाव की थी।

आखिरकार डूगरपुर जाने का निश्चय किया। भोजन इत्यादि से निपटकर जैसे ही वह सामान से लदे हुए लगभग दस ऊंट रवाना करने

लगा, कि दो घुडसवार आ खड़े हुए। ये लोग गलाल की तलाश में ही निकले थे और यह जानकर कि यह उसी का रिसाला है बहुत खुश हुए।

घोड़े से उतरकर, अगुआ दाढीधारी राजपूत ने गलाल को प्रणाम करते हुए उससे विनती की कि सलूबर के रावजी साहब ने हमें आपके पास भेजा है और कहा है कि यदि आप सलूबर को अपना वतन बनाने का निर्णय ले तो हम इस निर्णय से स्वयं को गौरवान्वित महसूस करेंगे।

गलाल को आस-पास के रजवाड़ों के विषय में पर्याप्त जानकारी थी, अतः सलूबर उसे अपने राज्य से भी छोटा लगा। इसके सिवाय वह मेवाड के अंतर्गत भी माना जाता था। पर्याप्त सोच-विचार के बाद उसने आभार प्रदर्शित करते हुए रावजी को कहलाया कि फिलहाल तो मैं डूगरपुर जा रहा हूं वहां पहुंचने पर, विचार करके आपको सूचित करूंगा।

ढेबर पर ओडो के साथ लडाई के वक्त, डूगरपुर, बासवाड़ा आदि राज्यो के संगतराश प्राण-रक्षा हेतु भाग खड़े हुए थे और रास्ते में यत्र-तत्र-सर्वत्र इस संघर्ष की खबर फैला चुके थे।

सरहद पर चौकसी कर रहे सैनिको ने यह सूचना अपनी-अपनी राजधानियों में भेज दी थी और स्वयं भी सावधान होकर ढेबर से आने वाली राह पर निगरानी रख रहे थे।

डूगरपुर की सरहद पर, एक जीर्णशीर्ण वृक्ष के ऊपर ढेबर की दिशा मे आंखें गडाए बैठे हुए एक चौकीदार ने ऊंची आवाज मे चिल्लाकर खबर कर दी, "जमादार सा'ब, सावधान! कुछ लश्कर जैसा इस तरफ आता हुआ दिखाई देता है।"

जमादार ने अपने अधीनस्थ पचीस सैनिकों को शस्त्र-सज्जित होने का आदेश दिया। चौकीदार से कई सवाल पूछकर खुद भी उस पीपल के वृक्ष पर चुपचाप चढ़ गया। उसने देखा कि एक उजाड़-से दुर्गम पहाड़ी रास्ते पर लगभग तीन सौ घुडसवार और उनके पीछे-पीछे आठ-दस ऊंट आ रहे हैं। उसने आंखें फाड-फाड़कर पहचानने का प्रयत्य किया—'कोई मुगल हैं या···!'

तुरंत नीचे उतरा। तैयार खडी टुकडी में से एक सैनिक को बुलाकर कहा, "सामने जाकर मालूम करो कि दोस्त हैं या दुश्मन? यह भी

पूछ आना कि कहा जा रहे है ?"

यह सैनिक अभी पहाड़ी के पीछे अदृश्य भी न हुआ था कि वापस लौटता हुआ दिखाई दिया। उसके साथ एक पैदल सैनिक था। अधिकारी समझ गया कि पैदल सैनिक अपना ही भेदिया है।

भेदिये से समाचार मिला कि तालाब की निगरानी रखने वाले सरदार को महाराणा ने देश-निकाला दे दिया है और उसी का रिसाला इस तरफ आ रहा है। सरदार का नाम गलालसिंह है।

पर इन लोगों को ढेबर की निगरानी रखने वाले सरदार का नाम तक मालूम नही था। इसके अतिरिक्त गलालसिंह नाम के सरदारों का पृथ्वी पर कोई अभाव तो था नही। परंतु फिर भी यह याद आने पर कि मुगलो के साथ युद्ध के दौरान गलालसिंह नामक एक योद्धा ने अपूर्व यश अर्जित किया था और वह गलालसिंह स्वय महारावल सा'ब का साला है, जमादार के मन में हुआ कि सभव है वही गलालसिंह ढेबर का अधिकारी रहा हो और निर्वासित होने पर महारावल सा'ब के पास जा रहा हो।

उपर्युक्त संभावना के बावजूद वह बेखबर रहना नही चाहता था। वह खुद घोड़े पर सवार हुआ। आधे मील की दूरी पर गलाल का रिसाला रोककर खडा हो गया। बागडी बोली मे सवाल किया, "आ रसालो केनो हे ने आप लोक क्यां जइ रह्या हो ?" (यह किसका रिसाला है और आप लोग कहां जा रहे है ?)

पियोली मां की पालकी मध्य मे थी। वकता और गलाल पालकी के आगे-आगे घोड़ों पर बातें करते हुए आ रहे थे। सैनिकों की गति अवरुद्ध देखकर वकता भाई ने पार्श्व मे से अपना घोड़ा आगे बढाया और प्रश्नकर्त्ता अधिकारी को गलाल के पास ले आया। वकता भाई ने गलाल से निवेदन किया, "ये डूगरपुर राज्य की सीमांत चौकी के अधिकारी हैं और पूछते हैं कि आप मित्र हैं या शत्रु ?"

गलाल ने मुस्कुराते हुए कहा, "संप्रति न तो हम मित्र है न शत्रु ! महारावल के अतिथि के रूप मे आ रहे है।"

अधिकारी समझ गया कि यही वह अलबेला सरदार है जो दोनों हाथों

से तलवार घुमाता है। यह वह दुर्धर्ष, दुर्दान्त एवं साहसी गलालसिंह है जिसने कि गनोरा के युद्ध मे मुगल-सेना का नाश कर दिया था। उसने राजपूती ढग से नमस्कार करते हुए कहा, "मु आपनो महारावलजी वती थी सत्कार करूं हूं बापू ! डोंगरपर ना भाग्य है कि आप'जेवा सूरवीर नां पगलां अमारी धरती पर पड़ी रह्या है !" (मै आपका महारावल सा'ब की ओर से स्वागत करता हूं, बापू ! यह डूगरपुर का सौभाग्य ही है कि आप जैसे शूरवीर के चरण हमारी भूमि पर पड़ रहे है !) और रुके हुए आगे के सवारों को 'भले-पधारो' (स्वागत है) कहकर अधिकारी ने अपना घोड़ा आगे बढाया।

अधिकारी ने डूगरपुर की ओर सवार दौड़ाकर महारावल को भी इस आगमन की खबर भिजवाई।

उस वक्त महारावल साहब शिकार खेलने गए हुए थे और महल के जिस दरोगा के पास समाचार पहुंचाए गए थे वह महारावल साहब को सूचित करना ही भूल गया।

दूसरे दिन डूगरपुर पहुंचने पर गलाल विचार में पड़ गया—'अपनी ओर से महारावल को समाचार भेजू या कि•••।'

गलाल ने हंसते-हंसते वकता भाई से कहा भी सही, "वक़ता भाई ! तोरण पर तो अभिनंदन हुआ। पर विवाह-मंडप मे जाकर भुला दिया।"

अंततः डूंगरपुर की सीमा पर स्थित गेपसागर जलाशय के उत्तरवर्ती किनारे पर उसने अपना डेरा डाला। तीन-चार दिन बीत गए, पर किसी ने उसकी खोज-खबर न ली। गलाल को सबसे अजीब बात यह लगी कि वह सैकड़ों सैनिकों के रिसाले सहित नगर के अंदर ही नही अपितु उसके प्रवेश-द्वार पर ठहरा हुआ था, पर फिर भी नगर के कोतवाल समेत किसी की जूं तक नही रेंगी थी। किसी को भी न तो उसकी उपस्थिति की खबर थी और न चिंता थी। डूंगरपुर राज्य दीपक तले अंधेरे की कहावत चरितार्थ कर रहा था।

आखिरकार एक सुबह को उसने उनकी तंद्रा तोड़ने का निश्चय किया। घोड़े पर बैठकर वक़ता भाई और अन्य पांच-सात सैनिकों सहित उसने पानी भरने को आई हुई महिलाओं को ललकारा, "पहने हुए सभी

गहने इस सीढ़ी पर उतार दो।"

सीढिया उतरकर जलाशय मे पानी भरती हुई नगर की ये आठ-दस स्त्रियां किनारे पर ही हथियारधारी घुड़सवारों को देखकर घबराहट के कारण सन्न रह गई। जैसे भय में कुछ कमी रह गई हो यू तीर-धनुषधारी गलाल ने एक पनिहारिन से कहा, "ओ पीली साड़ी वाली बाई, तू अपनी गागर को पानी पर तैरती हुई छोड़ दे और सामने से हट जा!" और जैसे ही वह स्त्री हटी, किनारे पर तीर का निशाना साधकर खड़े हुए गलाल ने, गगरी के गले पर तीर छोड़कर उसे बींध दिया। परदार बाण का पिछला भाग गागर के मुख पर ब्योत-भर दिखाई दे रहा था।

इस घटना के साथ ही न केवल पनिहारिनों में बल्कि नगरवासियों में भी रेलपेल और भगदड मच गई। संपूर्ण नगर मे हाहाकार हो गया। शूरवीर राजपूत हथियार संभालने लगे और बनिये अपना धन सुरक्षित करने में लग गए।

कोतवाल की तंद्रा टूटी। वह पांच-सात सिपाहियों सहित दरवाजे के बाहर तालाब के किनारे आया। उसने देखा कि पांच-सात घुडसवार टहल रहे है। सामने के तट पर दूर तक नजर दौड़ाई तो पांच-सात तबू और कितने ही घोड़े-ऊंट दिखाई दिए—

कोतवाल इतना घबराया कि तत्काल नगर का प्रवेश-द्वार बंद करवाकर धनमाता पर्वत के ढलान पर स्थित राजमहल की ओर दौड़ पड़ा। उसने हांफते हुए रावलजी को सूचना दी कि गेपसागर की उत्तरी पाल पर किसी ने तंबू तान रखे हैं और सेना आकर डटी हुई है। पनिहारिनों को भगाने की बात भी उसने एक ही सांस में कह सुनाई।

यह अप्रत्याशित समाचार सुनकर महारावल का चांदी का हिंडोला एकबारगी थम गया। प्रारंभिक विस्मय के बाद शांतिपूर्वक विचार करने पर यह अनुभव किया कि यदि कोई शत्रु होता और ठेठ राजधानी तक सेना सहित आ धमकता, तो पता लगे बिना नही रह सकता था। और फिर वह शत्रु इतना मूर्ख तो नही हो सकता कि तालाब के किनारे तंबू ताने पड़ा रहे। हो न हो इसमें जरूर कोई रहस्य छिपा हुआ है!

फिर भी महारावल ने एक ओर अपनी सेना को सतर्क होने का आदेश दिया तो दूसरी ओर दीवान को बुलाकर कहा, "खुद जाकर मालूम करो कि किसने पड़ाव डाला है और इस प्रकार नगर की स्त्रियों को तग करने का क्या प्रयोजन है ?"

दीवान थोड़ी ही देर में वापस लौटा। शासकीय मर्यादा खोकर हंसते-हसते महारावल से कहने लगा, "इ तो हुजूर, सहुआण राणी साब ना वचोट भाई गलालसिंग जी हे—अण ने हाथे अपनी सासुजी भी है। (हुजूर ! वे तो चौहान रानी साहिबा के मंझले भाई गलालसिंह जी हैं और साथ में आपकी सास भी है !)

इसके बाद तो नगर के सभी द्वार झटपट खुल गए। भावी संकट की संभावना से आतंकित और स्तब्ध बना हुआ वह सपूर्ण नगर गलालसिंह की यह दिल्लगी जानकर अपूर्व विनोद-भाव से आलोड़ित हो उठा।

महारावल ने जब गलाल का गाते-बजाते स्वागत करने का आदेश दिया तो डूंगरपुर के गली-कूचे और अटारियां दर्शकों की गलालसिंह के लिए प्रतीक्षा और उल्लास से भर गई। अलीगढ के नागरिकों ने तो अपने इस प्रिय राजकुमार का विजेता के रूप में अभिनंदन किया था, डूगरपुर-वासी तो उसका एक निराले रसिक पुरुष के रूप में ही अभिनंदन कर रहे थे। अपने आगमन की सूचना उसने ऐसे मौलिक तरीके से दी थी कि उसमें उसकी रसिकता, वीरता और साहसिकता तीनो ही गुण एकसाथ लोगो के समक्ष प्रकट हुए। वास्तव मे इस नगर के भोले-भाले विनोद-प्रिय लोग इस विनोदशील अतिथि पर मुग्ध हो गए।

महारावल राजमहल की छत पर से इस भव्य स्वागत को निहार रहे थे। गलाल को देखने के लिए उमड़ी हुई जनता का यह हर्षोत्साह महारावल को आवश्यकता से थोड़ा अधिक लग रहा था। मन के किसी कोने में ईर्ष्या का भाव भी सिर उठा रहा था। पर हो क्या सकता था ? स्वयं महारानी साहिबा को अर्थात् गलाल की बहन को भी यह हर्षातिरेक देखकर आश्चर्य हो रहा था।

पर सर्वाधिक अचरज की बात यह थी कि स्वयं बहन-बहनोई गलाल से मिलने पर उसके आजमाए हुए नुस्खे की बात करते-करते अपूर्व और

निराला आनंद अनुभव करने लगे ।

ढेबर की घटना का विवरण सुनकर यहां रावल ने गलाल से प्रश्न किया, "हवे तमे हों करवु मांगो हो ?" (अब आप क्या करना चाहते है ?)

"हुजूर, फिलहाल तो कुछ सोचा नहीं है," कहकर गलाल ने सलूबर के निमंत्रण की बात कही ।

"नोतरु तो आप जेवा वीर ने कोण ने आलेगा ! पण मारी सलाह तो एम हे के परायें ने आपडा बणाववा करता तो आपड नेस अपणांववु ठीक रे गा ।" (आप जैसे वीर पुरुष को कौन निमंत्रण देना नहीं चाहेगा, पर मेरी सलाह यह है कि परायों को अपना बनाने की अपेक्षा, अपनों को ही अपनाना अधिक उचित होगा ।)

"आपका परामर्श सिर-आखों पर ।" गलाल ने विवेक जताया ।

रावलजी के मन मे साले के प्रति लगाव की अपेक्षा स्वार्थ-तत्त्व ज्यादा प्रबल था । उनका राज्य छोटे-छोटे अनेक राज्यों से घिरा हुआ था । इसके अतिरिक्त एक कठिनाई यह थी कि ये सब राज्य बात-बात में नुक्स निकालते रहते थे । खासकर दक्षिणी भाग विशेष रूप से सिर-दर्द बना हुआ था ।

उस पार बांसवाडा तथा इधर मालपुर-लूनावाडा तो फिर भी शांत थे, पर परमारों का कडाणा तो ऐसा उपद्रवी था कि खुद महारावल नहीं समझ पा रहे थे कि कडाणा को राज्य कहा जाए या लुटेरों का इलाका ? यदि सीधा आक्रमण करता तो उसे सत्ता भी दी जा सकती थी, पर जो निरंतर डाका डालकर प्रजा को रुलाए उसका क्या प्रतिकार हो सकता था ? कोई ऐसा बहाना भी तो नहीं मिल रहा था कि कडाणा पर चढाई करके उसे पाठ सिखाया जा सके !

रात को महारावल ने रानी की सहायता से पियोली मां को अपने प्रस्ताव के प्रति सहमत किया और पियोली मां के द्वारा गलाल की स्वीकृति लेकर दूसरे दिन राजसभा में घोषणा की, "पचलासा में पचास हजार की जागीर और सागवाडा की सैनिक चौकी अपने नियंत्रण में रखते हुए गलियाकोट तक की रखवाली का अधिकार गलालसिंह को

सौंपा जाता है।"

गलाल तुरंत ही मां को डूंगरपुर छोड़कर तीसरे-चौथे दिन अपनी नयी जागीर की ओर रवाना हुआ। पचलासा मे पड़ाव और सागवाडा में सैनिक चौकी की स्थापना के बाद वह वकता भाई के साथ घोड़े पर सवार होकर इर्द-गिर्द के क्षेत्र से परिचय प्राप्त करने लगा।

घूमते-घूमते नदी दिखाई दी। भोमिया से खबर मिली कि नदी का नाम मही माता है।

माही नदी का नाम सुनते ही एक ओर अंतरतम मे सुषुप्त उसका रसमय अतीत साकार हो उठा और दूसरी ओर स्वप्न-गीत गाने वाले अमरिया जोगी का हृदय को झकझोर देने वाला मधुर स्वर हवा में गूजने लगा :

"महेले बेठा वेद भणे छे
तीर ना पाका ताकोडी ने
रूप नी गागर छलकये जती
मही ना काठे शाख भरी छे"

उसने भोमिया से पूछकर माही-किनारे पर स्थित शक्ति-मंदिर की दूरी ज्ञात की। मुकाम की ओर लौटते समय गलाल ने वक़ता भाई को अपने निर्णय की सूचना दी, 'कल हम हजार काम छोड़कर भी, दादागुरु के दर्शन के लिए अवश्य प्रस्थान करेगे।"

वकता भाई इस स्थल पर कहना चाहता था कि एक तरफ तो पचलासा मे हमारे लिए हवेली बन रही है और दूसरी तरफ हवेली की जमीन का मालिक जीवा पटेल क्रुद्ध होकर प्रलाप करता हुआ न जाने कहां चला गया है···! ऐसी स्थिति मे कही बाहर रात गुजारना उचित नही है।

पर गलाल उस वक्त इतना खामोश, गुमसुम और चिंतित प्रतीत हुआ कि वक़ता भाई ने संप्रति यह बात कहना स्थगित रखा। साथ ही साथ वह अस्फुट स्वरों में बड़बड़ाया भी, "मुकाम पर जाने के बाद भोजन के वक्त देखूगा···।"

पुनः माही के तट पर

भोजन के समय वक़ता भाई ने गलाल को समझाने की कोशिश करते हुए कहा, "जीवा पटेल रूठकर कुआं के ठाकुर की शरण मे गया है; और आप यह भली भांति जानते ही हैं कि महारावल का आपको पचास हजार का पट्टा देकर ताजीमदार बनाना डूगरपुर के जागीरदारो ने पसद नही किया है।"

"वकता भाई, मैं जानता हूं कि विशेषकर कुआं के ठाकुर को यह अच्छा नही लगा है। कुआं ठाकुर तो यों महसूस करता है कि इस क्षेत्र की रखवाली करने के लिए गलालसिह को नियुक्त करने का मतलब यह होता है कि हम सबने चूड़िया पहन ली हैं।"

"इसीलिए तो कह रहा हूं बापू, कि फिलहाल शक्ति-मंदिर की यात्रा स्थगित रखो!" तुरंत जोड दिया, "हम कितनी ही जल्दी क्यों न करें, फिर भी दो-चार दिन तो लग ही जाएगे!"

और गलाल ने आज पहली बार अपने प्रणयाकुल हृदय की बात वक़ता भाई से कही, "शक्ति-माता और दादागुरु के दर्शन तो करने ही है, पर खास कर मुझे उस जोगी का पता लगाना है, क्योकि उसने कहा था कि उसे दादागुरु ने भेजा है।"

गलाल का रौद्र रूप देखकर उस दिन तो गारासिह घबराया हुआ था, पर दो दिन बाद वकता भाई ने उसे अपने विश्वास मे लिया था और उसके पास से अमरिया के गांव व फूलां आदि की सारी जानकारी निकलवा ली थी। फूलां के पत्र की सूचना के साथ-साथ यह सूचना भी मिली थी कि पियोली मां के हृदय में कडाणा के प्रति तीव्र घृणा है। ऊपर से यह महत्त्वपूर्ण जानकारी भी मिली कि ढेबर के प्रसंग में जिस परमार सरदार से शत्रुता मोल ली थी वह कडाणा के राजा की सगी मौसी का पुत्र है। सारांश यह कि वकता भाई मानता था कि जोगी से सूचना मिलने पर कही ऐसा न हो कि अपने ही घर में कलह पैदा हो जाए! पियोली मा के मन में कडाणा और परमारों के प्रति पहले से घृणा थी ही और अगर इस स्थिति में बापू कही फूलां के पीछे बावले हो

गए तो इसमें जरा भी संदेह नही कि मां-बेटे में वैर पैदा हो जाएगा। वकता भाई को इस स्थल पर महाराणा जयसिंह का उदाहरण भी याद आया। अकबर के विरुद्ध युद्ध में जयसिंह ने जिस अपूर्व वीरता का परिचय दिया उसे स्मरण कर उसके मन मे यह विचार आया कि कहां उस समय का रण-बावरा जयसिंह और कहा आज का रानी के पीछे पागल जयसिंह ? स्त्री चीज ही ऐसी होती है भाई! एक बार भी यदि किसी रसिक-प्रिया की बाहें गले मे हार बनकर लिपट जाए तो समझ लो कि कितना ही युद्धोन्मादी पुरुष क्यों न हो, उसके पैरो में हाथीपाव नामक रोग फैलने लगता है! दूर क्यों जाता है, स्वयं अपने ही पूर्वज पृथ्वीराज चौहान का उदाहरण भी तो आंखों के सामने है?

पियोली मां की तरह वकता भाई भी गलाल के भविष्य के संदर्भ में अभी भी आशावादी थे। कमला रानी के मोहपाश में बंधकर महाराणा जयसिंह ने भले ही मुगल-सम्राट से सुलह कर ली हो, पर उधर मराठा शक्ति का उदय हो रहा था और लगता था कि युद्ध का वातावरण अभी भी पूर्ववत् बना हुआ है।

वकता भाई की गणना के अनुसार वास्तविक सुयोग तो अब आने ही वाला था। बल्कि उसने तो माही-तट पर घूमते-घामते भोमिया के पास से आसपास के रजवाड़ों का इतिहास सुना था और अपने मन मे कडाणा, लूनावाडा और मालपुर जैसे छोटे-छोटे राज्यों को दबोचने के मसूबे भी बांध रखे थे। और ठीक उसी निर्णायक घडी में माही-किनारे पर घूमते-घूमते गलाल को अप्रत्याशित रूप से वह जोगी याद आ गया!

गलाल के मुंह से जोगी का नाम सुनकर स्वयं वकता भाई के मन में भी वह स्वप्न-गीत एवं करुण-सा भाव उभर आया—

हणाहण घोडो
एके लीधी वनराई माथे
न पडधा उठया मही ना काठे!···

अशक्य नही कि इस समय वकता भाई को शक्ति-मंदिर तथा उसके साथ-साथ अस्ताचल दिशा में फैली हुई वह सुषमा भी याद हो आई हो। यह सब याद आने पर उसे लगा कि न तो मैने कुवरी देखी है और न उनके

मध्य घटित तलवार का आदान-प्रदान देखा है, और फिर भी यदि मेरा मन उन स्मृतियों के परिप्रेक्ष्य में आलोड़ित-विलोड़ित हो उठता है तो गलाल बापू के मन मे तो न जाने स्मृतिजन्य अनुभूतियों के कितने स्वप्न-लोक बनते-बिखरते होगे ! उनके हृदय पर जाने क्या बीत रही होगी ?

और गलाल ने जब जोगी से मिलने की बात कही तो वक़ता भाई तुरंत सावधान हो गए। कहा, "बापू, मै जोगी की तलाश करवाता हूं—एकाध पखवाड़े में पता मालूम कर लूगा।"

"बिलकुल ठीक," गलाल सहर्ष सहमत हो गया।

एक पखवाड़े की अवधि मागने के पीछे भी एक कारण था। पियोली मा झाली रानी के आग्रहवश अलीगढ गई हुई थी। झाली रानी का प्रसूति-महोत्सव था, अत उसने इस अवसर पर विशेष अश्वारोही-दूत भेजकर आने के लिए विनती की थी। और अब वह बस दो-चार दिन में लौटने ही वाली थी।

इस सारी स्थिति के आधार पर वकता भाई ने अनुमान लगाया कि एक बार पियोली मा को देखते ही अमरिया जोगी तो अपने-आप सचेत हो जाएगा और बचने का कोई रास्ता ढूढ निकालेगा। यह भी संभव है कि बापू के मन पर उसने स्वप्न के जो बीज बिखेरे हैं उन्हें उल्टे-सीधे गीत सुनाकर वह स्वयं ही धो-पोंछ डालेगा।

इस प्रकार पियोली मां के आते ही उसने अमरिया पर दूत छोड़ा। गलाल के दूत की बात सुनकर अमरिया के हाथ-पांव फूलने लगे।

लगभग एक माह पहले उसने यह उडती खबर सुनी थी कि गलाल बापू अपने बागड़ प्रदेश मे आकर स्थायी रूप से बस गए है। यह समाचार मिलते ही अमरिया चिंता-सरोवर में खो गया था—'इस समाचार से उसे खुश होना चाहिए या इसे एक मुसीबत समझना चाहिए ?' आज गलाल का निमंत्रण मिलने पर भी अमरिया उसी स्वर में बड़बड़ाया—'निमंत्रण तो मिल गया; पर ईश्वर ही जानता है कि शुभ का है या अशुभ का !' निमंत्रण अशुभ हो तो भी बगैर गए छुटकारा नही था। और अमरिया ने चार जोगियों समेत दूत के साथ ठाकरडा से प्रस्थान किया।

वक़ता भाई ने भले ही अमरिया और गलाल के मध्य पियोली मां

को दीवार के रूप में खड़ा करने की योजना बना रखी हो, पर गलाल इस बार पागल नही था कि पुरानी भूल की पुनरावृत्ति करता ! यह सुनते ही कि अमरिया को बुलाने के लिए एक दूत भेजा गया है उसने वक़ता भाई को आज्ञा दी, "सागवाडा की उत्तर दिशा में स्थित तालाब पर संध्या समय तुम उस जोगी को लेकर आ जाना, मैं आगे जा रहा हूं।" और तुरंत उत्साहपूर्वक घोड़े पर सवार हो गया।

वकता भाई के लिए अब एक ही राह शेष थी और वह यह थी कि जोगी को अपने पक्ष में किया जाए। उस पर काबू पाने के अलावा छुटकारा नही था। हवेली के मुख्य द्वार के ऊपर पहली मंजिल में वकता भाई का दीवानखाना था। जोगी के आगमन की सूचना देने वाले सिपाही से कहा, "उसे ऊपर भेज दो।"

अमरिया के उपस्थित होने पर वकता भाई ने उससे कई प्रश्न किए। गारासिंग-प्रकरण एवं अन्य सभी बातें जान लेने के पश्चात् वक़ता भाई ने सीधा प्रश्न किया, "सच-सच बता दे कि स्वप्न-गीत में वर्णित राजकुमारी कौन है ?" साथ ही चेतावनी भी दी, "याद रखना, गारासिंग भले ही स्वदेश चला गया हो, पर मेरे पास इतनी सत्ता जरूर है कि तुझे खुले आम दिन के प्रकाश मे उस नीम के पेड़ पर लटकाकर तीरों से बींध सकता हूं !"

अमरिया ने सारे रास्तेभर सिपाही से खुशामदभरी बातें करते-करते बहुत सारी जानकारी प्राप्त कर ली थी। उस जानकारी में वकता भाई की सत्ता की बात भी शामिल थी। वह इस वास्तविकता से भी भली प्रकार परिचित था कि वकता भाई न केवल गलाल के दाहिने हाथ हैं, बल्कि उनकी आंखो के समान हैं। अतः उसने वकता भाई से हाथ जोड़कर कहा, "सा'ब ! मैं तो दरअसल सोच-समझकर बापू को नाम-पता बताने के लिए ही निकला था···पर अब तो आप मेरा यह मस्तक भले ही काट डालो, इस जीवन में तो मेरे मुह से नाम-पता निकलने से रहा।"

"कारण ?" वक़ता भाई की दृष्टि मे कोतवाल की कठोरता थी।

"सा'ब ! उस रात को मुझें जीवनदान देते समय गारासिंग ने सौगंध

दी थी कि यदि किसी को भी उस कुवरी का नाम-पता बताएगा तो तुझे तेरे इस रामैये की सौगंध है ! इसलिए इस जीवन में तो···"

अमरिया का दृढ संकल्प देखकर वक़ता भाई वास्तव में प्रसन्न हो उठा, परंतु बाहर से अभी भी कठोरता जारी थी, "अभी तू गलाल बापू को नही जानता है; यह सकल्प भी उसी क्षण तक टिकेगा जब तक तू उन्हें पहचानेगा नहीं।"

"पहचानता हूं, सा'ब"

"क्या पहचानता है ?"

"कि वे अतिशय उग्र स्वभाव के है। कल की ही तो बात है जब उन्होंने क्रोध में आकर ओडो को पीस डाला था ! मुझे सब मालूम है, सा'ब !"

"तो फिर ? एक झिड़की से ही तू और तेरे पीर सब नाम-पता उगल देंगे ! मालूम है न ?"

"नही, बापू का क्रोध ज्वाला के समान प्रखर अवश्य है, पर है तो आखिर वे राजा ही न !" जोड दिया, "मैंने उन्हें देखा है, बापू ! आप भी तो सियाड में ही थे ?"

फिर तो वक़ता भाई ने अमरिया को अपने विश्वास में लिया और माजी सा'ब की अनिच्छा आदि की सारी बातें बताकर उसकी हिम्मत बंधाई, "फिकर न करना, खूब गरम हो जाएं तो भी मैं तुझे···।"

अमरिया ने उठते-उठते बीच में बोलने की बेअदबी की, "सा'ब ! आप इस अमरिया को अभी पहचानते नहीं हैं !" कधे पर लटका हुआ रामैया दिखाकर बोला, "अमरिया कभी भी इसकी कसम नही तोड़ सकता, बापू ! यह सिर्फ उसकी रोजी-रोटी ही नही है, यह उसका जीवन भी है, उसके प्राणों का प्राण है !"

और वकता भाई के आदेशानुसार साथियों सहित सागवाडा लौटते समय अमरिया अंतर्मन में सोच रहा था—'किस उपाय द्वारा इस गलाल बापू रूपी मुसीबत की घाटी को पार किया जाए ? और जहां तक गलाल बापू द्वारा नाम-पता पूछे जाने का सवाल है, वह तो निश्चित ही है

अमरिया उस दिन गारासिंग के शिकंजे से मुक्त होकर हिंसक वन्य-जंतुओं से बचने के लिए पेड़ पर चढ गया था और उजाला होते ही प्राण बचाकर भाग खडा हुआ था। गारासिग का आतंक उसकी चेतना पर इस कदर छा गया था कि हंस बनने की अभिलाषा और नशा भी काफूर हो चुका था। फूलां के जिस स्वप्न को उसने गीत मे रूपायित किया था वह कवि के रूप मे तो उसे अत्यंत प्रिय था, पर आतंकित मन:स्थिति के फलस्वरूप उसने उसे किसी भी स्थान पर न गाने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। इस संकल्प के साथ-साथ वह फुसफुसाया भी था—'इसमे तनिक भी संदेह नहीं कि यदि उस राक्षस को पता लग जाए तो वह मुझे मार डालेगा और मेरे मासूम बच्चे बिलखते रह जाएंगे।'

थोड़े दिन घर पर बिताने से अमरिया का भय कुछ कम हुआ था। भय-मुक्त होते ही उसे पुन: कुंवरी की याद आ गई। उसे लगा कि वह बेचारी तो डाल पर कौए की प्रतीक्षा कर रही होगी। इसलिए और कुछ नही तो कम से कम स्थान की सूचना तो उसके पास पहुंचानी ही चाहिए। उपयुक्त अवसर मिले तो यह सलाह भी दे देनी है कि राजमाता नागिन से भी अधिक तीक्ष्ण विषाक्त स्वभाव की है और यदि उदार-हृदय गलाल तुझसे विवाह कर भी ले तो भी तेरी यह सास ऐसी है कि किसी दिन दासियों में से किसी एक की सहायता से तुझे ज़हर देकर मारे बगैर नहीं छोड़ेगी! इसलिए मेरा कहना माने तो तू उस प्रणय प्रसंग को स्वप्न ही मान ले और किसी अन्य राजकुमार के भाग्य को रोशन कर! गलाल-सिंह सुदर और शूरवीर तो है, पर गद्दीपति नही है जबकि तुझे तो कोई गद्दीपति मिलेगा, बहन!

और अमरिया एक बार पुन: एक कंधे पर नवनिर्मित रामैया और दूसरे पर झोला रखकर कडाणा की ओर चल पड़ा। उसके पास मामूली तलवार भी थी।

सियाड के अपने कटु अनुभव के बाद उसने नियम बना लिया था कि राजा के बुलाए बगैर वह कभी अत:पुर में पैर नहीं रखेगा। इस नियम के परिणामस्वरूप वह राजमहल मे जाने के बदले, उस किनारे पर बैठकर हाथ-पैर धोने लगा और फूलां की दासी की प्रतीक्षा करने लगा

जहा दासियां पानी भरने आती थी। दूसरी दासियों को किसी किस्म का संदेह न हो इस दृष्टि से वह सतर्क होकर धोती धोने लगा और अंत में थककर नदी तट की झाड़ी पर उसे सूखने के लिए फैला दिया। राज-परिवारों की इस दृढ़ परिपाटी से अमरिया परिचित था कि वे एक-दूसरे की दासी पर विश्वास नही करते और इसलिए पानी भरने और भोजन बनाने का काम मात्र विश्वासी दासी को ही सुपुर्द किया जाता है। अतः उसने सोचा कि देर से ही सही पर सदा नही तो, कोई दूसरी दासी भी आएगी जरूर।

अमरिया का अनुमान सही निकला। उसने सदा को परकोटे की खिड़की मे से बाहर निकलते समय ही पहचान लिया, वही है! और सदा ज्यों ही परकोटे के नीचे की ढलान पार करके नदी-तट पर आई, अमरिया खड़ा हो गया। बाजू में पडा हुआ रामैया उठाकर उसे बजाने लगा।

रामैये की मधुर स्वर-लहरी सुनते ही सदा का ध्यान अमरिया की तरफ आर्कषित हुआ। उसने अमरिया को तुरंत पहचान लिया। फिर तो सदा ने मौका देखकर अमरिया को पास बुलाया।

रामैया बजाकर, दासी को गीत सुनाने का अभिनय करते हुए कहने लगा, "यहां से उठकर अलीगढ़ पहुंचा। फिर वहा से निराश होकर सियाड पहुंचा। स्वप्न के कुमार को स्वप्न-गीत सुनाया। पर नियति वाम प्रतीत होती है, बहन! राजकुमार स्वप्न-गीत के रहस्य को, निहितार्थं को पूरी तरह से समझ गया था। परंतु वह मुझे महल मे बुलाता, इसके पहले तो संदेह के कारण या जो भी कारण रहा हो उस नागिन जैसी राजमाता ने मुझ जोगी को गारासिंग राक्षस के हवाले कर दिया। वह तो यों समझो बहन, कि तुम्हारे जैसे शुभचिंतकों के पुण्य-प्रताप की मदद मिली जिसके फलस्वरूप उस राक्षस ने याचक समझकर हत्या का पाप अपने सिर पर नही ओढा और उस वीरान सघन वन में ले जाकर अंधेरी रात में मुझे वन्य-पशुओं का ग्रास बन जाने के लिए छोड दिया…। वह तो अच्छा हुआ कि ईश्वर ने मेरे छोटे-छोटे बच्चों पर तरस खाकर मुझे मृत्यु के मुख से उबार लिया और आज इस घड़ी में यह समाचार सुनाने का सौभाग्य प्रदान किया!"

इसके अतिरिक्त अमरिया ने परोक्ष रूप से फूला को यह सीख भी दी, "मुझे तो लगता है कि इस ईंधन पर मूग नही गलेंगे। शायद इसीलिए देवी सरस्वती ने बाई सा'ब के मुख में 'स्वप्न' शब्द रखा होगा !"

अमरिया को जाने की तैयारी करते देखकर सदा ने कहा, "बस, थोडे समय के लिए ठहर जा जोगी, मै महल मे जाकर लौट आती हूं," सदा ने दो घड़े सिर पर उठाते हुए कहा।

"नही, नही बहन ! मैंने तो यह समाचार इसलिए दिया कि कोई नारी आशाभरा हृदय लिए प्रतीक्षा...। "

सदा ने बीच में बात काटते हुए जैसे हुक्म-सा दिया, "अरे अब बैठ भी जा बिना डरे, मैं तो यू गई और यूं लौटी।" जाते-जाते जोड़ भी दिया, "तुझे इतनी भारी मुसीबत झेलनी पड़ी है कि बाई सा'ब अब तुझे खाली हाथ नही जाने देंगी।"

सदा अल्प समय में ही लौट आई। उसने ताबे की गगरी नीचे रख दी। कंचुकी में से एक मणिमाला निकालकर अमरिया की तरफ बढ़ाते हुए कहा, "यह पुरस्कार नही है। इसे एक स्मृति-चिह्न के रूप में भेजकर बाई सा'ब ने कहलाया है कि उस राजकुमार को तुम वह स्वप्न-गीत सुना आए, मेरे लिए तो यही बात लाख रुपयों के बराबर मूल्यवान है।"

हाथ में पावभर का वजन महसूस कर अमरिया समझ गया कि यह सोने के ठोस मनकों की मणिमाला है ! फूला की इस उदारता से अमरिया का हृदय गद्गद हो उठा। विशेष रूप से इसलिए कि राजकुमारी उसके जैसे अकिंचन याचक से कहती है कि यह तो एक स्मृति-चिह्न है !"

सदा ने घड़ा पानी मे डुबाते हुए कहा, "जोगी, तुम्हें एक काम करना पड़ेगा ! बाई सा'ब उस स्वप्न-गीत की एक प्रतिलिपि चाहती है। तुम एक कागज पर उतारकर दे दो।"

अमरिया अभी सहज रूप से झिझक-सा रहा था कि सहसा उसे याद आया कि उसने अपनी पोथी में वह गीत उतार रखा है। बैठकर जेब में से वह डायरीनुमा पोथी निकाली और अंदर से दो पन्ने फाड़कर उन्हें

तह करते हुए एक पत्थर के नीचे रखकर बोला, "मेरे जाने के बाद इसे उठा लेना।" अमरिया चट से खड़ा हो गया। रामैया और झोला कंधे पर डालते हुए कहने लगा, "बहन, तुम अभी यही खड़ी रहना। मैं उस तट पर चढ़ जाऊं उसके बाद ही यह गीत उठाना···और तो कुछ नही, पर सच्ची बात यह है बहन, कि दूध के जले को छाछ भी फूक-फूंककर पीनी पड़ती है !"

पीठ फेरते हुए कहने लगा, "बाई सा'ब को इस गरीब जोगी का नमस्कार कहना," और इन शब्दों के साथ ही अमरिया आंखें मूंद, कर-बद्ध होकर प्रार्थना करने लगा, "मां सरस्वती से विनती करता हूं कि कम से कम एक बार स्वप्नवत् ही सही, पर बाई सा'ब का उस राज-कुमार से मिलन करा दे। पलभर के लिए ही सही, पर उस स्वप्न को सत्य में परिणत कर दे !"

और अमरिया चल दिया।

अमरिया के पीछे ताकती हुई विस्मय-विमुग्ध सदा मन ही मन बड-बड़ाने लगी, "कुछ नहीं कहा जा सकता, भाई ! जोगी आधा ब्राह्मण होता है। आश्चर्य नही कि ईश्वर सचमुच उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ले !"

सागवाडा की दिशा में बढते हुए, अतीत की इन सब बातों को याद करता हुआ अमरिया स्वय से कहने लगा—'एक से तो—फूलां से तो ज्यों-त्यों कर मुक्ति मिली है, और आज यदि बापू से भी मुक्ति मिल जाए तो समझ लो कि गंगा नहाए ! फीकी हंसी हंसते हुए जोड दिया—'खैर गंगा तो अपने लिए बहुत दूर है, पर अगर मुक्ति मिल जाए तो इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि महीसागर में नहा लिया अमरिया !'

अमरिया फिर संकट में

अमरिया बकता भाई के आदेशानुसार सागवाडा के उत्तर में स्थित पगलांजी (एक लघु देवालय जिसमें मूर्ति के स्थान पर सिर्फ पाषाण में

अंकित पदचिह्न की आकृति रहती है) के निकट तालाब के किनारे जा बैठा। आज वह पुनः चिंता-सरोवर में गोते लगा रहा था। रह-रहकर वह अपने-आपसे कह रहा था—'संभल जा अमरिया ! आज फिर मृत्यु की घडी आई है। राजपूत जाति यूं भी क्रोध-जली होती है और यदि कहीं गलाल बापू ने नाम-स्थान जानने की हठ पकड़ ली तो समझ लेना कि ऐसी स्थिति में खून, मौत के अतिरिक्त अन्य कोई परिणाम हो ही नही सकता। मृत्यु अवश्यंभावी है या कसम टूट जाने से रामैया हमेशा-हमेशा के लिए हाथ से छूट जाएगा और इस प्रकार तू जीते-जी मरा-सा बन जाएगा ! मुक्ति न प्रथम स्थिति में है न दूसरी मे···!

गलाल को लीलागर नचाते हुए आता देखकर अमरिया अपने चारों साथियों सहित खडा हो गया। वह दोनो हाथ जोड़कर प्रतीक्षा में खड़ा रहा और गलाल के नजदीक आते ही उसने तत्काल झुककर प्रणाम किया, "जय रघुनाथ, बापू !"

सभी जोगियों ने एक जैसी पोशाक पहन रखी थी—धोती, मिरज़ई और गेरुए रंग का साफ़ा ! परंतु वेश की इस समानता के बावजूद गलाल ने अमरिया को पहचान ही लिया। उसे देखकर सहज रूप से मुस्कुराया।

पगलांजी के मंदिर के सम्मुख वह घोड़े से उतर पडा। घोडा छोड़ दिया। छोड़े हुए घोड़े को सिपाही पीछे की ओर जहां वकता भाई का घोड़ा बंधा था, लगाम पकड़कर ले गया।

मंदिर के प्रागण की ओर कदम बढाते हुए गलाल ने अमरिया को हंसती हुई आंखों से देखा और कहा, "तू भले ही हमारे यहां से आधी रात को भाग आया, पर तेरी धरती का दाना-पानी हमें यहां खीच लाया है।" स्वागत के लिए उपस्थित वक़ता भाई से समर्थन पाने के लिए कहा, "क्यों वक़ता भाई ! ठीक है न ?"

चूड़ीदार पजामा, रेशमी कुरता और मेवाडी पगड़ी ! झाली भाभी की कटार यथावत् लटक रही थी ! इत्र की मीठी-मीठी महक गलाल के व्यक्तित्व को एक निराली आभा प्रदान कर रही थी। गलाल का यह सादा और प्रभावशाली व्यक्तित्व तथा उसकी हास्य बिखेरती हुई मधुर वाणी सुनकर अमरिया अपनी व्याकुलता और भय भूल गया। खूटे से

छूटे हुए मुक्त एव आह्लादित बछड़े के समान उसकी वाणी भी उन्मुक्त हो उठी। कहने लगा, "धन्य है यह क्षण! धन्य है हमारा भाग्य! इसे बागड़-प्रदेश का सौभाग्य ही मानना पड़ेगा कि जिसके नाम का डंका सारी पृथ्वी पर गूज रहा है, उस वीर पुरुष के चरण-स्पर्श से बागड़ की धरती पावन हुई है!"

वकता भाई ने पुजारी को पहले से ही खबर कर दी थी कि गलाल बापू पधारने वाले है। अतः मंदिर के अग्रभाग के प्रस्तर-जड़ित चौक में पुजारी ने पहले से ही पाट पर गद्दी-तकिया बिछा दिया था।

गलाल ने सीढियों पर हरे रंग की मखमली बेल-बूटेदार जूतियां उतारी। पगलांजी की वंदना कर जैसे ही वह मुड़ने को हुआ कि पुजारी पूजा के थाल के साथ आ खडा हुआ। उसने उसके ललाट पर चंदन का तिलक किया और हाथों मे गुलाब तथा चंपा-कनेर के पुष्प अर्पित किए। गलाल ने भगवान को फूल चढा दिए और बिखरे हुए फूलों में से गुलाब का एक फूल उठाकर उसे सूघता-सूघता गद्दी पर आ बैठा। सीढियो के सम्मुख खडे अमरिया को हुक्म दिया, "इधर आ···पहले स्वप्न-गीत सुना और बाद में उसका राज़ बता। तेरे प्रदेश में आने के बाद से वह संपूर्ण स्वप्न-गीत यों महक रहा है जैसे यह गुलाब का फूल!"

अमरिया के पीछे-पीछे उसके साथियों को इस ओर आते देखकर गलाल ने आज्ञा दी, "जोगी! तुम अकेले ही आओ। उनसे कह दो कि पीछे बैठकर तंबाकू पीएं।"

गलाल ने जैसे ही सुसज्जित आसन पर स्थान ग्रहण किया, वकता भाई भी वहां से जानबूझकर खिसक गए।

अमरिया का दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। गलाल के चरणों में स्थान ग्रहण कर रामैया बजाते हुए उसने पगलांजी से प्रार्थना की, "तेरी देहरी पर बैठा हूं, प्रभु! आज या तो मेरे प्राणों का प्राण रामैया अंतिम सांस लेगा या मेरे प्राण अंतिम सांस लेंगे!" अमरिया को सहसा एक तरकीब सूझी—'इसके पूर्व कि बापू मुझसे सवाल पूछें, मैं क्यों न गीत के माध्यम से अपनी विवशता अर्ज़ कर दूं? बापू स्वयं समझदार है और यदि उन्हें सरौते के बीच सुपारी जैसी मेरी स्थिति का आभास हो

जाए तो संभव है मक्खन मे से बाल की तरह उनके हृदय मे से नाम-स्थान जानने की इच्छा भी निरपवाद रूप से निकल जाए।"

अमरिया को भले ही आशु कवि न माना जाए, पर गद्य को पद्य के रूप में गाने की शैली मे वह इतना सिद्धहस्त था कि···

और आज जैसे वह यथार्थ मे मृत्यु-घाटी के प्रवेश-द्वार पर खड़ा हो आर्त्त-स्वर मे यों गाने लगा :

सरसती ने विनवु
दातार ने लागु पाय
वणु विनंती गीत मां
म ने क्षमा बक्षी जाय

(देवी सरस्वती की वदना करता हू; दादा के चरणों मे प्रणाम करता हूं; मैं गीत के माध्यम से विनती कर रहा हू, मुझे क्षमा किया जाए।)

ईश्वर जाने अमरिया के शब्दो मे ही ऐसा कोई मंत्रबल था या उसके मर्मस्पर्शी आर्त्त कंठ मे ही ऐसा कोई जादू था कि इस पहले ही पद ने गलाल को गंभीर बना दिया।

जूनु टीपणुं गोर जुए नहि
पाछल जुए न वीर
समणा शीद संभारवा
आप तो दरिया दिल !

(पुरोहित पुराना पंचाग कभी नही देखता। वीर पुरुष कभी पीछे मुड़कर नही देखता। आपका हृदय तो सागर-सा विशाल और गहरा है। आप इस स्वप्न को क्यो याद करते है ?)

गलाल ने अनुभव किया कि जोगी की बात मे कोई रहस्य छिपा हुआ है। सवाल करने का भी विचार हुआ, पर रामैये के साथ एक-तार बने हुए जोगी का ध्यान भग करना उचित न लगा।

सूडीए सोपारी फसी
तेम जोगी वचने नाथ !
समणां ने समणुं गणों
जोगी जोड़े हाथ

(सरौते के बीच जिस प्रकार सुपारी फंसी हुई है, उसी प्रकार से हे स्वामी ! यह जोगी भी अपने ही दिए हुए वचन से बद्ध है । यह जोगी आपसे हाथ जोड़कर विनती करता है कि सपने की बात को स्वप्न ही मान लें; सपने को सपना समझकर भूल जाएं··· ।)

अमरिया ने अंतिम पंक्ति समाप्त होते ही गज-रामैये समेत दोनों हाथ ऊंचे उठा लिए, पर रामैया अभी भी अनवरत बज रहा था !

गलाल पूछे बिना न रह सका, "जोगी, आखिर ऐसी क्या बात है ?"

रामैये की धुन जगाने में एकाग्रचित्त अमरिया ने शायद गलाल के शब्द तो नही सुने थे, पर आखो के भाव से समझ गया कि बापू कुछ पूछ रहे हैं। पर अमरिया का विचारतंत्र अभी इस मनःस्थिति में नहीं था कि सार-असार का विवेचन करता। नदी में जैसे तूंबा तैरता है उसी प्रकार उसका समस्त चेतना-तंत्र दर्द-भीगे स्वरों से सराबोर हो उठा :

गज ने बाधे सांकले
मनखा ने सोगन पीर
गज तोडे, पण मानवी !
'फट रे !' कहे कबीर ।

(हाथी को जंजीर से बाधा जाता है। मानव पीर-देवताओं की सौगंध से बंधा रहता है ! हाथी अपनी ज़ंजीर तोड़ भी सकता है, पर यदि मानव अपना वचन तोड़ दे तो कबीरदास कहते है कि उस मानव को धिक्कार है।)

गलाल को अब जाकर आभास हुआ कि इस जोगी को किसी ने कसम खिलाई है इसीलिए···!

तभी सहसा जैसे आंखों में आंसू तैरने लगे हों यो दयनीय और करुण चेहरा बनाकर अमरिया गलाल की ओर निहारता हुआ गाने लगा :

छोरुं हींचे घोडीये
दुजुं वाडिया माय
जीव आपवो दोह्यलो
रामैयु मूकुं भोंय !

(एक शिशु पालने में झूल रहा है, दूसरा टोले में खेल रहा है। मेरी

दुबिधा यह है कि प्राण दे दू अथवा इस रामैये को ही चिरकाल के लिए परित्यक्त कर दू ! रामैये को भूमि पर छोड़ना प्राण देने के समान दुष्कर है ।)

और अमरिया ने रामैया सचमुच भूमि पर रख दिया। गालल भी यह दृश्य देखकर असमंजस मे पड़ गया। वह सोच रहा था—'यह आदमी ऐसा क्यों कर रहा है ?' वह झुझलाहट के साथ सवाल करने जा रहा था···

पर उसी क्षण अमरिया ने झट से रामैया उठा लिया और उसे बजाने लगा—

रामैया वीण भरथरी
असी विना रणवीर

(रामैया भर्तृहरी की वीणा है। उसके बिना जोगी की वही स्थिति होती है जो कि तलवार के बिना रणवीर की होती है ।)

एक ओर तो अमरिया का कवि-हृदय पद-रचना कर रहा था, पर दूसरी ओर उसका मन धुन में लीन था । एक के बाद एक उपमा के उस उमड़ते हुए प्रवाह में उसने एक पंक्ति और जोड़ दी :

हेवातन वीण अस्तरी
पांख विना नी चील
जीवतर बापु जाणवुं
ज्यम मडदां जीवे शरीर !

(सौभाग्य-विहीन स्त्री पंख-विहीन चील के समान है। यही समझ लो बापू कि फिर जीवन महज एक मुर्दे के समान होता है ।)

अमरिया की इस करुण पुकार ने गलाल को अशात और चिंतित बना दिया । इस प्रकार की बाते करने का कारण अभी तक उसकी पकड़ में नही आ रहा था । पता लगाने की दृष्टि से हाथ हिलाकर कहा, "जोगी ! अब रहने भी दो ।"

अमरिया ने रामैया बजाना बंद कर दिया। एकटक गलाल को निहारता रहा, पर गलाल को लगा कि उन आखों में प्राण नही हैं।

अमरिया ने अनुरोध भी किया, "बापू, एक बार मुझे गा लेने

दीजिए। बाद में यदि आपको कुछ पूछने जैसा लगे तो पूछ लेना।"

"अच्छा, अच्छा" गलाल से कहा। वह और भी प्रसन्न हो उठा।

पर इस बार भी वह कवि-जोगी, गलाल को जैसे रहस्यमय संकेतों की भाषा मे कुछ समझाने लगा

बाधी मूठी लाख नी
दलबीडयां किमत क्रोड
खुले आपु खाक नी···

(बधी हुई मुट्ठी लाख रुपयो के बराबर है; बंद हृदय का मूल्य करोडो रुपया है, पर खुली हुई मुट्ठी की कीमत धूल के बराबर है।)

इस पद को गाते समय उसने रामैया कलाई पर रखकर गलाल को अपने एक हाथ की मुट्ठी खोलकर भी दिखाई और फिर उसी हाथ की अगुली क्षितिज की ओर करके गाने लगा :

ओल्यां दलडां लोही झबोल !
(वह हृदय तो रक्त से लथपथ है !)

इसके साथ ही पुन रामैये की धुन को तेज कर दिया और फिर यकायक उसे बंद करके गाने लगा :

समणां छो पडदे रह्या
पडदे शोभे नार,
बेले भेद कढाव शो
तो पछताशो भरथार !

(स्वप्न को रहस्य के आवरण में लिपटा रहने दो। नारी भी आवरण में ही शोभा देती है। स्वामी ! ज़बरदस्ती भेद खुलवाने पर आपको पछताना पड़ेगा !)

और जैसे तन्मय होकर गलाल से कुछ कह रहा हो यों गीत की तर्ज में प्रश्न पूछने लगा :

को' तो बापु भेद दऊं
ने सोगन पाळी आज
रामैया ने आपले
छेल्लो करूं जुवार ?

(यदि आपका आदेश हो तो भेद खोल दू! और शपथ का निर्वाह करते हुए इसी क्षण रामैये को विदा दे दू, उसमे अतिम नमस्कार कर लू ?)

अमरिया ने इस पद की समाप्ति के साथ ही घुटने टेककर हाथ का रामैया गलाल के पैरो मे रख दिया। थोड़ी दूर सरककर उदास चेहरा लिए हुए बैठे-बैठे आहे भरने लगा।

दस-बीस पल की उस चुप्पी के दौरान वातावरण करुणा से आर्द्र हो गया था। चारो ओर एक अज्ञात स्तब्धता और उदासी फैल गई थी। गलाल ने अपनी छोटी पतली मूछो को लापरवाही से बल देते हुए गहरी सास लेकर एकालाप के स्वर मे कहा, "जोगी! तू साफ-साफ शब्दों मे यह क्यो नही कहता कि किसी ने तुझे बात न कहने की कसम दी है ?"

"और कसम भी रामैये की बापू!"

"किसने ?" गलाल की गुलाबी आखो का रंग पल-भर मे ही उतर गया।

"सरदार गारासिंग ने, और माजी सा'ब का भी वैसा ही कडा आदेश है।"

"क्या आदेश है ?"

"यही कि किसी को ठिकाने का या अन्य किसी का नाम-पता मत बताना।"

"और बता दे तो ?"

"बता दू तो इस रामैये की कसम दी है अर्थात् मुझे इसे जीवन-भर के लिए छोड़ देना पडेगा।" दयनीय-बेबस मुद्रा मे उसने आगे कहा, "बापू! यह रामैया मेरे जीवन की रोजी-रोटी है।"

यकायक गलाल ने अमरिया पर अपनी पैनी और गहरी दृष्टि टिका दी। उस क्षण गलाल की दृष्टि जितनी कठोर थी उतनी ही आशापूर्ण भी लगती थी। पूछा, "यदि, रोटी की व्यवस्था मैं कर दू जोगी तो ?"

अमरिया को इस प्रश्न ने असमंजस मे डाल दिया। कहने लगा, "रोटी ? बापू! आप जैसे युद्धवीर है वैसे ही दानवीर भी है। पर रामैये के अभाव मे भर्त्तृहरी और तलवार के बिना रणवीर की कल्पना नही की जा सकती। अब आप ही सोचो बापू! कोई तो एक हाथ में

हो पर आप तो दोनों हाथों मे तलवार…"

गलाल को इस समय अपनी प्रशंसा जहर से भी ज्यादा कड़वी लग रही थी। बीच मे ही बात काट दी, "उस बात को जाने दे रे! बस एक बात कह दे कि भेद बताएगा या नहीं?" गलाल का गुस्सा तीव्र से तीव्रतर होता जा रहा था।

अमरिया समझ गया कि राजपूत अब बिगड़ा है! सिर देने की या टालमटोल की बात करूंगा तो कमर मे से तलवार खीचकर उसे उतार लेने में देर नही करेगा! करुण अनुनय के स्वर में कहा, "पगलांजी की देहरी पर बैठकर मैंने आपसे कुछ भी नही छुपाया। सारी बातें कह दी है, बापू!" क्षण-भर रुककर पुनः कहा, "बापू! आप कहो तो राज़ कह दूं और जीवन-भर के लिए इस रामैये को छोड़ दू!"

"कह दे, तेरे जीवन-भर के लिए रोटी की व्यवस्था मैं करता हूं!"

गलाल का चेहरा इतना निर्मम और भीषण था कि जोगी विनती करने का साहस भी नही कर पा रहा था। पर सहसा अमरिया ने महसूस किया कि अब साक्षात् मृत्यु उसके सामने खड़ी है। ऐसी स्थिति मे भयभीत होने का भी कोई अर्थ नही है! इस अनुभूति के साथ ही याचक अमरिया सहसा कवि अमरिया बन गया। मृत्यु के प्रत्यक्ष बोध ने उसमें साहस और संकल्प-शक्ति भर दी, कहा, "बापू! शरीर पर घाव तो प्रत्येक योद्धा झेलता है, पर अंतर्मन के घाव यदि आपके समान मृत्यु की परवाह न करने वाले योद्धा नही झेलेंगे तो इस दुनिया मे दूसरा कौन झेलेगा! यह न सोचना कि छाती से रामैया छूटने की संभावना के कारण जोगी अनर्गल प्रलाप कर रहा है! क्योंकि मै आपके अनुपम व्यक्तित्व को देवता-स्वरूप मानता हूं, इसीलिए यह सब कुछ कह रहा हूं।" एकाएक उसे कुछ याद हो आया। बोला, "मेरे मालिक! भूलते क्यों हो? आपका ही तो कथन है कि हम क्षत्रिय-पुत्र, अल्पकाल के लिए लौटाने की शर्त पर उधार मांगकर जीवन लाए हैं!" बोलते-बोलते अचानक अमरिया अपना सतुलन खो बैठा। नकार मे सिर हिलाते हुए कहने लगा, "नहीं, नही बापू! अब तो आप जीवन-भर की रोटी भी बांध दो और हाथ मे रखने के लिए सोने का रामैया भी दे दो तो भी आपके

नाम पर बट्टा लगे ऐसा काम और कोई भले ही करे, पर स्वप्न-गीत का स्रष्टा यह अमरिया तो कभी नही करेगा !" रामैया को स्पर्श करते हुए कहा, "बापू ! इस रामैये की सौगंध खाकर घोषणा करता हूं कि मेरे मुंह से अब नाम-पता नही निकलेगा !" और इसके साथ ही सिर से साफा उतारकर गलाल के चरणों में रखते हुए कहा, "बापू ! इस बात को जाने दो, इसे जानने की हठ छोड़ दो !"

"पर जाने क्यों दू ?" गलाल के मुख पर जैसे परस्पर विपरीत भावनाओं का जाला निर्मित हो गया था। अंतर्द्वंद्व के कारण उसका चेहरा ऐंठ रहा था।

"बापू ! राजा-महाराजाओं की गुणगाथा तो राजसभाओं के चारण कवि भी गाएंगे, पर आप जैसे वीर पुरुषों की गुणगाथा तो केवल हम जैसे लोग ही इस पृथ्वी पर घर-घर मे गाते फिरेंगे ! क्या हम लोग यह गाएंगे कि गलाल बापू ने एक कुवरी का नाम-पता मालूम करने के लिए एक साधारण जोगी के हाथ तोड़ दिए और मयूर जैसे उसके कंठ को···"

गलाल एक विचित्र प्रकार की आत्मघुटन से छटपटाने लगा। बीच में ही चीख उठा, "बंद करो यह अनर्गल प्रलाप ! कौन सूअर तुझसे रामैया और कंठ बंद करने के लिए कह रहा है ?"

"पर अपनी सौगध का तो मुझे पालन करना ही पड़ेगा न बापू ?" अमरिया के चेहरे पर गहरी लाचारी थी। उसके विवश निरुपाय नयन कह रहे थे—'गलाल बापू ! आप समझते क्यो नही हैं ?'

अमरिया की निरुपाय विवशता और प्रश्न ने जैसे गलाल को सजग बना दिया। गम खाकर बैठा हो यो थोड़ी देर तक मूक रहते हुए मूछ के सिरे सहलाने लगा। एकाएक प्रश्न किया, "क्यों रे ! दादागुरु को तो इस बात की खबर है न ?"

अमरिया के मन में एकबारगी हुआ कि हां कह दू ताकि बीमारी टल जाए पर यह खयाल आते ही कि दादागुरु से निराश होकर लौटने पर यह बिगड़ा हुआ राजपूत उसकी क्या दशा करेगा, अमरिया ने इस विचार को तिलांजलि दे दी। बोला, "बापू ! सपने की बात तो दादागुरु

कैसे जान सकते है ? मै उन्हे हरेक गीत सुनाता हूं, पर सपने का गीत उन्हें कभी नही सुनाया !" तुरंत स्पष्टीकरण दिया, "दादा यदि पूछें तो मुझे ब्योरा देना पड़े और परिणामस्वरूप और कुछ नही तो यही होगा कि एक कुमारी की गोपनीय बात तीसरे व्यक्ति के कानो तक जाएगी ?"

गलाल अब जैसे थक-सा गया था। अंतिम निर्णय से अवगत कराने के लिए उसने कहा, "देख जोगी !···आगे-पीछे किसी से सौगंध टूटने का प्रायश्चित्त पूछ ले या कुछ भी कर, पर अब नाम सुने बिना मेरी आत्मा को चैन नही मिलेगा···तेरे सिवाय किसी दूसरे से नाम मिलना नही है···इसलिए···"

"मिल सकता है बापू ! आप यदि मागो और दूसरा दे तो···" अमरिया ने एकालाप के स्वर मे कह दिया।

"अच्छा ? तो अभी तक तूने कहा क्यों नही ! कौन है वह ?"

अभागा अमरिया ! कहने को तो यह कह गया पर दूसरे ही क्षण संकोच और झिझक से घिर गया। उसका अतर अनुभव कर रहा था कि बबूल मे उलझना अच्छा पर बडबेरी मे उलझना बुरा है। पर एक बार कह देने के वाद अब उगले बिना छुटकारा भी तो न था ! धीमी आवाज मे कहा, "बापू, माजी सा'ब जानती है।"

"हट साले, सूअर !" गलाल की रग-रग से निराशा टपक रही थी। घुटन और अकुलाहट द्विधा मे परिणत हो गई। अंतर मे जैसे कोई कह रहा था—'उधर वह तो स्वप्न-गीत लिखवा रही है और इधर यह बेवकूफ नाम तक नही बताता है और ऊपर से मां बाधक बन रही है ! आखिर मा के विरोध का कारण क्या है ? और यह रजवाडा कौन-सा है कि···'

सोचते-सोचते सहसा गलाल होश खोकर अप्रत्याशित-सा खडा हो गया। उसने अपनी कटार खीच ली। दबाए हुए दातों मे से भयानक शब्द फूट रहे थे, "भिक्षुक की जाति यों सीधे-सीधे नही मानेगी।"

भयभीत अमरिया आर्त्तनाद कर उठा, "बापू···बापू·· मर गया रे···"

गलाल ने अमरिया की गर्दन दबोच ली, "बोल, नही तो···"

पर उसी समय वकता भाई ने दौड़कर गलाल का कटार वाला हाथ पकड़ लिया, "बापू ! आप यह क्या कर रहे हैं ? इतना तो विचार करो कि यह भिक्षुक है ! इसे जीवनदान दीजिए ! मैं आपको कही से भी नाम-पता ला दूगा···इस बेचारे ने बीच मे क्या बिगाड़ा है कि इसकी जान···"

पता नहीं क्रोधाविष्ट गलाल ने वकता भाई का आश्वासन सुना भी या नही। वह अमरिया की गर्दन छोडकर सीधा सीढियो की ओर बढ गया। जूतिया पहनते हुए हुक्म दिया, "मेरा घोडा कहा है ? जल्दी लाओ···" गलाल का कदाचित् इस ओर भी ध्यान नही था कि इस बीच वकता भाई ने उसकी कमर मे लटकी म्यान मे कटार डाल दी है।

और वह घोडे पर बैठकर रवाना हो गया, नगर से विपरीत दिशा की ओर···फटी-फटी आखो से ताकता हुआ वकता भाई पीछे से बुदबुदा रहा था—'क्या पता पचलासा जा रहे है या और कही·· पर पचलासा न जाएं इसी मे भलाई है···अन्यथा इसमे जरा भी सदेह नही कि आज मा की मर्यादा का उल्लंघन होगा···'

और वकना भाई ने भी सिपाही को पुकारकर हुक्म दिया, "अबे ! घोडा जल्दी ला।" और फिर वह भी घोडे को चाबुक मारता हुआ गलाल के पीछे-पीछे दौड पड़ा। टापों की आवाज पगलाजी से प्रतिध्वनित हो रही थी, "फटाक···फटाक···फटाक···"

परिणय-निमंत्रण

वक़ता भाई ने तेजी से घोड़ा दौड़ाकर बीच मार्ग में गलाल को पकड़ लिया। चौमासे के सुहाने दिन ! आकाश मे क्षितिज-पर्यत भरी-भरी बदलियों का फैलाव ! शीतल मद मधुर पवन की हिलोरे ! चारों ओर व्याप्त वन की हरियाली मे मोर आख-मिचौनी का खेल खेलते हुए 'केंओं-केंओ कर रहे थे।

वकता भाई ने गलाल से कहा, "बापू ! इस सुहाने मौसम में तो

इस ऊंची पहाड़ी पर चढ़कर देखने का मजा है !"

"दो बार चढकर देख आया। तुम नही चढ़े कभी ?"

"ना बापू," वक़ता भाई ने झूठ बोला। वह दरअसल एक बार हो आया था।

"तो फिर घोड़े को घुमा दो।" और गलाल ने अपना घोड़ा भी पहाड़ी की दिशा में मोड़ दिया।

"घोड़ों को यही बाध दो।"

"क्यों ?" गलाल ने अचरज प्रकट किया।

"घोड़ा ऊपर नहीं चढ सकेगा, बापू।"

"किसका ? तुम्हारा या मेरा ?" गलाल ने हंसकर प्रश्न किया।

"हम दोनो का।"

"वकता भाई ! मैं तो घोड़े पर बैठकर दो बार चढा चुका हूं।"

वकता को सचमुच आश्चर्य हुआ। इतना तो वह भी जानता था कि भीमसिह का यह घोड़ा उड़न घोडा है, पर यह सुनकर कि वह इस सीधी खड़ी चढाई पर भी चढ़ गया है, उसकी नजरों में स्वाभाविक रूप से घोड़े के प्रति आदर-भाव उभर आया। गलाल को रोकते हुए कहा, "बापू ! लीलागर तो चढ़ जाएगा, पर मेरा घोड़ा नही चढ़ सकेगा !"

"चढाकर देखो तो सही !"

"ना बापू ! मुझसे यह पागल दुस्साहस नहीं होगा।"

इस पर गलाल ने भी अपना घोड़ा वापस मोडा।

गलाल को शांत करने का जो काम वक़ता भाई पर्वत-शिखर पर बैठकर करना चाहते थे, उसमे से आधा तो जैसे इस बातचीत के पहले ही और आधा इस बातचीत के दौरान ही पूरा हो गया था। पास की एक चोटी पर घोड़ा चढ़ाते हुए कहा, "आओ बापू, जरा इस पहाड़ी पर बैठें।"

पहाड़ी पर चढकर चारों ओर दृष्टि घुमाते हुए गलाल ने कहा, वक़ता भाई, वर्षाॠतु तो वास्तव मे सुदर ॠतु है।"

"इस शिला-खंड पर बैठना है क्या ?"

"बैठते हैं।" कहकर गलाल घोड़े पर से नीचे उतरा।

वकता भाई ने घोडे की जीन पर से गोटदार गदला उतारकर शिला-खंड पर बिछा दिया। गलाल चारों ओर नजर डालता हुआ थोड़ी देर के लिए उस शिला-खंड पर खड़ा रहा। पुनः उसी वाक्य को दुहराया, वर्षाऋतु वास्तव में सुदर ऋतु है।"

"हां बापू, मां-बाप के समान।"

गलाल इस समय कहना चाहता था 'झाली भाभी के समान', पर वक़ता भाई के साथ इस किस्म की बात उसने पहले कभी नही की थी। अतः हंसकर सिर्फ इतना ही कहा, "तुम्हें माता-पिता के सिवाय कभी और कुछ सूझता ही नही।"

यह सुनते ही वकता भाई ने माता-पिता और धरती के बीच तुलना करना आरंभ कर दिया, "मा-बाप जिस प्रकार संतान का पालन-पोषण करते हैं उसी प्रकार से···"

पर गलाल की आखें दूर क्षितिजों में डूबी हुई थी। वह उन्ही में नजरें गड़ाए खोया-खोया सा, अनुपस्थित-सा खड़ा रहा। उसकी अंतरात्मा अंतरिक्ष में पंख पसारे अपनी प्रिया को खोज रही थी। बात समाप्त होने के पहले ही वह एकालाप के स्वर मे बोल पड़ा, "इस तरफ माही है और वह रहा कडाणा!"

कडाणा शब्द सुनते ही वक़ता भाई चौंक पड़े।

गलाल ने अपनी उंगली किंचित् अस्ताचल दिशा की ओर उठाकर कहा, "वह रहा लूनावाडा और मुझे लगता है कि मालपुर तो इधर पश्चिम की ओर ही है!"

"हा बापू, थोडा दक्षिण की ओर ढला हुआ है।"

"इस तरफ कौन-कौनसे राज्य है?"

"छोटे-छोटे कई राज्य हैं बापू!" वकता भाई समझ गए कि बापू का चित्त अभी भी उस सपनों की राजकुमारी में खोया हुआ है और दूर-दूर तक फैली हुई इन पहाड़ियो में उसे खोज रहा है।

उल्टी-सीधी इधर-उधर की कितनी ही बातो के बाद वक़ता भाई ने गलाल के क्रोध और जोगी के प्रसंग को पुनः हौले से उठाया, "बापू! राजहठ और जोगीहठ का मिलन हो गया। पर उस बेचारे को तो

लेना-देना कुछ भी नहीं और व्यर्थ ही मारा जाता।"

"मेरे स्थान पर यदि तुम होते तो तुम्हें भी गुस्सा आए बगैर नही रहता।" गलाल के मुख पर गभीरता विराजित थी।

"नही बापू। आप भूल कर रहे है! आप मानो या न मानो पर अपने राम तो नारी को मात्र मोह की खान मानते है। दूर क्यो जाए, अपने पूर्वज पृथ्वीराज का उदाहरण सामने है। उन्होने संयुक्ता को तलवारो के साये मे से उठा तो लिया, पर वही पृथ्वीराज अंततः संयुक्ता की बाहों में कैदी बन गया।" तुरंत जोड़ दिया, "और चदावत का ही किस्सा लो न! कल की ही तो बात है! यह तो ठीक हुआ कि उसकी रानी सच्ची क्षत्राणी थी और उसने अपना सिर काटकर दे दिया, वरना वह भी ऐसा कौन-सा जूझनेवाला वीर था? अरे, दूर क्यों जाते हो, महाराणा जयसिंह का उदाहरण तो बिलकुल प्रत्यक्ष ही है! कहा तो शहजादा अकबर की सेना का सर्वनाश करने वाला प्रतापी जयसिंह और कहा यह महारानी कमला देवी के बाहुपाश मे खोया हुआ जयसिंह! पियोली मा यह सब समझती है; इसीलिए उन्हे यह डर है कि जो कुवरी भिक्षुओ से गीत लिखवाती है और··"

वकता भाई अनवरत गति से बोलते जा रहे थे, पर इनमे से एक भी बात गलाल के मन-मस्तिष्क को नही छू रही थी। सिर्फ अतिम बात ने उसे छू लिया। एक लंबी सास खीचकर बीच मे कहा, "खैर वकता भाई! मां का विचार यदि यह है तो यही सही।" खड़े होते हुए कहा, "तुम सच कहते हो, बीच मे वह जोगी बेचारा बिना वजह मारा जाता!" और फिर घोडे पर बैठते समय तनिक कटु स्वर में चेतावनी दी, "वकता भाई! मेरे आगे भविष्य मे यह प्रसंग भूलकर भी मत उठाना।" और ढलाऊ जमीन होते हुए भी गलाल ने अकारण ही घोड़े को एड मारी! पर घोड़ा स्वयं समझदार था। इतना तो आखिर वह भी समझता था कि इस ढलान पर दौड़ने मे कोई तुक नहीं है।

गलाल के मन मे कई बार यह प्रश्न उमड़ता था कि यह पगली नारियल या ब्राह्मण क्यो नही भिजवाती? जोगी ने उसे वापसी पर समाचार तो दिए ही होगे न, कि अब मेरा मुख्य आवास पचलासा

है। महारावल ने मुझे गलियाकोट तक की रक्षा का दायित्व सौपा है। तीन-चार सौ सैनिको का थाना सागवाडा मे स्थापित किया गया है। यह सारी बातें आस-पास के राज्यो मे भी पहुची ही होगी ?"

गलाल के मन मे एक बार तो यह विचार भी उठा कि जोगी को ही बुलाकर पूछ देखू। उसने कुवरी को जरूर जवाबी समाचार भेजा होगा और निर्विवाद रूप से यह खबर भी पहुंचाई होगी कि मैं यहां आकर बस गया हूं।" पर साथ ही गलाल का दूसरा मन जोगी का मुह देखना तक पसद नही करता था और विशेष कर इसलिए कि गलाल अपने ही अवश क्रोध से डरता था। नारियल अथवा सदेश न आने का गलाल ने यह अर्थ निकाला कि शायद राजा अपनी बेटी के लिए गद्दी-धारी की महत्त्वाकाक्षा रखता होगा अथवा किसी हीन कुल का राजपूत होने की वजह से वह हमारी ओर से अपमानित किए जाने के भय के कारण नारियल नही भेज रहा है।

सोचते-सोचते आखिरकार उसे कारण भी मिल गया। उसने स्वयं से कहा—'क्यों भूलता है गलाल ? पियोली मां तो जोगी का वध करवाने की सीमा तक जा पहुची थी। इसका सीधा-सीधा मतलब यह हुआ कि उन लोगों की प्रतिष्ठा अच्छी नही है और खास कर जोगी की आपबीती सुनने के बाद तो वे क्यो पहल करके नारियल भेजेंगे ?'

इस घटना को बीते एक पखवाडा भी नही हुआ था कि गलाल के लिए एक नही अपितु दो-दो कुवरियो के नारियल आए। साजा और सादरवाड़ा नामक दोनो ठिकाने प्रतिष्ठित और कुलीन थे। वे दंडनायक की सत्तासहित गद्दीधारी गिने जाते थे।

वकता भाई ने ब्राह्मण को अतिथिशाला मे ठहराया और गलाल बापू को समाचार देने के लिए खुद हवेली पर पहुंचे।

समाचार सुनकर गलाल का हृदय पुलकित हो उठा। उसे लगा कि दो में से एक तो जरूर स्वप्न-रूपसी होनी चाहिए। संभव है जोगी ने वहां जाकर आपबीती सुनाई हो। उसने सहर्ष वकता भाई से कहा, "वक़ता भाई ! नारियल ले लें ?"

"पर मा से पूछना तो पडेगा न ?" आंखों में सहज उपालंभसहित

वक़ता भाई ने हंसकर प्रश्न किया।

गलाल को अब याद आया कि उसके पिछले पैर घोड़े के पिछले पैरों के समान बंधे हुए है। वह निर्णय लेने को मुक्त नही है। कहा, "एक बार ब्राह्मण को तो बुला लें ? उससे विस्तृत जानकारी मिलने के बाद ही मा से पूछेंगे।"

खुद वकता भाई भी सोचते थे कि नारियल झेल लेना बुरा नहीं है। कुल भी श्रेष्ठतर था और उन लोगों की जागीर भी गलाल की जागीर की अपेक्षा बड़ी थी। अलबत्ता इन लोगो के पास निशान-डंका नही था और इसलिए वकता भाई को डर था कि जब पियोली मां मान लें तभी समझना चाहिए कि उन्होंने मान लिया है। इसके अलावा एक बाधा यह भी थी कि ब्राह्मण, अकेले गलाल के आगे गुणगान करे यह भी स्थापित परिपाटी के विरुद्ध था। इसलिए उसने गलाल को राजी करते हुए कहा, "बापू ! एक बार दीवानखाने में बैठक हो लेने दो मा भी पृष्ठभूमि में चिक के पीछे बैठी होगी और ब्राह्मण का निवेदन वे भी सुनेंगी। बाद में यदि हमें ब्राह्मण से कुछ पूछना होगा तो उसे अपनी मेडी पर बुला लेंगे।"

गलाल सहमत हो गया।

ढलती संध्या के समय हवेली के मुख्य द्वार के ऊपर दीवानखाना सजाया गया। पियोली मां भी परदे की ओट में आ बैठी। ब्राह्मण ने इस अवसर पर सरस्वती का मुलम्मा चढाई हुई अपनी जिह्वा मुक्त छोड़ दी और उसने ठाकुरों की कुल-परपरा और कुवरियों के सौदर्य की भूरि-भूरि प्रशसा की।

पियोली मां ने वक़ता भाई की मार्फत कुंवरियों के ननिहाल के विषय में कई प्रश्न किए। अत मे कहा, "सोच-विचारकर कल उत्तर दूगी।"

पर गलाल तो पहले ही निश्चय कर चुका था। ब्राह्मण ने कुंवरियों की प्रशंसा करते समय कहा था कि दोनों ही पढी-लिखी है और उनमें से झाली कुंवरी तो संस्कृत की विदुषी है। इसके अतिरिक्त पतली ग्रीवा और गौरवर्ण की स्तुति भी स्वप्न-कुमारी की आकृति से मेल खाती थी। फिर भी उसने सांझ को विलंब से ब्राह्मण बुलाकर उससे दो-चार सवाल

पूछ ही लिए। पहला सवाल था, "इनमे से किसी को हथियारों का प्रयोग करना आता है ?"

"हा बापू, दोनों ही निपुण हैं।"

"उन्हें कौन-सा हथियार अपेक्षाकृत अधिक प्रिय है ?"

जैसे कागज पर लिखकर तैयार बैठा हो यों ब्राह्मण ने जवाब दिया, "तीर-धनुष ज्यादा पसंद हैं ?"

"किस कुंवरी को ?"

"झाली कुंवरी को"

इस स्पष्टीकरण के साथ ही गलाल के मन मे पक्की गांठ लग गई—'वही है, वही है भाई ! जोगी ने ऐसा ही कहा था कि महलो में बैठकर वेद पढती है और तीर चलाने में निपुण है। यही है वह झाली, गलाल !'

और वकता भाई से यह जानकारी मिलने पर कि पियोली मां इस संबंध के विषय में इच्छुक नहीं हैं, गलाल को एक सौ एक टका विश्वास हो गया कि वही है ! उसने तिक्त हसी हंसते हुए वकता भाई से कहा भी सही कि मां की 'नही' तो नारियल न आने के पहले से विद्यमान है !

पियोली मां की ना सुनकर यदि वकता भाई स्वयं पशोपेश में न पड़ा होता तो शायद वह गलाल के कथन का आशय भी समझ जाता। गलाल के मूल अभिप्राय को न समझते हुए उसने उस कथन को इस रूप में लिया कि मां पहले से ही किसी बड़े राज्य की कुंवरी की तलाश में है ! उसने प्रश्न किया, "आपका क्या विचार है बापू ?"

"बस विचार ही विचार है। ले लो नारियल, वकता भाई !"

"एक या दोनों ?"

"दोनों। किसी का नारियल यू वापस थोड़े ही ठेला जा सकता है ?"

वक़ता भाई को हंसी आई। विनोदपूर्वक पूछा भी, "और यदि तीन आए होते तो ?"

"वक़ता भाई ! चार आए होते तो चारों स्वीकार कर लेता।" गलाल की आंखों में एक विशेष प्रकार का विनोदशील दर्प था।

"परंतु मा जो मना कर रही है। उसका क्या होगा ?"

"तुम जानो।" क्षण-भर रुककर बोला, "मुझसे तो आया हुआ नारियल वापस नही किया जा सकेगा।"

"ठीक है, वापस नही करना चाहिए। पर मां के प्रतिवाद का क्या होगा ? उन्हें कैसे समझाऊं ?"

अपने अभिमत के प्रति वकता भाई का शतप्रतिशत समर्थन-भाव देखकर गलाल जितना निश्चित हो गया उसी अनुपात में वह अपने सकल्प में भी निश्चित हो उठा। अब तो जैसे परेशानी और चिंता का सारा बोझ वक़ता भाई के कंधों पर हो यों मनमौजी स्वर मे कहने लगा, "चाहे कुछ भी हो जाए वकता भाई ! परतु मुझको तो कल सवेरे दीवान की बैठक बुलाकर दोनों नारियल स्वीकार करने ही है।"

वकता भाई संकट मे फंस गया।

रात को वह पुनः पियोली मा से मिला। निवेदन किया, "बापू का इरादा दोनो नारियल स्वीकार करने का है। तो क्यो नही..."

पियोली मां ने व्यंग्य के स्वर मे कहा, "वकता भाई, मैं बखूबी जानती हूं कि तुम और बापू एक हो।"

वकता भाई जानता था कि पियोली मां जब गुजराती छोड़कर खड़ी बोली बोलने लगती है तो समझ लेना चाहिए कि उस समय वह किसी की बात नही मानेंगी। अतः इस पृष्ठभूमि को ध्यान मे रखते हुए अब तक तो वह इस प्रकार की किसी भी स्थिति के दौरान 'जो आज्ञा' कहकर पियोली मां की बात को स्वीकार कर लिया करता था। पर आज तो वह हंसते-हंसते कहे बगैर न रह सका, "मां ! आपने ही हमे बचपन से एक बनाकर रखा है। आप तो जानती ही हैं कि जवान बेटे और विवाहित बेटी के पैर आगे ही बढ़ते हैं...।"

अपनी पचपन वर्ष की उम्र मे शायद आज पहली बार पियोली मां को कलियुग की उपस्थिति का बोध हुआ। बेटा मा की इच्छा का अतिक्रमण करने को कटिबद्ध था और यह वक़ता भाई भी आज उसे सीख देने लगा था ! इसे कलियुग नही तो और क्या कहा जाय ? निर्मम हंसी के साथ कहा, "वक़ता भाई ! तुम्हारा कथन सही है। युवा व्यक्ति की

बुद्धि बढती जाती है और बूढ़ों की खिसकती जाती है।"

"ऐसी तो कोई बात नही है मा सा'ब, पर···"

"नही कैसे है ? इसी कारण से तो तुम लोग मुझे उपदेश देने लगे हो।"

वकता भाई को लगा कि यह घर अमंगल के साये से घिरा हुआ है। इधर यह मां किसी की बात सुनने को तैयार नही है और उस ओर गलाल ने मन ही मन नारियल स्वीकार कर लिया है। उठने का उपक्रम करते हुए वह यह कहे बगैर न रह सका, "मा ! मा-बेटे के रास्ते अलग-अलग होते नजर आ रहे हैं।"

"पर पुत्र मां की राह पर नही चलेगा तो क्या पुत्र की राह पर मां चलेगी ?" और इस प्रश्न के साथ ही मा बुरी तरह से उखड़ गई। "बेटे की नीयत तो देखो जरा ! जो लडकी जोगियो के हाथ संदेश भेजती है और उन्ही से गीत लिखवाती है, उसे वह अपनी रानी बनाना चाहता है। और आज···। मैंने तो इस साजा-सादरवाड़ा का नाम भी आज जीवन में पहली बार सुना है !"

वक़ता भाई को पियोली मां बुद्धिहीन प्रतीत होने लगी। वह जवाब में कहना चाहता था कि साजा-सांदरवाड़ा की जागीर यदि हमारे जैसे किसी जागीरदार को कुवरी दे रही है तो यह हमारा नही अपितु उसका बड़प्पन है। पर खुद को प्रताड़ित करवाकर यदि भागना होता तो वह ये शब्द बोल सकता था—"यदि बापू मान जाए तो समझाने की कोशिश करता हूं।" यो कहकर वह पीठ फेरते हुए महत्त्वाकाक्षिणी पियोली मां के दुराग्रह पर बड़बडाने लगा—'नाकेदार की मा नींद मे भी बनजारों के काफिलो को बराबर याद करती रहती है।'

और फिर अमरिया

पियोली मां ने गलाल को नारियल स्वीकार करने से मना किया, उसके पीछे एक ठोस कारण था। जब पियोली मां अलीगढ़ गई थीं तो प्रसूति के लिए पीहर जाते समय झाली रानी ने कहा था कि गलाल

बापू के विवाह के विषय में अभी शीघ्रता मत करना। इसके अतिरिक्त सत्य यह था कि पियोली मा के मन में बागड़-गुजरात के रजवाडो के प्रति कोई खास अच्छी भावना नही थी। वह उनसे इस सीमा तक विमुख और उदासीन थी कि यदि एक तरफ गुजरात-बागड़ के किसी गद्दीधारी की लड़की को बहू के रूप मे पसंद करने के लिए कहा जाता और दूसरी तरफ मेवाड के किसी ताजिमदार की लड़की को, तो वह निर्विवाद रूप से मेवाड़ के ताज़िमी जागीरदार की कुवरी को प्राथमिकता देती!

साज-सादरवाडा का विवाह-प्रस्ताव आने पर तो उसे कडाणा भी अपेक्षाकृत बेहतर प्रतीत होने लगा। वकता भाई के जाने पर पियोली मां ने अपने मन में निश्चय भी किया—'यदि बापू ने अपनी हठ नही छोड़ी तो उसके आगे कडाणा की कुवरी का रहस्य प्रकट कर दूगी और कहूंगी कि कुछ दिन कडाणा के नारियल की और प्रतीक्षा कर। यह सही है कि उस पत्र-वाहक सरदार और जोगी ने कुंवरी को निराश कर दिया होगा, पर यदि वास्तव मे निराश कर भी दिया हो तो कडाणा यहा से कहां दूर है? जोगी भी तो इसी क्षेत्र का, सागवाडा के पास का रहने वाला है। उसका पता मालूम कर परोक्ष रूप से यदि उसे आशा बंधाऊंगी तो पुरस्कार के लालच में वह स्वयं कडाणा जाकर निश्चित रूप से उस कुंवरी के कान फूक आएगा!'

पर तभी पियोली मां को जल्दी सुबह मे खबर मिली कि गलाल ने तो दीवानखाना भरकर दोनो नारियल स्वीकार कर लिए हैं। पियोली मां के मन मे क्रोध का दावानल धधक उठा। इस अपमान से उनके सिर से पैरे तक आग लग गई। यह सोचकर उनका अंग-प्रत्यग जल उठा कि किसी ने उन्हें पता तक न लगने दिया। क्रोध के वशीभूत होकर वह शाप-वर्षा करने लगी—'जन्मदात्री मां का अपमान किया!! देखती हूं तू कैसे साज-सांदरवाडा की रानियो का सुख भोगता है! दीवानखाने से सेवक गुड़-धनिया लेने आया तो उसे भी खरी-खोटी सुनाई। ऊपर से कहलवाया भी, "बापू से कहना कि नारियल यदि मा के मदिर में रखेगा तो फेंक दूगी। रखे अपने खुद के महल मे और बारात भी उधर से ही निकाले!!"

गलाल कौन-सा कम था ? वह भी तो आखिर उसी मां का बेटा था। उसने बाजार से गुड़-धनिया मंगवाकर वितरण करवाया और गण-पति-स्थापना करवाकर नारियल अपने ही महल मे रख लिए। जोश ही जोश मे लग्न का मुहूर्त भी निकलवाया, "पंचांग देखो, महाराज ! बिल-कुल नजदीक का मुहूर्त निकालो।" याद आने पर पुनः कहा, "दशहरे के दो-तीन दिन बाद की तिथि देखना।"

बाजू में बैठे हुए उदास वकता भाई की ओर देखकर कहा, "दशहरे की सवारी पर डूंगरपुर जाना पडेगा, तुम्हें याद है न ?"

"बापू, मेरा इरादा तो आज ही प्रस्थान करने का था। पिछले साल तो हम एक प्रकार से अतिथियो की स्थिति मे थे। पर औपचारिक तौर पर तो हम पहली बार ही शामिल हो रहे हैं, अतः जल्दी पहुंचकर यह भी देखना पडेगा कि हमें कौन-सा स्थान दिया जाता है ?" पलभर रुक-कर जोड़ दिया, "बापू, दो-चार दिन पहले जाना ही उत्तम और उपयुक्त होगा !"

"ठीक है, कल प्रस्थान करेंगे।"

"पर आप तो यहां लग्न-मुहूर्त निकलवा रहे हैं ?" वकता भाई ने सिर खुजलाते हुए कहा।

ब्राह्मण ने पंचाग में से सिर उठाते हुए कहा, "नजदीक का मुहूर्त शरत्-पूर्णिमा का है। उसके बाद आता है आश्विन के कृष्णपक्ष की पंचमी का। इसके बाद तो दीवाली का पर्व आ जाता है और दीवाली के बाद योग है कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी का और उसके बाद तो···"

"आश्विन कृष्ण पक्ष की पंचमी का ठीक रहेगा, क्यों वक़ता भाई ?"

वकता भाई का विचार यथासंभव दूर की लग्न-तिथि रखने का था। इस विचार के मूल में कारण यह था कि गलाल को लोक-प्रथा के अनुसार एक माह तक नहीं तो कम से कम बीस दिन तक तो पीठी (उब-टन) चढनी ही थी। और इतने लंबे अंतराल के दौरान यह आशा की जा सकती थी कि पियोली मा के गुस्से का पारा कुछ तो उतरेगा ही···।

अंततः कार्तिक शुक्ला पंचमी को पाणिग्रहण संस्कार निश्चत करने

के उपरांत साजा-सांदरवाड़ा के ब्राह्मण को पोशाक देकर बिदा किया।

आशीर्वाद देकर जैसे ही ब्राह्मण रवाना हुआ पियोली मां के अग्नि-मुख से पुन. शाप-वर्षा होने लगी।

वस्तुत. गलाल का इरादा दूसरे दिन डूगरपुर पहुंचने का था, पर मां के क्लेश के कारण वह उसी सांझ को अपने विशेषाधिकार के अनुरूप पचास सवारो सहित दशहरे की सवारी में शामिल होने के लिए निकल पड़ा। दूसरे ही क्षण हवेली के दारोगा को बुलाकर पियोली मा ने हुक्म दिया, "इस क्षेत्र में एक जोगी कविता करता है, उसका पता लगाकर उसे आज शाम तक मेरे सामने उपस्थित करो। यही कही सागवाड़ा के इर्द-गिर्द रहता है।"

दारोगा गारासिंग का संबंधी था। नौकरी छोडकर स्वदेश जाने के पहले गारासिंग ने माजी से कहा था, "यह मुझसे भी सवाया है, मांजी सा'ब!"

हालांकि यह आदमी शारीरिक बल की दृष्टि से तो बढकर नही था, पर बुद्धि-बल में अवश्य सवाया था। पियोली मां के महल से निकल-कर उसने पहली तलाशी मदिरालय की ली। एक दृष्टि से देखा जाए तो उसका यह अनुमान मिथ्या था। अमरिया इतना पियक्कड़ नही था कि मदिरालय का मालिक उसे पियक्कड़ के रूप में पहचानता। पर यह सुनते ही कि वह कविता करता है, न केवल दूकानदार बल्कि दो-चार दूसरे व्यक्ति भी बोल पड़े, "आस-पास के संपूर्ण प्रदेश में जोगियों की जाति मे यदि कोई कवित्त-रचना करने वाला है तो केवल एक वही है और वह है ठाकरडा का जोगी अमरिया!"

दारोगा ने हवेली में लौटकर सांढनी-सवार रवाना किया।

और आज पुनः सांढनी पर सवार होते समय अमरिया मन ही मन शक्ति मां से प्रार्थना करने लगा—'मां! सब कुछ तेरे हाथ में है! कौन जाने मांजी सा'ब का आदेश हर्ष का निमंत्रण है या मौत का संदेश।'

उसके परिताप की सीमा न थी—'पता नही मेरा ऐसा कौन-सा, दुर्भाग्य जगा कि मागना छोड़कर हंस होने की आकांक्षा जगी?' ठाक-रडा से पचलासा की ओर पवन-वेग से जाती हुई सांढनी पर बैठा-बैठा

अमरिया मन ही मन सुगबुगा रहा था—'अब तो अमरिया, तुझे स्वदेश छोड़े बिना छुटकारा नही है। कुशल-क्षेम से वापस लौटने का अवसर मिले तो बागड़ की धरती को अतिम प्रणाम करके कडाणा की ओर कूच कर देना···फूलकुवर को तेरे चपत हो जाने की सूचना मिलने पर वह गलाल बापू से भी सवाई निर्वाह-वृत्ति बांध देगी और अब तो फिर कुआ गाव से लालजी पांडोर नाराज़ होकर कडाणा गए है और सुना है कि कडाणा दरबार के दाहिने हाथ बन गए है। यदि लालजी पाडोर से भेंट हो जाए तो तेरी चारो उगलिया घी में समझ, अमरिया !'

सोचते-सोचते अमरिया के मनोलोक मे कडाणा की राजसभा प्रत्यक्ष हो उठी। लगभग पैंतालीस वर्षीय छोटे कद का कालूसिह-दरबार, हीरे-मोती के आभूषण धारण किए—गद्दी-तकिये पर ढला हुआ शराब पी रहा है कि लगभग बाईस वर्षीय कुंवर अनूपसिह कुंवरी की तरह आभूषणों से लदा दूसरी गद्दी पर बिराजमान है और लालजी पाडोर तथा कुछ अन्य खुशामदी जाजम पर बैठे हुए है। और वह स्वयं एक कोने में बैठकर मदिरा के नशे में डूबता-उतराता एक के बाद एक गीत सुनाता जा रहा है···संपूर्ण सभा से साधुवाद की ध्वनियां उठ रही हैं और उस तुमुल वाहवाही के बीच लालजी पाडोर उससे अनुरोध करता है, "रह जा कवि कडाणा में ! इरादा हो तो हुजूर से निवेदन कर चार हल की जमीन निर्वाह-वृत्ति के रूप मे दिलवा दू !"

अमरिया मीठी कल्पनाओं के गगन में विहार कर रहा था कि तभी सांढनी हवेली के प्रवेश-द्वार पर आ पहुंची। अमरिया ने मुख्य द्वार के बाहर ही सांढनी को रोकने की विनती की। उसे डर था कि एक जोगी का साढनी पर बैठकर गढी मे प्रवेश करना बेअदबी का सबूत माना जाएगा। पर साढनी-सवार के कान में तो अभी भी दारोगा का आदेश भंवरे की तरह गुनगुना रहा था—'अमरिया को दौडती हुई साढनी पर लिवा लाओ।' अतः आदेशानुसार वह साढनी को सीधा द्वार मे ले गया।

मुख्य द्वार के ऊपर दीवानखाना था। आगे लंबा-चौड़ा मैदान था। बीच में एक चबूतरे वाला भीमकाय नीम का पेड़ था। चौगान के दोनों

तरफ बारह्-बारह् कमरे थे। एक भाग मे घुड़साल तथा पालकी इत्यादि तो दूसरे मे वकता भाई, और दारोगा आदि के दफ्तर बने हुए थे। सामने के हिस्से में कई मजिलो वाली हवेली बनी हुई थी। हवेली मे प्रवेश के लिए पृथक् से दरवाजा था।

इस द्वार के निकट पहुचने पर सवार ने साढनी को झुका दिया। दारोगा दरवाजे की बगल में से बाहर आया और अमरिया से सवाल किया, "तू ही अमरिया जोगी है न ?"

"हां बावजी !" अमरिया के प्राण आज पुन: सियाड में अनुभूत भय के अनुभव से सिहर उठे।

"मेरे पीछे-पीछे आ !" दारोगा आगे बढ गया।

अमरिया भय, अनिश्चय और आशंकाओं के जंगल मे भटक रहा था। चारो ओर घिरती हुई रात का अधकार। गढी का भयपूर्ण और आतंकमय वातावरण। और ऊपर से दांत किटकिटाकर 'कुत्ता' शब्द से संबोधन करने वाली राजमाता से साक्षात्कार करना था, उसका बुलावा था। अमरिया को इस बात की अभी तक गंध तक नही मिली थी कि उसे क्यो बुलाया गया है ? क्या प्रयोजन है इस आमत्रण के पीछे ? और जिस प्रकार वह सियाड मे गारासिग के पीछे-पीछे गया था उसी प्रकार आज भी अमरिया स्तंभित प्राणो से दारोगा के पीछे-पीछे कदम बढाता हुआ रनिवास मे नही, अपितु मृत्यु-मुख मे प्रवेश कर रहा था।

अमरिया को बरामदे मे खडा रखकर दारोगा ने परदे वाले द्वार की रस्सी खीची। दासी की जगह पियोली मा की कठोर आवाज सुनाई दी, देख तो दासी, कौन है ?"

दासी भी वही थी। द्वार के बाहर मुह निकालते ही उसने कधे पर रामैया और साफे वाले जोगी को तत्काल पहचान लिया। उसे पहले से ही पता था कि अमरिया बुलाया गया है। लौटते वक्त वह यो बोली कि जैसे आधी बात स्वयं से और आधी मांजी सा'ब से कह रही है, "ओ···! आ गया जोगी, मांजी सा'ब !"

थोडी देर बाद ही दासी बाहर आई। उसने दारोगा को जाने के लिए और अमरिया को बैठने के लिए कहा। अमरिया ने भी दासी को

पहचान लिया था। दासी को देखकर उसे तो महसूस हुआ कि जैसे डूबते को तिनके का सहारा मिल गया।

बरामदे के छोर पर बैठकर वह सोचने लगा—'अमरिया ! अजीब बात है ! जब बाघ का कोई चिह्न ही नहीं है तो क्यो तू 'बाघ आया रे' 'बाघ आया रे' चीख रहा है ? तू तो यही मानकर चल कि तुझे गाने के लिए बुलाया है। क्या भरोसा, सचमुच गाने के लिए ही बुलाया हो ? और उसने कंधे से रामैया उतारकर घोडी चढ़ाई। गंधाबिरोजा पर घिसकर गज को भी तैयार कर लिया।

और सज्जित रामैये के मधुर, अतलस्पर्शी गहरे स्वरो ने उसे गाने के लिए अनुप्राणित कर दिया। उसने गीत का श्रीगणेश भी कर दिया :

सरसती माता विनवु
दानार ने लागु पाय !

तभी द्वार पर झूलते परदे मे से जैसे साक्षात् पूर्णिमा का आविर्भाव हुआ। कम घेरदार घाघरे पर ओढे हुए पियोली मा आयु मे जितनी बडी प्रतीत होती थी उतनी ही भव्य भी लग रही थी। बिना कहे ही अमरिया समझ गया कि माजी सा'ब है। घबराया हुआ-सा वह सहसा रामैया बजाते-बजाते उठ खड़ा हुआ। रामैया बजता जा रहा था और अमरिया हाथ ऊचे करके विनती करता हुआ अविरल गति से गा रहा था :

गलालसिंग शो बेटडो
जननी जग पूजाय !

(गलालसिंह जैसे अद्वितीय पुत्र की मां जगत् मे वंदनीय और पूजनीय है।)

पियोली ने तिरस्कार सहित मना कर दिया, "अबे ओ, बंद कर यह गाना।" यद्यपि पियोली के ये शब्द अमरिया के कानो से नही टकराए थे तथापि उस तेजस्वी मुख पर फैली हुई तिरस्कार की भावना ने, आंखो मे लपलपाते क्रोध और हाथ के अभिनय ने उसे सचेत कर दिया। रामैया बद करते हुए उसने पुनः प्रणाम किया।

अमरिया यदि गीत की धुन मे खोया हुआ न होता तो उसे उसी क्षण पता लग जाता कि परदे से प्रकट होती हुई पियोली मा का चेहरा

यकायक विकृत हो गया है और यदि वह गहराई से विश्लेषण करता तो यह भी जान जाता कि इस अप्रत्याशित क्रोध और तिरस्कार के पीछे मूल कारण गीत ही था और गीत मे भी असल चिनगारी तो मा-पुत्र के संबंध की थी।

अमरिया के पास ही पीतल की कडियों वाला एक हिंडोला झूल रहा था। उस पर गद्दी तकिया रखा हुआ था। उस पर बैठते ही पियोली ने कहा, "देखो जोगी, मुझसे कविता की भाषा मे बात करना बद करके साफ-साफ शब्दो मे बात कर, वरना एक बार तो भिक्षुक समझकर छोड़ दिया था पर इस बार नही छोडने की।"

अमरिया की चेतना जाने-अनजाने मे ही सियाड की करुण स्मृतियो के दुर्वह भार से कापने लगी। उसकी आत्मा का रेशा-रेशा सभावित मृत्यु की विभीषिका की कल्पना मात्र से सिहर उठा। हाथ जोड़ते हुए उसने कहा, "अन्नदाता! खोटी बात बोलकर अपके पास से कहां जाऊंगा?"

"हां, तो ठीक है, सच-सच बोल। बैठ और यह अपना बाजा जरा एक तरफ रख।"

करबद्ध अमरिया पालथी लगाकर बरामदे के एक छोर पर बैठ गया।

"हा, बोल अब। तुझे मना किया था फिर भी वह बात तूने बापू के आगे क्यों कही है, हरामी?"

अमरिया के निस्तेज चेहरे पर से बाकी रहा रक्त भी सूख गया। उसने कहा, "नही, अन्नदाता! एक अक्षर भी नही कहा·· सियाड के परकोटे के पास खडे रहकर उस भीषण काली अंधेरी रात में इसी रमैये की मैंने कसम खाई थी। वह बात तो दूर रही, उस बात की गंध तक मेरे मुंह से नही निकली, माई-बाप! फिर भले ही कोई मेरे शरीर के टुकडे-टुकडे ही क्यो न कर डाले!"

तदनंतर अमरिया ने बापू द्वारा प्रेषित निमत्रण और डाट-डपट का सारा किस्सा पियोली मां को कह सुनाया।

अमरिया का निवेदन सही प्रतीत होने से पियोली मा को सचमुच

खुशी हुई। पूछा, "हां तो बता अब, कि सियाड से लौटने पर तूने उस कुवरी को जवाब तो भेज दिया था न ?"

अमरिया हिचकिचाया। वह सोचने लगा कि अगर सच्ची बात कह दी और वह उल्टी पड गई तो क्या होगा। रहना तो अब उसी के राज्य में है ? अतः उस बात को उसने दूसरे ढंग से प्रस्तुत किया, "आपको तो विदित ही है, अन्नदाता ! सियाड में उस सरदार ने मुझे रामैये की कसम दी थी कि किसी को भी इस बात का एक शब्द भी न···"

पियोली मां को अब रामैये की उस शपथ की बात पर पूरा-पूरा यकीन हो गया। बात को बीच मे ही काटते हुए उसने कहा, "जा, आज से मैं तुझे सौगंध-मुक्त करती हूं।"

अमरिया उल्लसित हो उठा। उसे लगा कि जैसे वह आज तक बंधनों से जकड़ा हुआ था और इस क्षण में सचमुच मुक्ति मिल गई है। मुक्ति-आह्लाद से उत्प्रेरित अमरिया ने सिर का साफा उतारकर जमीन पर रख दिया और अपना सिर धरती पर झुकाकर पियोली मां के प्रति इन शब्दों मे कृतज्ञता व्यक्त की, "अन्नदाता ! आपने आज मुझे दूसरी बार जीवन-दान दिया है !"

"जीवन-दान ही नहीं, मैं तो चाहती हूं कि तुझे पुरस्कार भी मिले।"

"अमरिया हर्षजनित उत्साह मे कहने लगा, "अन्नदाता ! आज्ञा देकर कृतार्थ करो !"

"देती हूं, पर एक बार तू सारी बात दिल खोलकर मुझसे कह दे। सुन, यदि तेरे मन मे यह शंका है कि तूने कुवरी की गोपनीय बात दूसरों को बताकर उसे धोखा दिया है तो उस शंका को अब मन से निकाल दे। उस शंका को बिल्कुल भूल जा। मेरे पास तो स्वयं कुवरी के हस्ताक्षर हैं। देख यह पत्र !" पियोली के मन मे फूलां के पत्र के प्रति जितना तिरस्कार-भाव था, उतना ही वह उसे पसंद भी था। इस लंबी अवधि के दरम्यान उसने फूला का पत्र पाच-सात बार ही पढ़ा था और वह भी विशेष रूप से दो शब्द 'फूलां का आलिंगन'। एक राजकुमारी द्वारा इस प्रकार की भाषा का प्रयोग पियोली की दृष्टि में

एक जघन्य अपराध था और इन शब्दों की वजह से हर बार फूलां को दो-चार गालियां देकर वह अपनी चिढ़ और वितृष्णा अभिव्यक्त भी कर देती थी।

कुछ भी हो, पर आज उसका मन अमरिया को पत्र देने का साहस नही जुटा पा रहा था। पर साथ ही इस विश्वास के कारण कि पत्र का गलाल पर वाछित असर पडेगा उसे संतोष का गहरा अहसास भी हो रहा रहा था।

अमरिया के सम्मुख तह किया हुआ पत्र डालते हुए कहा, "यदि पढना आता हो तो खोलकर पढ़ ले इसे।"

"पढ़ना तो आता है, अन्नदाता! पर आप ही पढ़ दीजिए न। आप गलत तो पढ़ेंगी नही।"

अमरिया का नवजन्मा आह्लाद बढ़ता जा रहा था।

पियोली ने पत्र के आशय और पत्र-वाहक की बात बताकर अंत मे कहा, "पर मुझे अब लगता है कि इस स्त्री की आह अब नही लेनी है।"

यह सुखद समाचार सुनते ही अमरिया की आत्म-वाणा का एक-एक तार आनंद से झनझना उठा। उसे लगा कि विगत लबे समय से उसकी दरिद्र आत्मा पर भय की जो परतें चढ़ी हुई थी, वे न सिर्फ ओझल हो गई है अपितु उसकी दरिद्रता भी दूर हो गई है। यह विश्वास भी उसकी आत्मा की धरती पर पुनः अंकुरित होने लगा कि कलियुग मे जन्म लेने के बावजूद वह हंस से बढ़कर काम करने की क्षमता रखता है। बल्कि वह तो इस वक्त यह कहना चाहता था कि स्त्रियो में भी यह तो एक ऐसी स्त्री है माजी सा'ब कि आपसे क्या कहूं! आप ही सोचिए न जरा कि अंग-अग मे ज्वालामुखी-सा यौवन लिए बैठी हुई है और फिर भी कहती है कि हम तो भाई ब्याह कर बैठे है! अब आप ही जरा अनुमान लगाइए न कि वह कितनी गहरी और अद्वितीय है!

पर अमरिया भी कोई कम नही था। हजार चक्कियो का आटा खाकर बैठा था। वह बखूबी जानता था कि एक स्त्री को दूसरी स्त्री की

स्तुति कदापि प्रिय नहीं लगती। बोला, "हां मांजी सा'ब ! स्त्री की आह तो लोहे को भी पिघला···।"

पियोली को अमरिया की यह बात भी नहीं जची। बीच में ही बोल उठी, "वह क्या लोहा पिघलाएगी !" और शात होकर पुनः मूल प्रसंग पकड लिया, "पर खैर, अब तू जाकर कडाणा की उस कुवरी को खबर भेज कि मंगनी भिजवाए।" दो-चार पल तक विचार के बाद पुनः कहा, "यह पत्र भी लेता जा। पुष्टि कर लाना कि उसी का लिखा हुआ है न !" स्वगत की तरह बोली, "यदि वह हा कहती है तो यह पत्र बापू को देना उपयोगी होगा। रख अपने पास और रवाना हो यहां से !"

पियोली मा का आदेश मिलते ही अमरिया के पैरों में जैसे अश्व हिनहिना उठे। पास मे पडे हुए रामैये को उठाने के लिए हाथ भी उतावले हो उठे। पर दूसरी तरफ वह अभी भी शंकित था। वह पियोली मां के विषय में मानता था कि अभी बोलेंगी हा और दूसरे ही क्षण निर्णय को रद्द कर सकती है। अतः जल्दी करना बेकार है ! अमरिया ! जल्दी मत कर। इनके शब्दों का क्या भरोसा ?···हाथ जोड़कर कहने लगा, "और कोई हुक्म, अन्नदाता !"

पियोली दिन गिन रही थी। पूछा, "जोगी ! सदेश भेजने मे तुझे कितने दिन लगेगे।"

प्रश्न सुनते ही अमरिया सचेत हो गया। उसने स्वयं को सावधान भी किया—'छाछ को भी फूक-फूककर ही पीना बेहतर है, अमरिया !' वह बोला, "अन्नदाता ! मैं तो समाचार पहुंचाने का दायित्व लेता हू ! नारियल भेजना न भेजना तो उन पर निर्भर करता है, माई-बाप !"

'तेरी यह बात भी सही है," पशोपेश मे पड़ी हुई पियोली स्वगत-सी बडबडाई। जोगी पर निगाह टिकाकर प्रश्न किया, "वहा जाकर क्या कहेगा !"

"मैं तो उस दासी से ही कहूंगा कि सपने की जो बात तूने कही थी, यदि वह सत्य हो तो बाई सा'ब से कह दे कि वह पचलासा के गलालसिंह बापू के लिए नारियल भेजने की व्यवस्था करे।"

पियोली को अमरिया की कही हुई दासी वाली बात की सत्यता पर संदेह हुआ। पर बाद में सोचा कि दासी और अमरिया के बीच प्रेम-संबंध भी हो सकता है और दासिया तो प्रायः ऐसी ही होती हैं। अतः प्रश्न किया, "और इसके बाद ?"

"आगे की बात तो वे लोग जानें !"

कुंवरी की पीड़ा और अधीरता देखते हुए पियोली मां को लगता कि नारियल तो आएगा ही। पर मुख्य प्रश्न यह था कि कब आएगा ! वह चाहती थी कि दशहरे के दूसरे-तीसरे दिन आ जाए। कहा, "देख, और बात मैं नही जानती। पर दशहरे में केवल दो-तीन दिन शेष है। आज से तीसरे दिन दशहरा है और विलब भी हो तो भी अधिक से अधिक द्वादशी या त्रयोदशी तक तो नारियल आ ही जाना चाहिए, वरना कहना कि देर से आने पर नारियल वापस लौटा दिया जाएगा।"

"बात तो ठीक है।" अमरिया ने बिना सोचे-समझे हुंकारा भरा।

तदुपरांत पियोली मा ने कड़ी आवाज में अमरिया को चेतावनी दी, "खबरदार ! तेरे सिवा यदि किसी को भी यह मालूम हो कि हमने तुझे कहने के लिए भेजा है। यदि मालूम हुआ तो उल्टी घानी में तेरा तेल निकलवा दूगी।"

"तेल निकलवाने जैसी कोई बात करूं तब न, अन्नदाता ! मैं तो मानता हूं कि आपको उस कुंआरी कन्या पर दया आ गई है, वरना बापू के लिए कुंवरियों की कौन-सी कमी है ?"

"अब बता कि कब जा रहा है ? कल सवेरे का निकला हुआ कितने दिन में पहुंचेगा ?"

और जब अमरिया ने कहा कि दो दिन लगेंगे तो पियोली ने दारोगा को बुलाकर आज्ञा दी कि इस जोगी को जल्दी सुबह सांढनी देना और सवार से कहना कि जोगी जहा कहे वही उसे उतार दे।

दारोगा के जाने पर पियोली मां ने अमरिया को भी सूचित किया, "तू कडाणा से थोड़ी दूरी पर उतर पड़ना, ताकि किसी को संशय न हो। सांढनी वापस भेजकर आगे बढ़ना।" थोड़ी देर विचार करने के बाद पुनः कहा, 'सुन, एक बात बराबर याद रखना। नारियल आए या

न आए, परंतु इस पत्र को बापू के हाथो में इस ढंग से पहुंचा देना कि जैसे तू ही इसे कडाणा से लेकर आया है। और याद रख कि इस बात की भी किसी को भनक नही मिलनी चाहिए।" हिंडोले पर से उठते हुए दासी को बुलाकर आगाह किया कि जोगी को भोजन करवाना न भूलना। अंदर प्रवेश करते-करते अमरिया से भी कहा, "बैठ जा, खाना खाकर जाना और ड्योढी पर सो रहना।"

हर्षविभोर अमरिया ने अनुभव किया कि वह गाए बगैर नही रह सकता। ड्योढी पर जाने का विचार भी हुआ, पर भोजन किए बिना जाने की स्थिति मे नही था। अतः तुरत ही उसने मांजी सा'ब से अनुमति मांगी, "आज्ञा हो तो एकाध गीत सुनाऊं?"

"सुना, पर कोई अंट-संट गीत नही। आता हो तो भजन सुना दे।"

रामैया सजाते-सजाते अमरिया मन ही मन हंस दिया—'हूं! अमरिया से कहती हैं आता हो तो! क्या मांजी सा'ब नही जानतीं कि अमरिया भजनो का वृक्ष है!' फिर उसने स्वयं अपनी भूल सुधार की—'क्यों रे अमरिया! बोलता क्यों नही? तेरे मन मे तो वृक्ष नहीं अपितु भजनो का एक बडा जंगल भरा हुआ है!'

और अमरिया ने अपना प्रिय गीत आरंभ किया :

भिक्षा देने रे मैया पीगला

पियोली को यह गीत विशेष रुचिकर तो नही लगा, पर अमरिया के स्वर मे इतना माधुर्य और दर्द भरा हुआ था कि वह नही कहना भी भूल गई और भोजन करते हुए उस गीत को तन्मय होकर सुनती रही :

तुं रे खोटी ने खोटु राज छे
खोटो सारो संसार जी
भिक्षा देने रे मैया पीगंला!

(तू भी खोटी और तेरा यह राज्य भी खोटा है। यह समस्त संसार ही मिथ्या है। भिक्षा दे दे न मैया पिंगला!)

कडाणा की ऊहापोह

अमरिया कडाणा से थोडी दूर एक गाव के बाहर ऊंट से उतर पड़ा। दोपहर ढल चुकी थी। उसने गाव में जाकर एक सुखी-संपन्न घर के आगे रामैया बजाया और घरवालो को रिझाकर अंत मे निवेदन किया, "खाने मे से कुछ बचा-खुचा हो तो दे दो बहन, आगे जाना है।"

खाना खाकर वह पुनः कडाणा की राह पर चल पड़ा। रास्ते भर उसके मन में इस प्रश्न पर उथल-पुथल जारी रही कि दासी से मिलू या सीधे राजमहल में प्रवेश कर बाई सा'ब से शुभ-संवाद के प्रतिफल के रूप मे पुरस्कार प्राप्त करूं ?

पुरस्कार-प्रलोभन का पलडा भारी रहा।

अमरिया का नाम अब महल के प्रवेश-द्वार या ड्योढी के लिए नया नहीं था। दारोगा के माध्यम से सीधा पहुच गया अंतःपुर के प्रांगण में।

फूला तो अमरिया का नाम सुनते ही हर्ष से पागल हो उठी ! सदा से कहकर उसे तुरंत ऊपर बुलाया। परदे के पीछे से आधी भीतर आधी बाहर रहकर पूछने लगी, "जोगी ! आज यहां कैसे भूले पड़ गए ?"

"बाई सा'ब ! भूला नही पड़ा हूं," गाने की भूमिका के तौर पर रामैया सजा रहा हो यों व्यस्तता प्रदर्शित करता हुआ इधर-उधर झांक-कर हौले से कहता है. "शुभ संवाद के बदले मे पुरस्कार लेने आया हूं।"

"पुरस्कार ! पर किस बात का पुरस्कार ? बिना घबराए कह डाल न !"

"नारियल भिजवाओ।"

"ऐसा ?" फूलां का आनंद समाता न था। उसके नथनो से उल्लास के फूल झर रहे थे।

सियाड से प्राण बचाकर लौटने वाले सरदार से प्रायः विस्तृत जान-कारी और दासी के मुंह से अमरिया की आपबीती सुनने के बाद फूलां ने गलाल के साथ परिणय की आशा छोड़ दी थी। शास्त्र और साहित्य की रसिक इस अनुपम राजकुमारी ने अपने अंतःकरण को विश्व से विमुख कर वैराग्य की दिशा में मोड़ दिया था। पर हर्षविह्वल फूलां ने, प्रेम-

पुजारिन फूलां ने अमरिया के मुख से बधाई-संदेश सुनते ही अपने अंग-प्रत्यंग पर से वैराग्य का आरोपित आवरण उसी क्षण उतार फेंका। कहा, "क्या यह एकदम पक्की खबर है, जोगी ?"

अमरिया को सहसा होश आया। पियोली मा की चेतावनी याद आते ही बोला, "दरबारगढ की एक दासी ने मुझसे कहा है कि बापू की राह मे रोडा बनी हुई राजमाता अब यह सोचकर स्वयं ही पछता रही हैं कि उन्होने व्यर्थ ही एक कुआरी कन्या की उसासें मोल ली।"

कल तक जो विरोधी थी वही आज पछता रही है ! फूलां को इस आकस्मिक हृदय-परिवर्तन मे एक चमत्कार का आभास हुआ। मन कहता था, निश्चय ही भगवान ने तेरी प्रार्थना सुन ली है। गौर माता ने तुझ पर करुणा की वर्षा की है।

एकाएक फूला को कुछ दिन पहले सुने ढेबर तालाब के उपद्रव की याद हो आई और इसके साथ ही याद आया कि गलाल डगरपुर के अधीनस्थ पचलासा ग्राम मे आ बसा है। इस स्मृति के साथ ही उसने आखो में आशा की दीप्ति लिए प्रश्न किया, "क्या यह सही है कि कुंवर साहब ने सागवाडा में सैनिक चौकी स्थापित की है ?"

"अरे ! आपको क्या अभी तक नही मालूम ? बाई सा'ब ! बापू ने पचलासा मे दरबारगढ का निर्माण करवाया है। मैं वही से तो आ रहा हू !" भूल से अमरिया एक बार बोल तो गया पर बाद मे मन ही मन पछताया भी। तुरंत जोड़ दिया, "दासी के कहते ही मैं कडाणा आने के लिए दौड पड़ा।"

"क्यो अमरिया ! ढेबर के निर्माता ये अपने कुवर सा'ब ही है न ?"

"वही हैं बाई सा'ब, वही। उनको आप मामूली मत समझना। वह तो कोई देव-पुरुष लगते हैं। वैसे मैंने अभी तक ढेबर तालाब नही देखा है, पर दर्शकों का कहना है कि अरावली के कई पर्वत उसमे डूब गए हैं और वह एक विशाल महासागर बन गया है। ऐसा अंतहीन महासागर कि नयन उसकी सीमा बांध नही पाते !"

"सुना है वहा दगा-उपद्रव भी हुआ था !"

"ऐसा दंगा कि कई ओडों की बलि चढ़ गई और रक्त की नहरें

बहने लगी !"

फूलां को गलाल का यह कार्य अप्रिय लगा था। इस समय भी भारी उच्छ्वास के साथ बोली, "कुवर सा'ब ने आखिर ऐसा क्यो किया ?"

"सुना है शराब पीकर उन्मत्त बने हुए हजारों ओडो के बीच अकेले गलाल बापू अपने दो-चार साथियो समेत घिर गए थे। बापू पर उस संकट के समय जलदेवी प्रसन्न हुई और वे ओडों को काटकर इस प्रकार सकुशल बाहर निकल आए कि जैसे कुल्हाड़ा थूहर के जंगल में रास्ता साफ करता हुआ बाहर निकल आता है !"

इस स्पष्टीकरण के बावजूद फूलां को गलाल का यह कार्य प्रिय नही लगा, सो नही ही लगा। उसने चर्चा के मूल सूत्र को पकडते हुए कहा, "छोड़ इस बात को ! अब बता कि नारियल कहा भिजवाना है, पच-लासा ही न ?"

"हां-हां, वही। पर ध्यान रहे कि दशहरे के दूसरे या तीसरे दिन नारियल अवश्य पहुंच जाना चाहिए !" अमरिया यह सूचना देते समय काफी गंभीर था।

"पर इतनी जल्दी क्या है ?"

यह सवाल तो स्वयं अमरिया के मन मे भी उठा था। ड्योढी पर तैनात सिपाहियों से यह सूचना मिलने पर कि सांदरवाडा से विवाह का नारियल आया है, अमरिया ने इस सूचना का मांजी सा'ब की उतावली से तालमेल स्थापित किया था। पर राजकुल की सब गुप्त बातें कहना अमरिया के बस की बात नही थी। कहा, "मैं नही जानता कि वह जल्द-बाज़ी किस कारण से है ? हो सकता है, ये शुभ मुहूर्त के दिन हो। जो भी हो, निर्धारित अवधि को तो निभाना ही चाहिए, बाई सा'ब।"

नारियल भिजवाने की इस शीघ्रता और अपने घर की परिस्थिति को देखते हुए फूला को नैराश्य ने घेर लिया। उसके मन में अभी-अभी जन्मा परिणय का आशा-अंकुर जैसे सूखकर झड़ गया। अमरिया को लक्ष्य कर रही हो ऐसे स्वर में वह बड़बड़ाई, "ठीक है, मां से बात करूंगी। विधि-विधान होगा तो अवधि भी निभ जाएगी।"

और इसके पश्चात् उसने अमरिया को यों आदेश दिया कि जैसे वह

पूर्व-वैराग्य के अनुरूप ही आनंद-उत्सव मनाना चाहती है, "खैर, अब तू मुझे यह बता कि सियाड जाकर तू उनसे कैसे मिला और गीत सुनते समय उनके चेहरे पर क्या भाव था ? वे कैसे लगते थे उस क्षण मे ? ये सारी बातें तू मुझे विस्तारपूर्वक कह सुना। इस बीच पूजा मे बैठी हुई मा भी आ जाएगी। और बाद मे फिर तू मुझे वह सपने का गीत भी सुनाना।"

अधे को आखे मिली। अमरिया को तो जैसे मन-पसंद आहार मिल गया। उसने फूला से एक बार पूछकर मन को आश्वस्त भी किया कि डरने की कोई बात नही है। इसके बाद तो उसने सियाड के राजमहल पर पहुचने से लगाकर आखिर तक की सभी घटनाओ का ब्योरा कह सुनाया कि कैसे उसने घुड़सवार गलाल को भागकर आते देखा था, किस प्रकार वह एकप्राण ध्यानमग्न होकर उसके स्वप्न-गीत को सुन रहा था…इत्यादि। संक्षेप मे, उसने गलाल के पहनावे से लेकर उसकी आंतरिक अनुभूतियो और भावनाओ तक का संपूर्ण दिग्दर्शन करा दिया।

यह कहना कठिन है कि स्वप्न-गीत सुनते समय गलाल अधिक तल्लीन था अथवा यह समग्र विवरण सुनते समय फूला अधिक एकाग्र-चित्त थी।

बात समाप्त होने तक राजरानी भी साध्य-आरती के कार्य से मुक्त होकर फूलां के पास आ बैठी। और अमरिया ने जिस उत्साह और उल्लास के साथ गलाल को पहली बार गीत सुनाया था, आज उसी उत्साह के साथ वह उस स्वप्न-गीत को गाने लगा।

गीत आरभ होते ही फूला गंभीर हो गई। पर जब अमरिया इन पंक्तियो को सुनाने लगा :

हण हण घोडा !
एक लीधी वनराई माथे
ने पड्यो उठ्यो मही ना कांठे !

तो फूलां की हिरनी सी सुदीर्घ बडी-बडी आंखें अश्रुओं से डबडबा आईं। मा उससे कोई विशेष दूर नही बैठी थी। पर वे स्वयं भी अमरिया के गीत मे इतनी खो गईं कि फूला और फूलां के आंसुओं की

ओर उनका ध्यान ही नही गया।

और जब अमरियां ने गीत की अंतिम कड़ी पूरी की :

समणा साचां पाडजे बापु !

तो फूलां सिसकने लगी। मां का ध्यान सहसा उनकी ओर आकर्षित हुआ। आश्चर्य के साथ प्रश्न किया, "क्या बात है बेटी ?"

प्रत्युत्तर देने के स्थान पर फूलां अचानक खड़ी हो गई। उसका इरादा अदर जाकर पलंग पर लेट जाने का था, पर एकाएक कुछ याद आते ही वापस मुडी। आज वह कवि अमरिया को पहला और अंतिम पुरस्कार देना चाहती थी। गले मे हीरों का हार था। पर ऐसा कहने की अपेक्षा कि वह बहुमूल्य था यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि फूलां को लगा कि ऐसा कीमती हार जोगी को देना मर्यादा एवं औचित्य के प्रतिकूल माना जाएगा। अतः उसने कंदोरा देना ही अधिक उपयुक्त समझा। एक सेर सोने के कंदोरे को कमर से निकालती हुई वह खुद ही द्वार से बाहर आ गई। उसे अमरिया की गोद में डालते हुए कहा, "जाओ कवि ! मैं तुम्हारा उपकार कभी नही भूलूगी।" फिर कहा, "जो भाग्य मे लिखा होगा सो होगा !" और वह झटपट भीतर चली गई।

चारों ओर एक अनाम स्तब्धता और भारीपन छा गया था। अमरिया भी धीरे से उठकर चलता बना।

दिग्मूढ़ बनी हुई मा, न तो बेटी को कंदोरा निकालने से रोक सकी और न ही उसे जोगी को देने से वर्जित कर सकी। बेटी आज इतनी खोई-खोई लगती थी कि उसी पर विचार करती हुई वह कितनी ही देर तक वही की वही बैठी रहीं। कुछ देर बाद जब उठी तो लगा कि उन्हें आधी-अधूरी जानकारी जरूर मिल गई है—'यह तो कोई स्वप्न-गीत नहीं लगता, बेटी का ही जीवन-गीत लगता है !' फिर याद आया कि पिचली बार उसने जोगी से स्वप्न-गीत लिखवाया था। फिर तो उसने प्रारंभिक कहानी दासी से जान ली और आज की बात बेटी से प्राप्त कर ली।

गलाल के कुल-गौरव और वीरत्व को देखते हुए मां को इस विवाह-प्रस्ताव में कुछ भी आपत्तिजनक नहीं लगा। पति के विषय में उसका

विचार था कि संभव है वह बाधा अनुभव करे, पर बेटी स्वयं को परिणीता मान बैठी है तो वह इतने अज्ञानी नही है कि अपनी 'ना' को पकड़ रखेंगे।

पर दूसरे दिन रानी ने जब अपने कामदार के जरिये पति से पुछवाया तो···जरा-सी देर मे ही कालूसिह से मिलकर वापस लौटे हुए उस कामदार का उदास और ज़र्द चेहरा, अपनी कहानी स्वयं कह रहा था। लगता है, मना कर दिया है। कामदार के शब्द भी लगभग इसी प्रकार के थे, "हज़ूर ने कहा है कि अनूपसिह से सलाह-मशविरा करके कल तक जवाब भेजूगा।"

रानी को पछतावा भी हुआ कि उसने पति से क्यो पुछवाया। यों भी पिछले एक डेढ दशक से उसके साथ पति का संबंध नही के बराबर था। रानी को तो यह भी याद नही था कि दोनो के बीच पिछली बातचीत कब हुई थी।

दोनों के विचारों और आचरण में इतना अंतर पैदा हो गया था कि शहर और नदी की दिशा मे विभाजित महल के दोनो खंड और दोनों खंडों का वातावरण उस दूरी को स्वयं प्रकट कर देता था। नदी की दिशा मे स्थित रानी के खंड में अगरु-धूम की सुगंध, पवित्रता और धार्मिकता का पावन वातावरण पाया जाता था और कालूसिह के खंड में शराब और विलासिता का बोलबाला था।

इसमें संदेह नही कि कालूसिह रानी से नाराज़ था, पर साथ ही वह उससे डरता भी था। मदिरा के नशे में उन्मत्त होकर कभी-कभी उसे अपनी निर्भीक राजरानी का चेहरा याद आ जाता और इसी के साथ ही उस पर अपना दबदबा स्थापित करने की अभिलाषा भी मन में जाग उठती थी।

एक-दो बार तो वह तलवार लेकर रानी के महल पर गया भी था। पर पहली बार तो रानी के अंगरक्षकों ने ही बीच बगीचे में उसे समझा-बुझाकर वापस भेज दिया और दूसरी बार सूचना मिलते ही रानी ने उसे स्वयं ही ऊपर बुलाया। रानी के पास पहुंचने के बाद तेवर दिखाना तो दूर रहा, उलटा वह रानी की दी हुई सीख के आधार पर राजा की

तरह गौरव प्रदर्शित करता हुआ वापस लौट आया था।

पूर्वोक्त घटना के बाद से तो वह रानी के प्रति खूब सतर्क होकर व्यवहार करने लगा था। उसके मन मे यह आशंका भी बनी हुई थी कि रानी का क्या भरोसा ? वह मुझे और अनूप को धोखा देकर मरवा भी सकती है।

पर कालूसिह के इस किस्म के बेबुनियाद और हास्यास्पद भय को देखकर और तो और स्वयं उसके चाटुकार भी उससे यह कहा करते थे, "अर्र्र् ! आप यह क्या बोल रहे है, हुजूर ! सोलंकी रानी सा'ब पर तो ऐसा संदेह करना भी पाप है, हुजूर !"

कालूसिह के एक अत्यन विश्वासपात्र और दाहिने हाथ के समान विश्वसनीय दीवान ने तो असह्य हो जाने पर एक_बार सुना भी दिया था. "कडाणा का नरेश कोषागार में पाप भर रहा है और कडाणा की सोलंकी रानी उस पाप को निरंतर धो रही है। यह मत समझना कि कडाणा आपके बाहुबल पर टिका हुआ है ! वह टिका हुआ है सोलंकी रानी की तपस्या की नीव पर, हुजूर !" और फिर त्याग-पत्र देकर वह चलता बना था।

जो भी हो, इसमें संदेह नही कि कालूसिह के चाटुकार भी सोलंकी रानी के प्रति सम्मान प्रकट करते थे। जबकि सेना और प्रजा तो इस सोलंकी रानी को जीते-जागती कुलदेवी ही मानती थी। इसीलिए कालूसिह सोलंकी रानी का नाम तक नहीं लेता था और अपनी ओर से उसके प्रति मान-सम्मान का पूर्ण निर्वाह करता था।

पर आज जब रानी के कामदार ने कुवरी के नारियल का प्रश्न उठाया एव गलालसिह पूरबिया के कुल-गौरव, गनोरा-विजय तथा ढेबर-जलाशय के निर्माण इत्यादि की कीर्त्ति-गाथा सुनाई तो दांतो के बीच मूंछ कुतरता हुआ कालूसिह बड़ी मुश्किल से अपना संयम रख सका था। उसने बिना कोई प्रश्न पूछे कामदार को इन शब्दो के साथ वापस भेज दिया, "रानीजी से कहना कि अनूप के साथ विचार-विमर्श के बाद जो भी निर्णय होगा उसकी कल तक सूचना भेज दूंगा।

गलालसिह के स्थान पर अन्य किसी विवाह-योग्य युवा पुरुष का

प्रस्ताव होता तो कदाचित् वह विचार-विमर्श भी करता । न सिर्फ विचार-विमर्श करता अपितु वह यह आग्रह भी छोड़ देता कि वरपक्ष का कुल भी स्वय के समान निशान-डके वाला होना चाहिए । बल्कि सत्य तो यह है कि रानी के साथ अपने संबंधो का स्वरूप देखते हुए वह जागीरदार दामाद पाकर उलटा खुश ही होता ।

पर गलालसिंह का नाम सुनते ही उसका अंतर्मन सुलग उठा । जब तक उसने गनौरा की वीर-गाथा और महाराणा द्वारा किए गए मान-सम्मान की कथा सुनी तब तक तो उसे गलालसिंह एक दूरस्थ अजनबी व्यक्ति लगता रहा । पर जब उसने यह सुना कि इसी व्यक्ति ने ढेबर के निर्माण के समय अपने एक सबंधी का घोर अपमान किया था और स्वयं ने ही सारा श्रेय और मान-सम्मान लूट लिया था, गलालसिंह पूरबिया कालूसिंह के मन मे तत्काल परमारों का दुश्मन बन गया ।

फिर भी यदि अनूप वगैरा समझाते तो शायद कालूसिंह सहमत हो सकता था । परंतु जब गलाल ने सागवाड़ा मे सैनिक चौकी स्थापित की और डूगरपुर के रक्षक के रूप मे उसी की छाती पर मूग दलने लगा, तो न केवल कालूसिंह के मन में अपितु अनूप के मन मे भी गलाल एक कट्टर शत्रु बन गया । अब वह दोनो की आंखो की किरकिरी बना हुआ था ।

फिर भी जब कालूसिह ने विवाह-नारियल की बात अनूपसिंह के समक्ष रखी तो एकबारगी तो वह जाने-अनजाने मे यह सोचकर प्रसन्न हो उठा कि गलालसिंह जैसे वीर योद्धा से संबध स्थापित होगा । पर तभी कालूसिह ने उसका उपहास करते हुए कहा, "तुझे दुनियादारी का कुछ ज्ञान भी है या नही ? दुनिया तो यही कहेगी कि गलालसिंह ने कडाणा की छाती पर सैनिक चौकी स्थापित की है, अत: कडाणा का राजा डर गया और बेटी को टीके के रूप मे सौंप दिया ।

अनूप को अपने पिता की बात युक्तिसंगत लगी । इसके अतिरिक्त कालूसिह ने उसके मन में यह बात भी बिठा दी कि गलालसिह जैसा दामाद मिलने पर सोलंकी रानी का पक्ष मजबूत हो जाएगा ।

अनूप की आंखें अब पूर्णतया खुल गई थी । कहने लगा, "पिताजी !

आपका कथन सही है। किसी भी उपाय से यह विवाह नही होने दिया जा सकता।"

दोनो को पूरा-पूरा विश्वास था कि उनकी स्पष्ट अनिच्छा के बावजूद सोलंकी रानी उनके निर्णय की अवज्ञा कर गलालसिंह के खड्ग से भी अंततः फूला का विवाह करा देगी और उसे ससुराल भेजे बिना नही रहेगी। गलालसिंह यो भले ही जागीरदार है, पर उसने दुनिया मे नाम कमाया है और सुना है कि आज के युग में गलालसिंह जैसा वीर राजपूत मिलना मुश्किल है। लगता है, शायद इसीलिए सोलंकी रानी नारियल भिजवाने के प्रश्न पर इतनी उतावली प्रकट कर रही है।

दूसरी-तीसरी रात को तो सरदारों के कानो में भी नारियल की बात पहुंच गई। एक रात को शराब के दौर में इसी प्रश्न पर चर्चा भी छिड गई।

सेनापति ने कहा, "नही हुजूर! गलालसिंह कितना ही वीर क्यों न हो, पर चूकि वह हमारी ही छाती पर सैनिक चौकी स्थापित किए हुए है, इसलिए नारियल भेजने पर दुनिया तो यही कहेगी कि गलाल-सिंह की चौकी से कडाणा डर गया और इसलिए उसने नजराने के तौर पर कुंवरी की मंगनी भेजी।"

शहर कोतवाल का स्वर भी भिन्न नही था। जबकि कालूसिह के चारण ने तो परमारों के शौर्य का दोहा ही ललकार दिया:

राजा में एकज भोजराज
कडाणे कालूसिह परमार
ताती धार तलवार!
धराधणी परमार!

(नरेशों में सर्वश्रेष्ठ राजा भोज के समान कडाणा का कालूसिह परमार है। उसकी तलवार की धार तीक्ष्ण है और वह धरा का स्वामी है!)

कालूसिह भी अब जोश में था। कहता है, "अरे, तीन सौ टट्टुओं का थाना स्थापित हो जाने से क्या दस हजार की सेना वाला नज़राना करेगा?" उसकी आंख बिफरी हुई थी।

अनूप ने पिता के हृदय को पिता की ही शंका द्वारा उत्तेजित किया।

उसने कहा, "यदि सोलंकी मां ने विवाह कर दिया तो ?"

लालजी पांडोर अपेक्षाकृत बुद्धिमान था। वह बोला, "क्यों न इस खेल को ही बिगाड़ दिया जाए !"

"किस प्रकार से ?" अनूप ने पूछा।

लालजी ने सेनापति की ओर आख दबाकर कहा, "कल दशहरा है। करो शकुन। गलालसिह, कुआ ठाकुर और अन्य सब जहागीरदार दशहरा की सवारी में सम्मिलित होने के लिए अपने-अपने घुड़सवारों सहित डूगरपुर की ओर प्रस्थान कर चुके होंगे।" कालूसिह पर दृष्टि टिकाकर कहा, "हुजूर ! ऐसा मौका बार-बार नही मिलेगा।"

कलाल की भट्ठी का पानी तो मुह में पहले से ही पड़ा हुआ था और ऊपर से कुआं ठाकुर से नाराज़ होकर आए हुए लालजी पांडोर ने लालच का पानी पिलाना आरभ कर दिया। बोला, "हुजूर, यदि कल सबेरे जल्दी प्रस्थान किया जाए तो दोपहर से पहले तो कुआ तोडकर वापस भी आ जाएंगे !" परंतु तभी लालजी पांडोर को सहसा याद आया कि हुजूर को विजय-प्राप्ति से धन-प्राप्ति की चिंता अधिक है, अतः जोड़ दिया, "कुआं के खजाने मे से दो ऊंट भरकर दौलत न निकले तो शेष मै पूरी करूंगा, हुजूर !"

"वाह, वाह!" सेनापति बोल पड़ा, "एक पत्थर से दो शिकार, हुजूर! गलालसिह का चौकी स्थापित कर डटे रहने का गर्व भी टूटेगा और लालजी भाई की कुआं ठाकुर से अपने वैर का बदला लेने के लिए कडाणा की शरण में आने की बात भी सार्थक हो जाएगी।"

अनूप ने सभा-सदस्यो को तीसरा फायदा भी सुना दिया, "नारियल का पानी नारियल मे ही रह जाएगा। यह अतिरिक्त लाभ है, पिताजी !"

मित्र-मंडली का उत्साह देखकर कालूसिह ने महसूस किया कि कुआं का धन-वैभव लंबे समय से उसकी दाढ मे दर्द कर रहा है, इसलिए इस सुनहरे मौके को हाथ से जाने देना निरी मूर्खता होगी। और अंत में सेनापति और घर के भेदी लालजी से सलाह-मशविरा करके कालूसिह ने आज्ञा प्रदान की, "मुर्गे की पहली बांग के साथ ही पच्चीस-पच्चीस घुड़सवारों की पांच टुकड़ियां पूर्व-निर्धारित योजनानुसार अलग-अलग

स्थानों से प्रस्थान करेंगी। सेनापति ! याद रखना कि टुकड़िया तो पच्चीस-पच्चीस सवारो की हों पर उनमे से प्रत्येक मे पाच-पाच घुड़-सवारों की पांच-पाच टुकड़ियां और रहेगी।" आख दबाकर कहा, "देखने मे जुदा-जुदा पर आवाज लगाते ही सब एक !"

कालूसिंह का सेनापति भी कौन कम डाकू था ? उसने कहा, "आप बेफिक्र रहिए, हुजूर ! कल रात्रि को विजयोत्सव मनाते हुए हम सब यही बैठे होगे।" और इसके पश्चात् वह लालजी के साथ चल दिया।

मुर्गे की पहली बांग के साथ ही कोतवाल ने उत्तर दिशा का दरवाजा खुलवाया। थोडी ही देर मे एक के बाद एक पाच-पाच सवारों की टुकडिया आने लगी। अगली टुकड़ी मे सेनापति और लालजी पाडोर थे तो बीच की टुकडी मे कमर मे तलवार और कंधे पर बंदूक लिए कालूसिंह और अनूप घोडों पर बैठे हुए थे।

द्वार-रक्षक सिपाहियो ने सलामी दी। तदुपरात खुद कोतवाल ने राजा और अनूप के गले में फूलों की विजय-माला पहनाई। शुभाकाक्षा भी व्यक्त की, "हुजूर ! विजय-लाभ कर शीघ्रातिशीघ्र लौटना।"

दरवाजा पार करते ही कालूसिंह ने घोड़े को एड़ मारी। उसके पीछे अनूप ने और अनूप के पीछे···

महीसागर का संपूर्ण किनारा घोड़ों की टापो से प्रतिध्वनित हो उठा। नीचे के भाग मे बहता हुआ पानी चुपचाप वार्तालाप कर रहा था···अस्ताचलगामी नवमी का चंद्रमा बार-बार पीछे मुडकर देख रहा था।

कडाणा की सरहद समाप्त होते ही घोड़ों की टापो पर रात के पिछले पहर की शाति छा गई। सन्नाटे की ध्वनि-सी सिर्फ घोडो की टापें गूज रही थी। अश्वारोहियों के चेहरो पर भी नकाबो के परदे चढ गए।

घोड़े पर सवार नकाबधारी लालजी पाडोर मार्गदर्शक के रूप मे सबसे आगे मंजिल-दर-मंजिल आगे बढ़ रहा था और साथ ही हृदय में सुलगती वैर की अग्नि मे ईधन भी डालता जा रहा था, "एक बार

गढी के पहरेदारो को कत्ल करते ही, देव-मंदिर में मूर्ति के सम्मुख सवा रुपया भेंट चढाकर और फिर मूर्ति को वही छोडकर भंडार मे से···। बावड़ियो वाली गढी मे बंधने वाले चार-पाच ऊंट नीम की पत्तियां खाया करते है···बस उनको आते ही···।

खून खौल उठा

डूंगरपुर नगर के दक्षिण मे अंतिम छोर पर धनमाता का पर्वत, और पर्वत की ढलान पर सुशोभित था महारावल का भव्य राजप्रासाद। उसे देखकर लगता था जैसे पर्वत ने अपनी गोद में शिशु उठा रखा है। उस पर्वत-शिशु राजमहल से ढलती दोपहरी में दशहरे की 'सवारी' (शोभायात्रा) ने प्रस्थान किया। यह रंग-बिरंगी नयनाभिराम सवारी नगरवासियो का अभिनंदन स्वीकार करती हुई, टेढ़े-मेढे राजमार्ग पर इठलाती हुई, संध्या-समय गेपसागर के किनारे पहुंचकर एक विराट राजसभा मे परिणत हो गई।

ऊंचे पायों के सुसज्जित मंच पर कीनखाब के गद्दे-तकियो पर बिराजमान महारावल, इस साल अस्सी-नब्बे प्रतिशत फसल पकने से बहुत प्रसन्न थे और इस करुणा के लिए ईश्वर के प्रति श्रद्धावनत थे। संपूर्ण वर्ष सुख-चैन से बीत गया था। राज्य को किसी भी प्रकार के युद्ध या उपद्रव का शिकार नही बनना पड़ा था। महारावल ने इस शांति-पर्व की भी खुशी मनाई।

सुसज्जित पीठासन के दायें और बाये भाग में कालीन से ढके हुए गद्दे-तकियों पर दस-बारह ताजिमी जागीरदार जमे हुए थे। गलाल भी दायीं ओर तीसरे स्थान पर बैठा था। सामने की गद्दियो पर राज्य के अन्य छोटे-बड़े ठाकुर, उमराव, अमलदार और दूसरे प्रतिष्ठित नागरिक बैठे हुए थे। और अंत मे जाजम पर शहर की सामान्य जनता बैठी हुई थी। शहरी प्रजा के पीछे गावों मे से सवारी देखने के लिए आई हुई ग्रामीण जनता की भीड उमड़ी हुई थी। अंत मे कतारबद्ध देवालयो की छतों पर भी लोगों की भीड़ का कोई ठिकाना नही था।

महारावल ने सुख-शांति की चर्चा के बाद तुरंत जोड़ दिया, "पण आ बाबत मां मारे पचलासा ना जागीरदार गलालसिंगजी ने जश आपवो घटे हे। हगवाड़ा में अणे ज्यार थी थाणु नारव्यु हे एक भी दंगो नथी थ्यो। नहि तो आप सहु जाणो हो के महि नो इ आखोय काठो डोगरपर ने वास्ते सदा य माथा नो दुखावो रह्यो हे।" (पर इस प्रसंग मे अभी पचलासा के जागीरदार गलालसिहजी को श्रेय देना शेष है। जब से उन्होने सागवाड़ा मे थाना स्थापित किया है, एक भी दंगा नही हुआ! अन्यथा आप सभी जानते ही है कि माही नदी का यह संपूर्ण तटवर्ती प्रदेश डूगरपुर के लिए निरतर सिरदर्द बना रहा है।)

गलालसिह का नाम आते ही पुरवासियों ने तालियो की 'धाणी' तड़तड़ानी शुरू कर दी। नगरवासी अभी तक गलाल की वह शरारत भूले नही थे।

गलाल के प्रति प्रदर्शित जनता का विपुल प्रेम, कुआ जैसे जागीर-दारो को यदि प्रिय न लगे तो यह स्वाभाविक ही था, पर स्वयं महा-रावल के हृदय में भी वह चुभ रहा था। तालियों के गगनभेदी तुमुलनाद के कारण महारावल को कुछ समय तक चुप रह जाना पड़ा। चारों ओर खडे सिपाही भी आखिर किस-किस का हाथ पकड़ सकते थे।

वातावरण शांत होने पर जैसे ही महारावल ने आगे बोलना आरंभ किया कि उनके कानों पर घोड़ों की टापो की आवाज सुनाई पड़ी। महारावल के साथ-साथ संपूर्ण राजसभा स्तब्ध होकर इस बेअदबी को देखती रही। जन-समुदाय की दीवार के उस पार एक घुड़सवार दिखाई दे रहा था। ऐसी आवाजें भी सुनाई पड़ रही थी कि मानो सिपाही उसे रोकने की कोशिश कर रहे है।

कुछ ही पलों में एक सैन्याधिकारी के पीछे-पीछे वह व्यक्ति गलाल को इधर-उधर ढूंढ़ने की निष्फल चेष्टा करता हुआ महारावल साहब के समक्ष आ खड़ा हुआ। उसकी आखें अभी भी गलाल को ढूढ़ रही थी। अंगरखे के बंद से पत्र निकालकर जल्दी-जल्दी सांस लेता हुआ वह कहने लगा, "गज़ब हो गया अन्नदाता! कुआं टूट गया!"

अंतिम दो शब्द सुनते ही संपूर्ण राजसभा को रोमांच हो आया।

गलाल को न केवल रोमाच का अनुभव हुआ अपितु उसके सिर के बाल भी साही के पंख की तरह खड़े होने को थे। पत्रवाहक गलाल का ही सैनिक था।

महारावल ने जैसे ही पत्र खोला, दीवान ने अपना हाथ बढा दिया महारावल ने दीवान को पत्र देते हुए आदेश दिया, "जल्दी पढ़ो, क्या लिखा है ?"

चारों ओर व्याप्त सन्नाटा रावलजी के क्रुद्ध चेहरे से भी ज्यादा भयानक था। प्रतीक्षा का हर क्षण छुरी की धार की तरह गलाल के हृदय को काट रहा था। उसने बड़ी मुश्किल से अपने-आप को संयमित किया। कभी पत्र और कभी दीवान पर दृष्टि डालता हुआ वह अंदर ही अदर एक अनाम आक्रोश की घुटन से ऐंठ रहा था।

दीवान ने रावलजी के सम्मुख नजर उठाते हुए कहा, "पचलासा से गलालसिंहजी की मा अपने रक्त से लिखती हैं—गलाल बापू ! कुआं को नष्ट करने वाले कालू परमार के कडाणा को ध्वस्त करके घर लौटना अन्यथा संन्यासी बन जाना।"

कडाणा के कालू परमार का नाम सुनते ही गलाल इस सीमा तक क्रुद्ध हो उठा कि घुटनो के बल बैठा हुआ होने के बावजूद भी दहाड़ उठा, "कडाणा तोडना मेरे लिए बायें हाथ का खेल है। हुजूर यदि हुक्म दें तो कल जाकर तोड़ डालू !" और इसके साथ ही उसने गद्दी पर इतने जोर से हाथ पछाड़ा कि उस जगह का कालीन भी चूर-चूर हो गया।

कुआं ठाकुर का तो केवल गांव टूटा था, पर जिस गलाल के कंधों पर इस प्रदेश की रक्षा का दायित्व था उसकी तो प्रतिष्ठा ही नष्टभ्रष्ट हो गई थी। गलाल के हृदय को दूसरा आघात यह लगा कि भरी सभा में महारावल द्वारा उच्चारित प्रशस्ति के बोल तो अभी हवा मे गूज ही रहे थे कि ठीक उसी समय इस समाचार ने जैसे उस प्रशस्ति-पत्र का विद्रूपमय उपहास कर दिया।

सच तो यह है कि ये समाचार मात्र कुआं के ठाकुर के सिवाय रावलजी, ठाकुरों अथवा अन्य लोगो के लिए विशेष आघातजनक नही

थे। ऐसी डकैतियां न तो डूंगरपुर के लिए नयी थी और न कडाणा के कालूसिंह के लिए। परंतु क्योंकि आज ठीक दशहरे के दिन ही कालूसिंह ने यह धृष्टता की थी अतः महारावल एवं उनके साथ-साथ अन्य तमाम ठाकुरो को भी यह अपमान महसूस होने लगा।

इस पर कुआं ठाकुर खडा होकर कहने लगा, "आज्ञा दीजिए, हुजूर ! मैं कडाणा जाकर केसरिया[1] करूंगा !"

सभी जानते थे कि कुआ-ठाकुर हेतुसिंह यथार्थ में कितना बहादुर है ! रावल जी का तो यह कहने को मन हो आया कि तुमने यदि 'केसरिया' किया होता तो पचास हजार का पट्टा देकर रखवाली का इतजाम क्यों करना पड़ता ?···इस विचार के साथ ही महारावल ने गलालसिंह की ओर देखा।

उत्तेजित और विक्षुब्ध गलाल गंभीर होने का प्रयत्न कर रहा था। कडाणा पर प्रहार करना कोई बच्चो का खेल नही था। वह सोच रहा था कि कडाणा के पास दस हजार सैनिक है और नगर की परिक्रमा करता हुआ परकोटा भी उसके ध्यान मे था।

गलाल, कुआ-ठाकुर से कुछ कहने जा रहा था कि उसी समय महा-रावल बोल उठे, "अभी शात रहिए, महारावजी ! हर दृष्टिकोण से विचार करना पड़ेगा !"

पर गलाल महारावल की तथाकथित शाति से सहमत न हो सका। इसके पूर्व कि कुआ ठाकुर कुछ कहे वह बोला, "हुजूर ! शात रहने की तो कोई बात ही नही है।" और उसने सभा पर एक विहंगम दृष्टि डालकर जैसे प्रतिज्ञा ली, "दीवाली के पूर्व तक यदि कालू परमार रूपी काटे का उन्मूलन न कर दू तो मेरा नाम गलालसिंह पूरबिया नही !" मूंछों पर ताव देता हुआ अनायास वह खड़ा हो गया ! महारावल ने उसे शांत करते हुए कहा, "उतावले मत बनो, गलाल बापू ! यह भी तो देखना पड़ेगा न कि कही काटा निकालते-निकालते शूल ही न गड़

1. केसरिया बाना पहनकर अथवा अफीम-रस का आखिरी घूट पीकर मरजीवा बनकर लड़ना।

जाए ! कडाणा की पीठ पर महाराणा जयसिंह की परमार रानी का हाथ है। उस समर्थन के बल पर ही तो वह इतनी गरमी महसूस करता है !" और इसके साथ महारावल उठ खड़े हुए। उपस्थित जन-समुदाय को सात्वना और साहस के दो शब्द कहकर, सभा-विसर्जन के साथ ही दीवान को हुक्म दिया, "दीवानखाना आयोजित करो, सब मिलकर विचार-विमर्श करेंगे।" और हाथी पर आरूढ होने के बजाय वे घोड़े पर सवार होकर महल की ओर चल पडे।

संप्रति, दीवानखाना भरने के लिए विशेषाधिकार-संपन्न वर्ग के व्यक्तियों को संदेशवाहक भेजकर बुलाने की जरूरत नही थी। पलान कसे हुए घोडे भी वही तैयार खड़े थे। अल्पकाल में देखते ही देखते महारावल के महल मे दीवानखाना भर गया।

कडाणा पर आक्रमण करना यदि सचमुच एक सुगम कार्य होता तब तो महारावल ने कालूसिह की शान कभी की मिट्टी में मिला दी होती। पर इसका अभिप्राय यह भी नही है कि कडाणा को परास्त करना डूगरपुर के सामर्थ्य से परे था।

गलाल मात्र एक योद्धा अथवा हिकमतबाज ही नही था, जरूरत पड़ने पर वह दुनियादारी का मनुष्य भी बन सकता था। रावल जी एवं दीवान आदि का मत कडाणा पर चढाई करने के पक्ष में तो था, परंतु वे तैयारी के लिए कुछ समय चाहते थे। गलाल ने इस प्रस्तावित विलंब का भी विरोध किया। रावल जी को अपना मत बताते हुए कहा "सहायता का याचना के उत्तर मे यदि हम तुरत चढाई कर देंगे तो इर्द-गिर्द के रजवाड़ों के अलावा स्वयं महाराणा को भी हमारा यह कदम उचित जंचेगा। इस प्रकार की घुसपैठ का अभ्यस्त कालूसिह इस बार भी असावधान रहेगा। इसके अतिरिक्त इस दु संभावना से भी इनकार नही किया जा सकता कि हमारे आक्रमण की तैयारी करने मे लगे रहने पर कालूसिह को आक्रमण की पूर्व-सूचना मिल जाएगी, जो हमारे लिए घातक सिद्ध होगी। तुरंत आक्रमण का मतलब है छापा मारना !"

अंततः महारावल के नेतृत्व में तुरत आक्रमण करने का निर्णय लिया गया। उसी समय राजपुरोहित को बुलाकर अभियान का मुहूर्त भी

निकल वा लिया गया। तत्काल निजी स्तर पर संबंधित विश्वासपात्र ठाकुरों और सैनिक अधिकारियों को आदेश भी दे दिया गया कि पूनम की सांझ को प्रस्थान करना है।

युद्ध के निर्णय के साथ ही गलाल रंग में आ गया। पड़ाव पर पहुंचते ही वकता भाई के सम्मुख उसके मुह से वही पुराना वाक्य निकल पड़ा :

क्षत्रियो ना जया अमे,
उछी नो जीव लाव्या !

ठीक उसी समय वक़ता भाई के कानों मे किसी के छीकने की आवाज सुनाई पडी।

वक़ता भाई को जब से यह समाचार मिला था कि पूर्णिमा के दिन प्रस्थान करना है तब से वे चिंतित थे। पूनम के रोज तो गलाल का 'गणेश' बैठने को था। सांदरवाडा में तो लडकियो का 'गणेश' बैठ भी गया होगा। पर वकता भाई को लगा कि गलाल का इन बातों की ओर बिलकुल ध्यान नही है।

वक़ता भाई को गंभीर देखकर गलाल ने प्रश्न किया, "चुप क्यों हो, वक़ता भाई ? बैठे-बैठे रोटी खाते है, कहीं वह तो पेट में दर्द नही करती ?"

"बापू, राजपूत को तो हाथ में आयी रोटी छोड़कर दौड़ना पड़ता है ! कभी-कभी तो ऐसा अवसर भी आता है कि एक हाथ मे रोटी और दूसरे हाथ मे तलवार रहती है।"

"तो फिर क्या बात है ?"

वक़ता भाई ने इस युद्ध के लिए पागल राजपूत की ओर प्रेम और करुणा से भरी एक दृष्टि डाली और हंसने की कोशिश करते हुए कहा, "परंतु विवाह का तय जो करके आए हो उसका क्या होगा ?"

गलाल पर जैसे किसी ने जलता हुआ अंगार रख दिया। बोला, "हां, वकता भाई !" फिर तुरंत जोड़ दिया, "पर उसमें तो अभी देर है न ?" उसने अपना संदेह भी व्यक्त किया, "आश्विन के कृष्ण पक्ष की पंचमी का मुहूर्त तय किया है न ?"

"नही, कार्तिक शुक्ला पंचमी को तय किया है। पर ऐसा कही हुआ है कि एक तरफ तो कन्या का गणपति-पूजन संस्कार हो रहा है, उसे 'पीठी' चढ़ रही है और दूसरी तरफ वर लडाई में जा रहा है ?"

"न हुआ हो तो अब होगा। इसमें क्या बिगड़ने का है!"

और तब वकता भाई ने विनोदपूर्ण लहजे मे कहा, "और कही उधार मांगकर लाया हुआ जीवन लौटा देना पडा तो ?" क्षणभर रुक-कर कहा, "बापू ! ऐसी दशा में वे दोनों कुंवरियां न तो बेचारी विवाहित रहेंगी और न कुंआरी ही !"

"हूं, यह बात भी सही है।" गलाल ने सिर हिलाया। यद्यपि उसे कडाणा की लड़ाई भवाई के खेल के सदृश लगती थी, पर साथ ही वह यह भी महसूस करता था कि ग्यारह अक्षौहिणी सेना का विजेता अर्जुन 'काबा' के हाथों लूट लिया गया था। इसलिए यदि कन्याओं का गणपति-पूजन संस्कार हो गया हो तो विवाह-कार्य जरूर निपटा लेना चाहिए।"

वकता भाई की भी यही राय थी। इसके बाद तो उसने वकता भाई से मत्रणा करके यहीं से सीधे सांदरवाड़ा के लिए सवार भेजने का निश्चय किया। यदि कन्याओं का गणपति-पूजन संस्कार संपन्न हो गया हो तो वह चुपचाप सीधा पचलासा आएगा। और अगर सपन्न न हुआ हो तो कहता आएगा कि जब तक दूसरे मुहूर्त की सूचना न मिले तब तक गणपति-पूजन संस्कार न करे।

पूर्वोक्त निर्णयानुसार वक़ता भाई ने पौ फटते ही एक सुयोग्य अश्वारोही को सादरवाड़ा के लिए, इस आदेश के साथ रवाना किया कि कन्याओं का गणपति-पूजन संस्कार यदि संपन्न हो गया हो तो पक्की सूचना प्राप्त कर सीधे-सीधे पचलासा आ जाना। सांझ को तेरी राह देखूंगा।

गलाल का ध्यान इस ओर भी गया कि रावल जी को लग्न रखने की बात कहकर परिस्थिति समझा दी जाए। परंतु दुबिधा यह थी कि उसी के आग्रह के फलस्वरूप युद्ध का आदेश दिया गया था और अब यदि वह स्वयं ही विवाह का पचड़ा ले बैठता तो स्थिति कितनी हास्यास्पद हो जाती! अतः गलाल ने सोचा, पहले देख लेते है कि वह

आदमी क्या समाचार लाता है, फिर बाद मे जरूरी हुआ तो बात करेंगे। इस निश्चय के बाद वह रावल जी से दो दिन मे लौटने का वादा करके रिसाले के साथ पचलासा के लिए रवाना हो गया। वकता भाई से भी कहा, "लग्न का यदि तय ही रहा तो खडे-खड़े आकर 'रज़ा' ले जाएगे।"

गलाल को याद था कि पियोली मा ने स्वयं के रक्त से पत्र लिखा है। पचलासा का सिवान आते ही उसने वक़ता भाई से सलाह मांगी, "क्या होगा ? मां के पूछने पर क्या उत्तर दूगा ?"

"बापू ! पहली बात तो यह कि वह पूछेंगी नही, और यदि पूछ लिया तो मै उन्हे उचित उत्तर दूगा।"

"क्या कहोगे ?"

"कहूंगा कि बापू तो स्वयं ही सीधे कडाणा जाना चाहते थे। पर रावल जी ने यह कहकर उनकी आखें खोल दी कि कडाणा के पास विशाल सेना है और साथ ही परकोटे वाला शहर भी है—इसलिए विचारहीन साहस···"

नहीं, नही, वकता भाई !" गलाल ने हस्तक्षेप किया, "मां से कहना कि बापू ने कडाणा पर कड़ी नजर डाली है, इसलिए अब उसे नेस्त-नाबूद ही मान लो ! कालूसिह माही नदी का पानी अधिक से अधिक पांच-सात दिन और पी सकेगा !"

"ठीक है, यही कहूंगा !" वक़ता भाई ने भी हामी भरी।

पर पियोली मा धोखा खा जाए इतनी कच्ची नही थी ! उसने ऊपर की मंजिल पर से गलाल के रिसाले को आता देखकर, आगे का दरवाजा तो बंद नही करवाया, पर ड्योढ़ी-द्वार बद करने का तुरंत आदेश दे दिया। कोतवाल को कारण समझने मे देर न लगी कि सामने की टेकरियो पर घुडसवारों की टुकडी देखकर ही माजी सा'ब ने यह हुक्म दिया है। पर उसे तो मालूम था कि यह रिसाला बापू का है। अभी-अभी ही सीमांत चौकी से घुड़सवार आकर सूचना दे गया था कि डूंगरपुर से अपना रिसाला आ रहा है।

फिर भी मांजी सा'ब का हुक्म मिलते ही उसने पुन सवार भगाकर

स्वयं को पूरी तरह से आश्वस्त कर लिया। इसके पश्चात् रनिवास के चौक में जाकर दासी द्वारा कहलाया, "द्वार बंद करने की बिल्कुल जरूरत नही है, यह तो अपना ही रिसाला डूंगरपुर से आ रहा है।"

"अपना कैसा, कोतवाल ?" पियोली ने भीतर से गर्जना की।

कोतवाल ने बरामदे मे चहलकदमी करते हुए कहा, "माजी सा'ब ! डूगरपुर से बापू स्वय पधार रहे है !"

"बापू नही रे, साक्षात् शत्रु आ रहा रहा है।" और इन शब्दों के साथ ही पियोली दहाड उठी, "कहा गया दरोगा ?"

किवाड़ के पीछे खड़ा दरोगा तुरंत दौड आया, "जी, आज्ञा दीजिए।" और हाथ जोड़कर द्वार के आगे खड़ा रहा।

"बद करो, ड्योढ़ी-द्वार।"

"जो आज्ञा।" दरोगा ने पीठ फेरी। उसके पीछे-पीछे कोतवाल भी भयभीत-सा हांफता-हांफता यों निकल पड़ा जैसे उसे अंदर कोई हवालात में बंद कर रहा हो।

और एक तरफ तो गलाल ने दरबारगढ मे प्रवेश किया और दूसरी तरफ उसके आवास-गृह मे जाने का ड्योढी-द्वार कर्कश ध्वनि के साथ बंद हो गया। लीलागर भी चौक के मध्य में स्थित नीम वाले चबूतरे के पास थम गया।

कोतवाल से पियोली मां की आज्ञा सुनकर गलाल की झीनी गुलाबी आंखों से आक्रोश की लपटें बरसने लगी।

वकता भाई ने चबूतरे पर गदला बिछाकर गलाल के हाथों मे अपना हाथ दिया और उससे घोडे से उतरने की विनती की। जैसे कान में आंख के संकेत से कुछ कह रहा हो यों कहने लगा :

ऊणा घडा छलके घणा
वीर नर तो भर्या भर्या

(अधूरा घड़ा अधिक छलकता है। वीर पुरुष का हृदय तो पूरी तरह भरा होने पर भी नही छलकता।)

दरअसल वकता भाई जिद्दी और क्रोधी स्त्री के अविचार और

अविवेक से संबंधित बीच की दो पंक्तियां खा गए थे, पर गलाल तुरंत भांप गया कि ये दो पंक्तिया ही तो महत्त्वपूर्ण है ! और वह वक़ता भाई का सहारा लेकर घोड़े पर से कूद पडा । गदले पर बैठते हुए और हंसने की चेष्टा करते हुए वह केवल यही कह सका, "यह भी खूब रही, वक़ता भाई ! अपने ही घर मे निर्वासन और वह भी जन्मदात्री मा के द्वारा !"

'यद्यपि वक़ता भाई धीमे स्वर मे इन शब्दों के साथ हुंकारा भर रहा था कि "ऐसा तो होता ही रहता है, बापू !" तथापि उसके हृदय में यह सोचकर एक भयंकर दहशत बैठ गई थी कि काटने-कटाने की लड़ाई अच्छी । पर यह गृहकलह बुरी चीज है ! और वह भी मां-बेटे का कलह ! मन ही मन बोला, 'कैसा विचित्र संयोग है—एक तरफ पाणिग्रहण, दूसरी तरफ कडाणा पर चढ़ाई और इधर घर में मा-बेटे के बीच द्वंद्व !'

पर लगभग पंद्रह-सोलह कोस की लंबी यात्रा के बाद इस भरी दुपहरी की भूख के आगे यह सब सोचने-विचारने का समय ही कहां था ? वह स्वयं भी गलाल के रसोईघर मे भोजन करता था अतः समझ गया कि गलाल के साथ-साथ उसके लिए भी रसोईघर के द्वार बंद हो गए हैं । यह खयाल आते ही उसने रिसाले के भोई को बुलाकर हवेली के पार्श्व में स्थित अतिथिशाला में चूल्हा सुलगवाया । गाव के मोदीखाने से आदमी भेजकर आटा भी मंगवाया । दाल-सब्जी मंगवाने की तो किल्लत थी ही नहीं, चूकि डूगरपुर से आते समय गलाल ने रास्ते में एक हिरन मार गिराया था ।

गलाल भी कृतसंकल्प था—मां के दिए हुए निर्वासन का यथासंभव पालन करना चाहिए । अतः दरवाजे के ऊपर दीवानखाने में या अतिथिशाला में जाने के बजाय उसने उस चबूतरे पर ही पलंग बिछवाया ।

पलंग पर लेटते हुए गलाल बड़बड़ाया भी सही—'चलो, यह भी अपने-आप में एक खास किस्म का मजा ही है'''यदि विवाह का तय हुआ तो यहीं पर गणपति-पूजन संस्कार, यहीं पर पीठी और

'वरयात्रा'[1] भी यही से निकलेगी…

प्रलयंकर पियोली मां

इधर सागवाडा की सैनिक चौकी पर कुआ टूटने की खबर पहुंची और उधर कालूसिंह ने लूट का माल लेकर कडाणा की सीमा में प्रवेश किया। यदि चौकी का उत्तरदायित्व नगारची के कंधों पर था तो धीरसिंह अश्वारोही सैनिकों पर नियुक्त था। सूचना मिलते ही धीरसिंह ने घोडे को हवा में तैरता छोड़ दिया। पर जब तक वह कुआ पहुंचे तब तक तो कालूसिह के सैनिक कडाणा पहुच चुके थे। पचलासा में भी ठीक उसी समय खबर पहुंची। वहा से भी घुडसवार पवन-वेग से दौड पड़े। पर अंततः उनके हाथो भी निराशा ही लगी।

कडाणा से पुत्र के लिए विवाह-नारियल की प्रतीक्षा में बैठी हुई पियोली मां, कालूसिंह की इस डकैती का समाचार सुनकर इस सीमा तक आग-बलूला हो उठी कि उन्होंने अविलंब कागज-कलम उठाया, छुरी से अपनी उगली काटी और सीपी में रक्त भरकर पत्र लिखने बैठ गईं…।

तेजी से घोड़ा दौड़ाकर, सवार के हाथ डूंगरपुर पत्र भेजकर वह तो यही सोच रही थीं कि गलाल डूगरपुर से ही सीधा कडाणा पर धावा बोल देगा। और जिस कुंवरी की वह वधू के रूप में बाट जोह रही थीं, जिसे गलाल पाणिग्रहण करके लिवा लाने वाला था, वही अब विजय के साथ लाई गई अबला के रूप में मानी जाएगी और दासी के समान इस महल में रहेगी।

पर पियोली की इस प्रतिशोधजन्य महत्त्वाकांक्षा पर पानी फिर गया। पुत्र तो अपने टट्टुओं सहित सामने की पहाड़ियों पर आता हुआ दिखाई दिया। रिसाले की धीमी और थकी-हारी गति से ही पियोली

१. विवाह के एक दिन पहले वर को घोड़े पर बिठाकर मंगल-वाद्य और गीतों सहित उसका एक जुलूस निकाला जाता है जिसे 'बागड़ी' बोली मे 'उघलना' कहते हैं।

ने अनुमान लगाया कि गलाल तो घर लौट रहा है। इस बोध के साथ ही उन्होंने एक ऐसा आतरिक आघात महसूस किया कि जैसे दास-दासियों की उपस्थिति मे किसी ने उनका भयकर अपमान कर दिया हो··· उनका रोम-रोम मर्माहत हो उठा !

घायल सिंहनी के समान वह स्वयं को ही प्रतारित करने लगीं—'यह आया विधवा रांड का बेटा ! अरे उसे बेटा-बेटा कहकर मत पुकार, पियोली ! अब तो वह औरतों का गुलाम बन गया है ! ···सुना है सागवाड़ा के नगरसेठ की पत्नी ने उसे भाई कहकर संबोधित किया है। पादेड़ी के मावा पटेल की पत्नी रुक्मणी को तो गलाल ने 'मामेरा' पहनाकर धर्म की बहन बनाया है···इस प्रकार इधर-उधर बहनें बनाते फिरना इस बात का पक्का प्रमाण है कि पियोली का जो पुत्र अब तक युद्ध-युद्ध रटता था वही अब औरत-औरत रट रहा है ! एक ओर वह कडाणा कुंवरी है जो कहती है कि हम तो विवाह कर बैठे है और दूसरी ओर यह तेरा बेटा सांदरवाड़ा के एकसाथ दो नारियल थामे बैठा है। इससे ज्यादा स्त्री-पिपासु और कौन हो सकता है ? अपने ही लहू के अक्षरों से मैने पत्र लिखा, फिर भी उस पर कोई असर नही पड़ा और मजे से घोड़े पर बैठकर बेशर्मी से चला आ रहा है ! !'

इस आत्मग्लानि और आत्म-प्रतारणा के साथ, पियोली के हृदय में क्रोध की ज्वालाएं भभक उठी। और तो वह क्या करती, ड्योढ़ी-द्वार बंद करवा दिए।

ड्योढी-द्वार के अंदर भी एक काफी बडा चौक था। चौक के पिछले भाग में रनिवास था तथा द्वार के ऊपरी भाग का उपयोग स्वयं गलाल करता था। द्वार बंद करवा देने के बावजूद पियोली का आक्रोश अभी शांत नही हुआ था। उन्होंने गलाल के भवन में आकर खिडकी की दरारों में से देखा तो पाया कि चबूतरे पर पलग बिछाकर गलाल बैठा हुआ है और सैनिक अधिकारियों से कुआं टूटने का विवरण सुन रहा है।

विवरण सुनते-सुनते गलाल क्रोधावेश मे खड़ा हो गया पियोली को आशा बंधी कि पुत्र शायद अभी ही घोड़े पर सवार हो जाएगा। पर यह दृश्य देखते ही वह सद्यः प्रसूता आशा निराशा मे बदल गई जब सैनिक

अधिकारियों को बिदा करके गलाल पलंग पर पुनः लेट गया और लेटे-लेटे ही मूछो पर ताव देने लगा ।

इस दृश्य ने उनके मन मे इतनी अधिक वितृष्णा पैदा कर दी कि वह यों बड़बडाती हुई कि तेरी इन मूछो पर थूकती हूं, पैर पटकती हुई इस प्रकार चल दी कि पैरो के नेवर जैसे तलवारो की खड़खड़ाहट पैदा करने लगे और उड़ती हुई ओढनी जैसे अग्नि की लपलपाती हुई लपट बन गई ।

हालाकि गलाल की भूख पूरी तरह से मर चुकी थी तथापि वकता भाई के आग्रहवश उसे कुछ खाना पड़ा ।

भोजन से निपटने के बाद, कडाणा की जानकारी प्राप्त करने के लिए गुप्तचर भेजते समय गलाल को रगा बुरी तरह से याद हो आया । उदास और लटका हुआ चेहरा लिए ज्यो ही लेटने को हुआ कि सांदरवाड़ा से सवार भी आ पहुंचा । यह सूचना मिलते ही कि कुवरियों का गणपति-पूजन संस्कार संपन्न हो गया है, वकता भाई ने गलाल से कुछ मंत्रणा की और पिछले दरवाजे से आदमी भेजकर पियोली मा से मिलने की अनुमति प्राप्त की ।

पियोली को भी, किसी के सम्मुख तो अपनी भड़ास निकालनी ही थी और भला इसके लिए वकता भाई से बढकर उपयुक्त व्यक्ति और कौन हो सकता था ? पियोली की दृष्टि मे तो वह आधा गलाल ही था । अनुमति मिल जाने पर पियोली के सामने खड़ा वकता भाई जैसे ही प्रणाम करने के लिए हाथ जोड़ने लगा कि झूले पर से झुझलाई हुई पियोली बोल पड़ी, "खबरदार, जो मुझे किसी ने प्रणाम किया तो !"

वकता भाई मुस्कुराता हुआ सम्मुख गलीचे पर बैठ गया । और बोला, "प्रणाम न करने देने से क्या होगा, मा ! प्रणाम न करने देने से क्या आप मां नही रहेंगी ?"

"समझ लो कि मां के रूप में मैं मर गई हू !" पियोली ने झूला रोक दिया । बाहर गलाल की तरफ हाथ से इशारा करके कहा, "उस विधवा-रांड के बेटे ने इतना भी नही सोचा कि मां ने यदि उगली काटकर पत्र लिखा है तो उसके हृदय मे किस सीमा तक आग लगी होगी, कि उसने

किस सीमा तक मर्माहत होकर यह पत्र लिखा होगा ?" और इसके साथ ही दात पीसती हुई पियोली की आवाज खूखार हो उठी। वकता भाई को डर भी लगा कि कही मेरा गला न काट डालें ! पियोली कहती है, "जगत् मे मेरी हंसी कराकर पलग पर लेटा है···क्या उसमे इतनी लाज-शरम भी नही है कि···" गुस्से से जली पियोली मा का अग-प्रत्यग काप रहा था। वह आगे कुछ बोल भी न सकी।

इस मौन-अंतराल का लाभ उठाकर वकता भाई कहने लगा, "मा सा'ब ! गलाल बापू तो उसी क्षण छलाग मारकर घोडे पर सवार हो गए थे ! पर खुद रावलजी ही बाधक बने। उन्होंने कहा कि कडाणा परकोटायुक्त शहर है और दो सौ, पांच सौ सैनिक तो जाते ही स्वाहा हो जाएंगे। ऊपर से ईडर और गनोरा की कीर्ति-पताका भी धूलि-धूसरित हो जाएगी और दुनिया हम सबको मूर्ख कहेगी।" साथ ही शुभ सवाद के तौर पर उसने तुरंत जोड़ दिया, "मां सा'ब ! वैसे भी चार रोज बाद पूनम के दिन युद्ध-अभियान का मुहूर्त रखा है !"

गुस्से मे होने की वजह से पियोली ने कितना सुना यह कहना कठिन है। चेहरे पर गुस्से की धुंध लिए वकता भाई को घूरती हुई कहने लगी, "तो इसीलिए उसने पचलासा मे आकर पलंग बिछाया है, क्यों ?" पियोली मा का कथन व्यंग्यपूर्ण था। यद्यपि वह प्रत्यक्षत: कह नही सकती थी तथापि उनका निहितार्थ यही था कि कूच भले ही दो दिन बाद हो, परंतु प्रश्न यह है कि कडाणा को ध्वस्त किए बिना उसने पचलासा मे पैर क्यो रखा ?

पर वकता भाई पियोली के पूर्वोक्त कथन के इस निहितार्थ को नही समझ सका। हंसकर कहने लगा, "मा ! आपने ड्योढ़ी-द्वार बंद करवा दिया है, ऐसी दशा मे वह चौक मे ही तो पलंग डालेगा !"

"तुम्हारे जैसे साथी मिले इसीलिए तो उसने खून के अक्षरो से लिखे मां के पत्र को चीथड़ा समझा !" और इसके साथ ही पियोली मा के रोम-रोम में जैसे क्रोध का कुहराम मच गया। जैसे खा जाना चाहती हो ऐसी हिंस्र आखो से वक़ता भाई को घूरकर कहने लगी, "उठ, यहां से बाहर निकल।" वक़ता भाई को मारने के लिए ही जैसे झूले से उठ

खडी हुई और चीख उठी, "उठ, भाग यहा से ।" हाथ लबा करके रास्ता भी दिखाया, "दूर हो जा मेरी आंखों से ।"

बेचारा वकता भाई तो जैसे पानी-पानी हो गया । उठकर चलता बना । पर किवाड़ बंद करके वह बरामदे में अभी आधी दूर गया होगा कि सेनापति की अदा में थम गया । पीछे मुड़कर रंजिश-भरी नजरों से पियोली को एकटक देखते हुए कहा, "मां सा'ब ! गलाल बापू अब खिलौने नही खेलते है कि आप उनके साथ बच्चों का-सा व्यवहार करें ! मैं तो आपसे केवल यह कहने आया था कि इस तरह करते-करते तो मां-बेटे का संबध जड़मूल से उखड जाएगा और···"

"अब तो उखड़ा हुआ ही है !"

"तो आप जानें !" और वक़ता भाई ने खीझ के साथ पीठ फेरी ।

पिछले द्वार की ओर जाने के बजाय अग्रभाग की ओर बढने लगा। पलभर की हिचक के बाद सत्तापूर्ण स्वर में कहा, "ड्योढी खोल रहा हूं, आप अपने इस आवास का द्वार बंद करवा लेना," और चलता बना ।

पियोली को अब जाकर होश आया कि उसके पास सिवाय थूक उडाने के ऐसी कोई सत्ता नही है जो वक़ता भाई या अन्य किसी को ड्योढी खोलने से रोक सके। हां, इस समय यदि गारासिग होता तो दूसरी बात थी । पर नया दारोगा तो—अरे गारासिग भी—दरअसल इस पचलासा मे आने के बाद से तो खुद मांजी साहब का ही रुतबा राजमाता के पद से च्युत होकर संप्रति तो सिर्फ एक जागीरदार की विधवा मां का रह गया है—ऐसी स्थिति में भला गारासिंग भी किस खुमारी के बल पर इन लोगों का विरोध कर सकता था !

वक़ता भाई के शब्द और दृढ कदम देखकर जमीन में गड़ी जा रही पियोली ने ज्यों-त्यो कर उस ओर कदम उठाए । वक़ता भाई की पीठ ताकते हुए सवाल किया, "आखिर आप लोगो ने क्या सोच रखा है, वक़ता भाई ?"

वक़ता भाई रुका । अब भी उसकी इच्छा यही थी कि मां का रुतबा निरापद रहे और घर में संप बना रहे तो अच्छा ! पर साथ ही वह ढीली नीति से बात करना भी नही चाहता था । पियोली की ओर मुंह

फेरकर कहा, "एक ओर सादरवाड़ा में कन्याओ को पीठी चढ़ रही है, दूसरी ओर पूनम की शाम को, डूगरपुर से सेना कूच करने को है और यहां आप हमारा मार्गदर्शन करने के बजाय···"

"पीठी भी चढ गई है !" लगा कि पियोली अभी फिर बिफर जाएंगी ।

और जब वकता भाई ने सवार भेजने तथा पीठी चढने के समाचार मिलने की बात कही, तब तो वह बड़ी मुश्किल से खड़ी रह सकी । उन्होंने बात सुनते-सुनते बीच में ही धडाम से द्वार बंद कर दिया । कहा, "पीठी चढ़े अथवा चिता पर चढ़े ! मैने उससे कहा था कि तू नारियल स्वीकार कर ले जो अब मैं उसका मार्गदर्शन करूं ?"

किवाडो पर अरगला लगाए जाने की आवाज सुनकर वकता भाई ने पुनः एक ठंडी सांस भरी । इस घर के भविष्य को लेकर उसके हृदय में उठ रही आशकाएं इतनी भयावह थी कि जब तक वह नीचे ड्योढ़ी-द्वार खोलकर गलाल के पास पहुचा तब तक तो जैसे वह स्वय ही होश में नही था ।

वकता भाई से संपूर्ण हकीकत सुनने के बाद गलाल ने कहा, "मैंने तो तुमसे पहले ही कहा था कि हमने अपनी मा खो दी है ! अब तो हमें स्वयं ही निश्चित करना पड़ेगा कि इस पीठी रूपी अशुभ ग्रह से कैसे छुटकारा पाया जाए !"

अशुभ ग्रह (गरो) शब्द वकता के हृदय मे शूल-सा चुभ गया था । गलाल के बिना कहे ही वह अपने मन में समझ गया कि उसके हृदय में कडाणा ध्वस्त करने की जितनी तमन्ना है उसके मुकाबले में विवाह करने की लगन तो दशांश भी शेष नही है । विवाह ही नही अपितु घर से भी उसका मन उखड़ गया है ! और वक़ता ने जब सादरवाडा जाने के बजाय खड्ग भेजने का प्रस्ताव रखा तो उसने उसे बीच मे ही काट दिया ।

फिर तो दोनों ने मिलकर तय किया कि किसी के द्वारा सांदरवाड़ा यह खबर भेज दी जानी चाहिए कि चतुर्दशी के रोज बारात आएगी और पूर्णिमा को विवाह का मुहूर्त निबटाकर उसी शाम को अथवा प्रति-

पदा की प्रातःवेला वापस लौट जाएगी ।

विवाह कार्यक्रम के विषय मे अंतिम निर्णय लेने के बाद युद्ध में जाने की रूपरेखा भी निश्चित कर ली । सादरवाड़े से प्रतिपदा के दिन प्रस्थान करने के बाद मदनफल छोड़ने की विधि इत्यादि निबटाकर अपने सैनिकों सहित निकल पड़ेगे और छोटे रास्ते से ओबरी के आगे अथवा उसके आस-पास ही रावलजी की सेना को अधिक से अधिक तीसरे दिन पकड लेंगे ।

पूर्वोक्त कार्यक्रम के अनुसार वक़ता भाई ने दूसरे दिन पुरोहित बुलवाकर गलाल के गणेश-पूजन समारोह की तैयारी आरभ कर दी । अंत पुर में से गलाल के दास-दासियो को बुला लिया । पियोली मा के पास दरोगा को भेजकर आभूषणो की मांग की ।

वैसे तो शायद पियोली मा आभूषण न भी देती, पर वकता ने जिस प्रकार से ड्योढी-द्वार खोल दिया था उससे वह समझ गई थी कि अब उनकी चलने वाली नही है ! दरोगा के मांगने पर पियोली मा ने संदूक खोलकर गहनो के दो-तीन डिब्बे उसकी ओर क्रोधपूर्वक खिसका दिए । भीमसिह के हार वाला डिब्बा तो उसने इतने आवेश के साथ पटका कि वह खुल गया । हार के साथ-साथ दो-तीन दूसरी मालाए भी बिखर गई ।

एक ओर तो गणपति-पूजन मे बैठा हुआ गलाल मातृ-विहीन-सा उदास प्रतीत होता था, परतु दूसरी तरफ जहा तक प्रजा का प्रश्न था वह उन लोगो का सही अर्थो मे लोकप्रिय ठाकुर था । उसके शासनकाल में लोगों को इतनी अधिक सुख-शांति मिली थी कि स्वाभाविक रूप से पचलासा के ये लोग हर्षविभोर होकर विवाह-पूर्व के इस प्रथम समारोह में सम्मिलित होने के लिए उमड़ पड़े थे ।

दरबारगढ़ के मुख्य द्वार पर शादी के बाजे बज रहे थे और अग्रणी महाजनो के परिवार श्रेष्ठ परिधान और आभूषणों से सज्जित होकर कोतवाल का अभिनंदन-स्वागत स्वीकारते हुए, सीधे गलाल के पास, ऊपर की मंजिल पर पहुंच रहे थे ।

दरबारगढ के लंबे-चौड़े प्रांगण में आम जनता उमड़ी हुई थी । गलाल बापू के प्रति शुभ-कामना और आदर व्यक्त करने का ऐसा स्वर्णिम

अवसर मिल जाने से रसिक युवक-युवतिकों ने चौराहे के चबूतरे के चारों ओर परिक्रमा करते हुए 'घेर' नृत्य आरंभ कर दिया । इन युवक-युवतियों ने मुक्त कंठ और खुले मन से पुलकित हृदय को गीत में गूंथकर हवा में खेलने के लिए छोड दिया···उनके गीतो से यौवन का मधुहास झर रहा था···!

पर जिस गलाल के लिए आनद की यह बाढ सहसा उमड़ पडी थी, उसके हृदय-सरोवर में यदि किसी ने झांककर देखा होता तो उसे चारो ओर फैले हुए राजपूताने के अंतहीन सूखे तप्त बालुकामय मरुस्थल के सिवाय शायद ही कुछ दिखाई पड़ता ! उल्लास के इस क्षीरसागर के मध्य उसका हृदय-द्वीप तप्त प्यास-सा झुलस रहा था ।

पृष्ठभाग मे पियोली मां की भी लगभग यही स्थिति थी । यदि दोनों की मन स्थिति में कोई अतर था तो सिर्फ इतना कि जहां गलाल के हृदय मे युद्धभूमि पर छाई हुई रात के पहले पहर की सी शांति विराजमान थी तो पियोली मां के हृदय-प्रवेश मे जैसे युद्ध की आधिया उमड़ रही थी ।

दूज का करार

गलाल के गणपति-पूजन समारोह मे सम्मिलित होने वाले परिपाटी-प्रिय लोग अभी तक यही सोच रहे थे कि गलाल बापू ने सांदरवाड़ा का नारियल स्वीकार करके, विवाह-तिथि बीसेक दिन दूर की रखी होगी और इस प्रकार बापू की 'पधरावनी' (स्वागत-समारोह) करने का लोगों को सुअवसर मिल सकेगा । नगरसेठ से लगाकर मुखिया, मध्यस्थ और राजपुरोहित जैसे पदाधिकारियो तथा ब्राह्मण, वणिक्, राजपूत और पटेल जैसी प्रमुख जातियों के अगुआओ ने तो पहले से ही निश्चित कर लिया था कि बापू का स्वागत-समारोह हम अपने-अपने घर पर आयोजित करेंगे ।

परंतु तभी बातो की सरसराहट से प्रकट हुआ कि पियोली मा नाराज हैं और चूंकि बापू ने कडाणा ध्वस्त करने का व्रत लिया है अतः वे गण-

पति-पूजन निपटाकर शीघ्र ही डूगरपुर के लिए प्रस्थान करेंगे और रात को देर से वापस लौटेंगे। अतः इस हिसाब से तो रात्रि को वरयात्रा (फुलेकु) भी शायद ही निकलेगी।

इस खबर के फैलते ही गुड-धनिया लेकर घर की ओर लौटते हुए लोग गलाल बापू के विवाह की चर्चा के स्थान पर, कडाणा-अभियान की चर्चा मे व्यस्त हो गए। यदि बहुत से लोग गलाल के इस करुण जीवन के प्रति संवेदना प्रकट कर रहे थे तो कई लोग 'उधार मांगकर जीवन लाने' की उस सुप्रसिद्ध उक्ति को दुहराकर कहते थे, "भाई, राजपूत का जीवन ही ऐसा है···गलाल बापू के लिए तो लड़ाई यानी महज़ होली-फाग का खेल है···कडाणा ने कुआं का खजाना लूटा तो है, पर अब तक लूट-लूटकर कालूसिंह ने धन का जो कुआं भरा है उसे इस बार यदि गलाल बापू न उलीचे तो याद करना···!"

कई लोग ऐसे भी थे जो अभी तक इस बात को गप मान रहे थे कि बापू गणपति-पूजन के तत्काल बाद डूगरपुर जाएगे। परंतु अभी थोड़ा सा समय बीता था कि लोगो ने देखा—गलाल बापू और वक़ता भाई दोनो ही घोड़ों पर सवार होकर जा रहे है···

गलाल के शरीर पर अगर पीठी चढी हुई न होती तो शायद वह कडाणा-विजय की धुन मे विवाह करना भी भूल जाता। डूगरपुर की ओर जाने वाले उस पर्वतीय पथ पर भी उनके बीच, कडाणा का परकोटा और इसी प्रकार के अन्य सभी विषयो पर बातचीत जारी थी।

खेड़ा-कछवासा गाव की सीमा पर एक पुरानी बावडी थी। न जाने अचानक गलाल को क्या सूझा कि वह लीलागर को रोककर वकता भाई से पूछने लगा, "कहो वक़ता भाई! कडाणा का परकोटा इस बावड़ी की छतरी के बराबर होगा या इससे भी ऊंचा होगा?"

बेचारे वकता भाई को क्या पता था कि गलाल लीलागर की परीक्षा लेना चाहता है। वह छतरी की ऊचाई का अंदाज़ लगाते हुए कहता है "बापू, किसी-किसी स्थान पर तो इस छतरी से भी नीचा है!"

अच्छा तो फिर देखना ध्यानपूर्वक!" और गलाल ने लीलागर की लगाम खीची। लीलागर दौड़ पडा। लगाम का संकेत छतरी की ओर

देखकर वह समझ गया कि उससे क्या अपेक्षा की जा रही है।

बेचारे वकता भाई को, गलाल को रोकने तक का समय नही मिला। बांज की तरह झपटते हुए लीलागर को, वह सास रोके अवाक् सा विस्फारित आखों से सिर्फ देखता भर रहा। उसके प्राण आखो मे समा गए थे। उसे उस पाचेक हाथ की ऊचाई का जितना डर नहीं था, उससे ज्यादा छतरी की चौड़ाई का था।

तपाक से लीलागर उछला!

जैसे लीलागर के पिछले पैर उसकी खोपड़ी से टकराने वाले हो यों घबराया हुआ-सा वकता भाई अपने घोडे पर दुबककर बैठा रहा। इतने में तो वह देखता क्या है कि धरती पर ढलता हुआ लीलागर उस चौड़ाई को भी सही-सलामत लाघ गया है।

काफी दूर तक जाकर वापस लौटता हुआ गलाल लीलागर पर झुककर उसे जितना प्यार कर रहा था, उसकी तुलना मे वक़ता भाई काफी दूर होते हुए भी उसके प्रति कम प्यार नही जाता रहा था। वह तो गलाल को उपालभ देना भी भूल गया और कहने लगा, "बापू, तुम मानो या न मानो, पर मुझे तो लीलागर कोई दिव्य अश्व लगता है!"

इसके बाद तो उसने गलाल को चेतावनी भी दी, "बापू, तुम अकारण ऐसी नादानी क्यो करते हो? युद्ध मे इस प्रकार का काम करते हुए यदि प्राण जाएं तो वह साहस का कार्य कहलाता है, पर बिना कारण यों बावडी लांघने के दौरान यदि दुर्घटना हो जाए तो लोग उसे मूर्खता ही गिनेंगे, है न!"

कारण जो भी रहा हो, पर इस घटना से गलाल की आत्मा में एक निराले और अभूतपूर्व आत्मविश्वास का उदय हुआ। कहता है, "वक़ता भाई! अब तो वह झख मारता है। उसकी पराजय सुनिश्चित है। तुम कालू कडाणिये को बस मरा हुआ ही समझो! जब तक लीलागर जीवित है और यह दुधारी तलवार मेरे हाथों में है, तब तक देवता भी मेरे लिए अपराजेय नही है!"

कडाणा-अभियान के निश्चय के बाद से यत्र-तत्र-सर्वत्र अपशकुन देखकर वक़ता भाई थक गया था। परंतु लीलागर का यह पराक्रम देख-

कर वह नयी श्रद्धा और आत्मविश्वास से भर गया। कहता है, "बापू, आप सही कहते है। ढेबर के उपद्रव के समय लीलागर ने ओडों के बीच से यों रास्ता निकाला था जैसे पानी काट रहा हो और आज तो उसने छतरी फांदकर बस हद कर दी।"

डूंगरपुर में अपनी स्वनिर्मित हवेली मे मुकाम के अनंतर, गलाल सीधा महारावल से मिलने के लिए चल पड़ा। आम तौर से अत्यावश्यक कार्य या पर्व के दिन के सिवाय और किसी दिन महारावल से तुरंत मिल पाना अपने-आप में दुष्कर था। परंतु क्योकि आजकल युद्ध की तैयारी हो रही थी, अत: इस अभियान से संबंधित लोगों को तो आसानी से साक्षात्कार का समय मिल ही जाता था।

महारावल भोजनोपरात अभी-अभी ही लेटे थे। प्रतिहार से गलाल का नाम सुनते ही उन्होने उसे आदरपूर्वक अंदर बुला लाने का आदेश दिया। स्वयं भी उठकर तकिये का सहारा लेकर बैठ गए।

गलाल को, 'जय-रघुनाथ' स्वीकार करने के बाद बाजू में पड़ी हुई चौकी दिखाते हुए कहा, "आ गए? बैठो-बैठो।" रावलजी के मन में तो यही था कि कडाणा पर आक्रमण करने के लिए अभी से आ गया है।

गलाल क्या कहता? उसे चुप देखकर रावलजी ने पूछा, "क्या स्थिति है, बापू?" वह तो बल्कि सोच रहे थे कि शायद गलाल युद्ध-संबंधी कोई नयी खबर लाया है।

पर जैसे ही उन्होने गलाल द्वारा धारण किए हुए गहने तथा उसके शरीर का असामान्य रंग देखा, वह वस्तुस्थिति को तत्काल समझ गए। दिमाग को किसी प्रकार का कष्ट दिए बिना हंसकर कहा, "गलाल बापू! क्या अभी से 'केसरिया' करने का निश्चय कर लिया है?"

गलाल को महारावल का यह मजाक विशेष पसंद नही आया। उसने भी हंसकर सविनोद कहा, "हुजूर! आपकी बात सही है। संसार में जीवट के साथ किसी भी काम मे कूद पड़ना भी, एक प्रकार का 'केसरिया' ही है?"

"यह पीठी चढ़ी हुई है!" और इसके साथ ही रावलजी की सूरत गंभीर हो गई।

गलाल ने भी उसी क्रम मे कह डाला, "हुजूर से चारेक दिन की

छुट्टी लेने आया हूं !"

"यह भी ठीक रही। एक ओर तो रणभेरी बज रही है और दूसरी ओर विवाह के मगल-वाद्य बज रहे है।"

दशहरे के पहले ही निश्चित किए हुए लग्न की बात कहने के बाद, अंत में गलाल ने कहा, "विवाह तो कडाणा के विध्वंस के बाद भी हो सकता है, हुजूर ! पर कठिनाई यह है कि उधर कन्याओं को पीठी चढ गई है और जैसा कि अभी आपने कहा, कही 'केसरिया' करने का···।"

महारावल ने 'केसरिया' शब्द का उच्चारण करते समय स्वयं तो कुछ महसूस नहीं किया था, पर जब गलाल ने 'केसरिया' नाम लिया तो उन्हें उसमें अमंगल की गध आने लगी। तुरंत उसे बीच में ही रोक-कर पूछा, "बापू ! कडाणा से डर तो नहीं गए ?"

महारावल के अतर मे यदि कोई झांकता तो स्पष्टतया देख सकता था कि इस प्रश्न के पीछे उनका स्वयं का भय बोल रहा था। कडाणा की यह बीमारी कोई नयी नही थी। परंतु ईडर और गनोरा के युद्ध मे विजय का डंका बजाने वाले वीर-रत्न गलाल के बल पर ही महारावल ने इस वक्त यह साहसी कदम उठाया था। इसलिए यदि गलाल ही ढीला पड़ जाता तो महारावल पस्त-हिम्मत हो जाते ! उस वक्त औरंगजेब के विरुद्ध युद्ध के दौरान महारावल अपनी कुमुक के साथ महाराणा के पक्ष में लड़ने के लिए गए अवश्य थे, पर उन लोगों ने रावलजी की युद्ध-कुशलता देखकर उनके सैन्य को लश्कर के पिछले भाग मे तैनात किया था ताकि यदि पहले आगे गर्दन गिरे तो रावलजी उसकी पूर्ति कर सकें। सौभाग्य से न तो राणाजी के सैन्य में गर्दन गिरी और न रावलजी को उसकी पूर्ति करनी पड़ी। वह यश में हिस्सा बंटाकर सकुशल वापस लौट आए।

रावलजी के भय को ताड़कर गलाल ने कहा, "आप बेफिक्र रहिए, हुजूर ! आप तो बस मान लो कि कडाणा टूट चुका है !" तुरंत जोड़ दिया, "मेरा इरादा तो अपने पांच सौ सवारों के साथ चढ़ाई कर देने का था, पर आपका सुझाव भी विचारणीय था !"

दरअसल गलाल इस वक्त यह कहना चाहता था कि आपके मस्तक पर विजय का सेहरा बंधे और आपको यश मिले, इसकी गणना भी मैने की थी। पर ऐसा कहने पर कही रावलजी बुरा न मान जाए यह सोचकर उसने सक्षेप में केवल इतना ही कहा, "आप तो हुजूर, बस मान लो कि कालूसिंह परमार मर चुका है !"

जो भी हो, यह स्पष्ट था कि रावलजी गलाल की परिस्थिति के आगे लाचार थे। अत में उन्होने गलाल के साथ सेना के अभियान-पथ, यात्रा-काल और उधर लग्न आदि का अनुमान लगाने के बाद उसे अनुमति प्रदान करते हुए यह भी निश्चित कर लिया कि वह किस दिन और किस स्थान पर जाकर अभियान में सम्मिलित हो जाए। और बिदाई देते समय रावलजी ने गलाल को पुन: याद दिलाया, "प्रतिपदा तेरी और दूज मेरी, गलाल बापू !"

"और 'तीज' आपके साथ, हुजूर !" गलाल ने जाते-जाते अभिवादन के साथ विनोद भी कर लिया।

इसके पश्चात् गलाल अंत:पुर मे जाकर बहन से मिला। उसका विचार पियोली मां के झगड़े के बारे मे बातचीत करने का था। पर बहन का दुख और अधिक बढ़ाने को मन नही हुआ, क्योकि उसने महसूस किया कि रावलजी की आगामी युद्ध-यात्रा से बहन स्वयं उदास है। इसके अतिरिक्त बहन के पास भी सिवाय दुखी होने के संप्रति कोई उपाय न था। और गलाल ने यह कहते हुए कि लड़ाई के कारण ही लग्न की शीघ्रता करनी पड़ी है अपनी विवशता भी प्रकट की, "अन्यथा मेरा इरादा तो यह था कि अलीगढ से दादाभाई को बुलाऊ और रावलजी को भी आमंत्रित करूं !"

"इसकी चिंता मत करो। तुम तो बस सकुशल विवाह कर आओ ···निमंत्रण आदि बाद में देखेंगे।" यह कहकर बहन ने तुरंत प्रश्न किया, "बापू ! क्या यह सच है कि कडाणा-नरेश एक सुंदर, अति सुदर कुंवरी के पिता हैं ?"

"बहन, इस संबंध में मुझे कुछ भी नही मालूम !" तुरंत सवाल किया, "तुम्हें यह प्रश्न क्यों पूछना पड़ा, बहन ?"

बहन के मुख से एक उच्छ्वास फूट पडा। कहती है, "कोई खास बात नही, पर सुना है विवाह-योग्य है और अत्यंत रूपवती है।"

हालांकि गलाल बहन के दुख को तो नही समझ पाया पर उसकी बात के निहितार्थ को समझा गया, "बहन को सदेह है कि कही रावलजी कडाणा की राजकुमारी को विवाह करके न लिवा लाए ?"

पर इस निहितार्थ को समझ लेने के बावजूद न तो वह बहन के हृदय मे गहरा उतरा और न ही उसे कोई सात्वना दी। बहन की चिंता के प्रति उदासीनता का कारण यह भी हो सकता है कि राजपूतों में और विशेषकर राजघरानो में एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी अर्थात् चाहे कितनी रानिया लाने की परिपाटी लोकप्रिय थी। अत: इस आधार पर अशक्य नही कि गलाल को बहन का वहम और दुख अर्थहीन लगा हो। जो भी हो, पर जब वह बहन से बिदा लेकर अपने मुकाम पर लौटा तब भी रास्ते में रावलजी के इस मनसूबे और रणनीति के बारे मे ही सोच रहा था।

मुकाम पर पहुंचकर जब उसने वकता भाई को अपनी मुलाकात का विवरण सुनाया तब भी उसके मन मे रावलजी के उस मनसूबे की पहेली विद्यमान थी। भोजन के बाद जब घोड़े पर बैठा तब भी अंतर्मन मे रह-रहकर यही सवाल उभरता था कि रावलजी का इरादा कडाणा को घेरकर, उससे संधि की एक शर्त के रूप में कुंवरी मांगने का है या उसे हराकर दंड के रूप में कुवरी छीनने का है ? अंतत: वह क्या करने वाले हैं ?

रास्ते में उसने वकता भाई से प्रश्न किया, "क्या यह सच है कि कडाणा नरेश की एक कुवरी है और वह अत्यंत रूपवती है ?"

जैसे घोड़ा चौकता है यों वक़ता भाई अंदर से चौंक पड़ा। कहता है, "आपसे किसने कहा ?"

सघन वन में बैलगाड़ी के रास्ते पर रहवाल गति से बढ रहे घोड़े पर बैठे-बैठे भी, गलाल ने अपने पार्श्व में वक़ता भाई की आश्चर्य-चकित आंखों को पहचान लिया। मीठी मुस्कान बिखेरते हुए कहा, "तुम क्या समझते हो कि हमसे कोई बात ही नहीं करता ?"

"बापू, आपसे बात करने वाले तो बहुत है, पर मेरे ध्यान में कुवरी की बात करने वाला कोई नही है ! अरे कहो न, किसने कहा ?" वक़ता भाई कुवरी का नाम आते ही उस पूर्व-प्रसंग के अनुसंधान में लग गया था और उस कटकाकीर्ण भूमि पर संभल-सभलकर पैर रखना चाहता था। सर्वप्रथम संदिग्ध पात्र के रूप मे अमरिया ही उसके अनु-संधान-पथ पर आ खडा हुआ। एक सदेह यह भी था कि डूगरपुर में बापू की जोगी से भेट हुई होगी और यह जानकर कि बापू कडाणा पर चढाई करने जा रहे हैं, उसने ही वह भेद उनके आगे खोल दिया हो ?

गलाल को आश्चर्य हो रहा था। उसने अपने इस आश्चर्य को इन शब्दों में व्यक्त किया, "आखिर तुम्हे हा या ना कहने मे क्या आपत्ति है ?"

"ना, आपत्ति जैसी तो कोई बात नही है," और साथ ही में जोड़ दिया, "कुवरी तो है।"

"सुना है बहुत खूबसूरत है, सच्ची बात ?"

वक़ता को हंसी आ गई, "तुम तो यों पूछ रहे हो, जैसे वकता कडाणा की कुवरी को देखकर आया है !"

"पर सुना तो होगा न ?"

"इस मामले मे जैसा आपका स्वभाव है, वैसा ही मेरा भी है। मुझे इस प्रकार की बाते सुनने में जरा भी दिलचस्पी नही है। दरअसल मुझे लड़कियो की और इसी प्रकार की दूसरी अट-सट बातो में…"

"अरे, भले ही खुद बात न करे पर कोई करता हो तो सुनने में क्या बुराई है ?" और इसके बाद गलाल ने वक़ता भाई की ओर देखते हुए एक गप उछाल दी, "सच-सच कह दो, तुम्हारे कानों तक भी इस कुंवरी की बात आई जरूर है, है न ?"

बेचारा वक़ता भाई फिर सिटपिटाया। मन में सोच रहा था… और तो सब ठीक है, पर बापू को लगेगा कि वक़ता उस सपने की राजकुमारी का नाम-पता इत्यादि सभी कुछ जानता है और फिर भी उसने, उस वक्त भी, जबकि मै जोगी को मार डालने जा रहा था, मुझे कुछ भी नहीं बताया। और अपराधी की तरह वक़ता भाई सही बात

कहने के स्थान पर हीले-हवाले करने लगा, "बात तो कानो पर जरूर आई थी, पर ऐसी तो कई बाते प्राय: आती ही रहती है। लूनावाड़ा के राजा के भी दो कुवरियां है और राजा की बेटियों का सुदर होना तो स्वाभाविक ही है बापू !"

"पर इसके विषय मे तो कहा जाता है कि बहुत-बहुत सुदर है !"

वकता भाई ने गलाल की बात खत्म करने और साथ ही यह जानने के लिए कि वह आगे क्या कहता है, जानबूझकर स्वीकार किया, "कडाणा की राजकुमारी सुदर तो है ही !"

वक़ता भाई कान लगाए प्रतीक्षा करते रहे कि देखे अब आगे क्या कहते हैं बापू। पर तभी हुआ यह कि भय तो बाघ का था और निकला खरगोश ! खोदा पहाड निकली चुहिया ! बापू कहते है, "सुना है रावलजी की उस पर नज़र है।"

"अच्छा ?" वकता भाई के मन पर से जैसे शिला-भार हट गया। एक तरफ वह राहत का आनंद अनुभव कर रहा था तो दूसरी तरफ उसे अचंभा भी हो रहा था। पर इसके बाद तो वकता भाई के मस्तिष्क में पल-पल एक प्रश्न-चिह्न बन गया था।

दरअसल यह भला आदमी इन दिनों मा-बेटे के वैमनस्य, विवाह एवं युद्ध के त्रिकोण में इतना अधिक उलझ गया था कि अब तक वह फूलां-गलाल के प्रणय-आख्यान को भूल ही गया था। पर गलाल से यह सूचना मिलते ही कि रावलजी की आंख कडाणा की कुवरी पर लगी हुई है, वह रावलजी को तो सर्वथा भूल गया और फूला-गलाल के प्रणय के भविष्य पर सोचने लगा···गुत्थी उलझती ही जा रही थी···।

गलाल, रावलजी के दूज के करार की चर्चा के बाद फिर वही बात पूछने लगा, "तुम्हें क्या लगता है? यदि रावलजी ने कडाणा की राजकुमारी से विवाह करने का संकल्प कर लिया हो तो वह होहल्ला या कडाणा का घेराव करके कालूसिंह को परेशान करेंगे या सीधे ही कुवरी की मांग···?"

पर 'हां-हा' बोलकर हामी भरता हुआ और 'क्या पता' कहकर आशय प्रकट करने की माथापच्ची टालता हुआ वकता इस जगह पर एक

तीसरी उलझन से घिर गया···कडाणा की राजतनया तो मन ही मन इस वीर पुरुष से विवाह कर बैठी है ! उसके मन-प्राणो ने इस पुरुष का वरण कर लिया है ! यह वीर पुरुष, उसके मनोलोक का पति, इस युद्ध में अग्रणी है और ऊपर से यह तीसरी आफत आ खड़ी हुई ! कालूसिह को भला क्या आपत्ति हो सकती है ? उसे तो उलटे राजपूतो मे सिर-मौर ऐसे अहाड कुल के महारावल दामाद मिल रहे है और वे भी घर आकर कुवरी का हाथ माग रहे है···ऐसी स्थिति मे उसे तो हानि की अपेक्षा लाभ ही लाभ है···भला कालूसिह क्यों इनकार करेगा और बापू के कथनानुसार रावलजी वैसे भी इसी प्रलोभनवश लड़ाई करने जा रहे है···! और इस सारी परिस्थिति के बीच जब बापू को पता लगेगा कि वह माही के किनारे वाली, स्वयं से मन ही मन विवाहित्र होकर प्रतीक्षा मे बैठी हुई कुवरी यही है तो क्या होगा ?"

वकता भाई का मस्तिष्क तेजी से घूमने लगा। परिस्थितियों के इस चक्रव्यूह मे से पलायन की कोई राह दृष्टिगोचर नही होती थी। उसे तो भविष्य चारो ओर से इतना भयानक प्रतीत हो रहा था कि जैसे घर से लगाकर चारों दिशाओं से विपत्ति ही विपत्ति एकसाथ एकत्रित होकर सब कुछ चूर-चूर करती हुई अजगर की लपेट के समान फनफनाती और लपलपाती हुई तेजी से बढी आ रही है।

जैसे विपत्तियों का घट अभी पूरी तरह से भरा नहीं हो यो उसे भरने के लिए, दरबारगढ में प्रवेश करते ही अमरिया 'जय-रघुनाथ, बापू' कहता हुआ कंधे पर झोला और हाथ मे रामैया लिए चबूतरे पर से उठ खडा हुआ।

गलाल ने तो मानो उसे पहचाना ही नही, पर वक़ता भाई को तो वह आज यमदूत जैसा अशुभ लग रहा था। आगे बढते हुए खयाल भी आया कि यह कम्बख्त आज कहां से आ टपका ?

घोड़े से उतरते समय विचार भी किया—'हौले से, चुपचाप इस सूअर को यहा से पीट-पाटकर भगा देना पड़ेगा···!'

अमरिया हिरासत में

फूला ने उस संध्या मे, अमरिया को करधनी देते हुए कहा था, "जाओ कवि, तुम्हारा उपकार कभी नही भूलूगी ।" अंदर जाते हुए बड़-बड़ाई भी थी, "प्रारब्ध मे जो लिखा होगा सो होगा।" इसके बाद अमरिया चट से उठ गया था। फूला के अतिम उद्गारों मे उसे दुर्निवार भविष्य की आशंकाएं झाकती हुई दिखाई दी थी। बल्कि अमरिया को तो उसके इन शब्दों मे कि "तुम जाओ कवि" एक चेतावनी का पूर्वाभास भी मिला था।

अमरिया का पहला विचार तो कडाणा छोड जाने का था, परंतु रात घिर आई थी। इसके अतिरिक्त यह जानने का मोह भी उसे रोक रहा था कि नारियल की चर्चा का आगे क्या परिणाम निकलता है। अभी इस पत्र के विषय में आश्वस्त होना भी शेष था। यो तो अमरिया को यह विश्वास था कि वह पत्र फूलां का ही लिखा हुआ है, पर क्योकि उसका आंतरिक भाव कडाणा छोडने का नही था, इसलिए वह इस तर्क को एक बहाने के रूप मे अपने भगोडे मन के आगे प्रस्तुत कर रहा था। इसके अतिरिक्त एक कारण यह भी था कि कडाणा में उसे कोई पहचानता नही था, अतः रह जाने मे कोई रुकावट जैसी बात भी न थी।

यही सब सोचते हुए उसने धर्मशाला मे जाकर मुकाम किया। उसने दूरदर्शिता का परिचय देते हुए रामैया झोले में डाल लिया और रात का समय होने से यह चिंता भी नहीं थी कि उसका भगवे रंग का साफा कहीं यह चुगली न खा ले कि लो यह रहा वह जोगी।

अमरिया थोडा बातूनी जीव था। अपनी चिलम को ज़रा झकझोरता हुआ वह आग के बहाने धर्मशाला के चौकीदार के पास जा बैठा। वह बैठा-ठाला पहले से ही चिलम पी रहा था। जैसे एक ऊंट की पूछ से दूसरा ऊट जोड दिया जाता है, यों अमरिया ने संतान, नौकरी, उम्र इत्यादि के विषय मे चौकीदार से बातचीत का सिलसिला आरंभ किया. पर अंततः अमरिया को निराशा ही हाथ लगी। राजमहल, फूला की

सगाई, राजरानी एव बेटी के प्रति कालूसिह के व्यवहार आदि के सबंध में उसे कोई भी नयी सूचना नही मिली। यदि कुछ जानकारी मिली तो वह उतनी ही थी जितनी कि वह पहले से जानता था। सवेरे के समय भी नारियल के विषय मे जाने बिना कडाणा छोड़ना उसे अच्छा नही लग रहा था। बात जानने का उपाय भी उसे स्मरण हो आया : 'नदी के तट पर जाकर फूला की दासी से ही क्यो न पूछ लिया जाए ? पत्र के बारे मे भी दासी से खबर मिल जाएगी।'

अमरिया नदी के तट पर दासी की प्रतीक्षा करता रहा। मध्याह्न बीत गया पर दासी वहां नही दिखी सो नही ही दिखी। हारकर अमरिया ने झोला कंधे पर डालते हुए स्वयं से कहा—'गहरे पानी में उतरने की कोशिश किए बिना चलता बन, अमरिया ! क्यो भूलता है कि कुवरी स्वयं रोते स्वर में कह रही थी कि प्रारब्ध मे जो लिखा होगा सो होगा ! बस इस वाक्य से ही तुझे समझ लेना चाहिए कि···'

और घर की दिशा मे बढ़ता हुआ अमरिया आते समय जितना उल्लास से भरा था, जाते समय उतना ही निरुत्साही था। स्वय को आगाह भी करने लगा—'मेरे भाई ! अब सयाना बनकर माजी सा'ब से मिलने और पत्र देकर बापू को खुश करने का विचार भी छोड़ दे ! और मेरी सलाह तो यह है कि गायब हो जा यहा से। माजी सा'ब ने इतनी लंबी प्रतीक्षा के बाद बापू को पत्र देने को कहा। इसमे भी कोई रहस्य लगता है ! और बापू ने भी सांदरवाड़ा के दो नारियल तो स्वीकारे ही है, फिर यह तीसरा कैसा ? उन्हे क्या रानियो का काफिला जोड़ना है ?'

अमरिया ने मार्ग मे एक रात बिताई और दूसरे दिन सवेरे वह रवाना हो गया। एक पैर पचलासा जाने को कहता था तो दूसरा गाव जाने का आग्रह कर रहा था।

इस प्रकार दुबिधा मे पथ कट रहा था। तभी उसे घोड़ों की टापें सुनाई दी। अमरिया जितना शेर-भेड़िये से नही डरता था उतना इन स्थिर गति से दौड़ते हुए सरकारी घोड़ों से डरता था। उसने तो घोड़ों की इस चाल का नाम भी कुत्ता-चाल रख दिया था। उसने इस नाम-

करण को अपने मन मे उचित भी ठहराया था—'कुत्ते की चाल से चलते हुए इन दरबारी घोडों को भी यदि मनुष्य की ज़रा-सी गंध मिल जाए तो चौककर अपना मल अवश्य निकालते है, 'कहां से आ रहा है ?' 'कहा जा रहा है ?' 'किस काम से जा रहा है ?' और यदि कही घुड़-सवार तलाशी लेने लगे तो यह फूलकुवर का कंदोरा गले की फांसी भी बन सकता है, अमरिया !'

दो-चार घोड़ो की निकट आती पगध्वनि सुनते ही वह गीदड़ की तरह झाडी मे छिप गया। देखता क्या है कि नकाबधारी पाच सवार एक ही गति से कुआं की दिशा मे जा रहे है ! यह देखकर अमरिया को शका हुई कि ये सागवाडा-चौकी के सिपाही भी हो सकते है। लेकिन अगर ये सागवाडा की सैनिक चौकी के होते तो नकाब लगाकर चेहरा क्यो छिपाते ?

अभागे अमरिया को क्या पता था कि ये कालूसिंह के सिपाही है और नारियल का खेल बिगाडने के लिए कुआ पर धावा बोलने जा रहे है। जो भी हो, फूला से बिछडा हुआ अमरिया चारों ओर भय ही भय के दर्शन कर रहा था। और सचमुच चारो तरफ भय ही तो व्याप्त था !

और इसीलिए वह रास्ते मे अपने गाव और पचलासा की तरफ फटते हुए, उस तिराहे पर थम गया। पचलासा जाने की अंतरेच्छा और बाबू को पत्र देने की अपनी लालसा को वह आगाह करने लगा— पचलासा-पचलासा की रट मत लगा रे अमरिया ! कडाणा के नारियल की कम से कम दो-तीन दिन तक तो प्रतीक्षा कर। पत्र कहा भागने वाला है ? मांजी स'ब और बापू के बीच इस फूलकुवर के कारण ही अनबन पैदा हुई है और अनावश्यक दुस्साहस करने पर तू बीच मे बलि का बकरा बन जायेगा। दो बार तो मा शारदा ने उबार लिया है, पर बार-बार कोई नही उबारता, हा ? इतनी-इतनी तकलीफ भोगने के बाद भी यदि तू सावधान नही होता है तो एक बात साफ-साफ समझ ले कि नारियल का तो कोई भरोसा नही कि वह कभी आएगा भी या नहीं, पर इतना अवश्य है कि बीच में तू होली का नारियल जरूर बन जाएगा…।'

अपने भविष्य की इस आतंकमयी परिकल्पना के बाद उसने अपने गाव की ओर जाने वाला रास्ता पकड़ लिया। यह संभव है इस निर्णय के पीछे उस कदोरे की भी अपनी भूमिका रही हो जो कि उसकी पत्नी की कटि मे वर्षों से झूमने-लटकने के लिए तड़प रहा था।

गांव की सीमा आते ही अमरिया के मन-मस्तिप्क मे से पचलासा, कडाणा और वहा की बातें पक्षियो के किसी झुंड की तरह फुर्र से उड़ गई। उनके स्थान पर उसके नयनाकाश मे पैतीस वर्षीय युवा पत्नी विहार करने लगी।

यो भी सामान्यत: अमरिया जब पंद्रह-बीस दिन की फेरी के बाद घर लौटता था तो पत्नी हर फेरी के बाद नवोढा दुलहिन सी प्रतीक्षा करती रहती थी और स्वयं अमरिया की आंखों मे भी वह हर बार नयी-नयी-सी लगती थी। परंतु आज तो कटि मे करधनी झुलाती हुई, पच्चीस वर्ष की प्रतीत होने वाली युवा पत्नी, अमरिया की परिकल्पना मे कुछ और ही बन बैठी थी।

मन मे तय भी कर लिया—'आज तो अमरिया, थोडी शराब भी पीनी है और कंदोरा पहनकर मादक बनी हुई पत्नी पर कोई अफलातून सुदर गीत भी लिखना है। मदारी झूमे बीन पर और बीन पर झूमे नाग, अमरिया! इसी प्रकार से रामैया पर अमरिया और अमरिया पर राजरानियों की रेशमी साडी पहने स्वर्ण-कदोरा धारण किए उसकी प्रिया नाचेगी! हा मेरे दोस्त, याद रखना, इसमें भूल नही होनी चाहिए। उसके और मेरे, हम दोनों के बहुत दिनों के अरमान पूरे होंगे···।'

अमरिया कल्पना की रंगरेलियों मे डूबा हुआ घर तो पहुंच गया, पर कमनसीब निकला। रात को गाव में प्रवेश करते ही अमरिया को कुआ टूटने का समाचार मिला। जैसे यह दु संवाद अपर्याप्त था सो यह सूचना भी मिली कि कुआ का लूटने वाला अन्य कोई नही स्वय कडाणा का राजा कालूसिह था। यह जानकारी मिलने के बाद तो फूला और नारियल के बीच तारतम्य स्थापित करने की कल्पना-मात्र से सी अमरिया ऐसा भय महसूस करने लगा कि जैसे कुआ के विनाश में उसका स्वयं का भी कुछ हाथ है।

इस सूचना के बाद तो भय से कापते हुए अमरिया को गीत की पुस्तिका मे हुडी की तरह संभालकर रखा हुआ वह पत्र भी सिर मे पड़ी हुई जू की तरह परेशान करने लगा। वह अकुलाहट के मारे कुड़कुड़ाने लगा—'और तो सब ठीक है, पर यह पत्र रूपी जो बला मुझसे लिपटी हुई है उसका क्या करूं ? यदि फाड़ डालता हूं तो दिक्कत पैदा होती है। माजी सा'ब क्या पगली थी जो इतने वर्षो तक इसे संभालकर अपने पास रखा ? और अगर नही फाड़ता हू तो संभावना यह है कि किसी टट्टू (सिपाही) ने यदि इसे देख लिया तो समझ लो अपनी ही टागे अपने ही गले मे फदा बन जाएंगी अमरिया ! और यदि कही गलाल बापू को पता चल गया कि फूला का पत्र अमरिया के पास है तो उसी क्षण धड-से सिर जुदा हो जाएगा। इसमें जरा भी संदेह की गुजाइश नही है ! और फिर यह भी तो संभव है कि माजी सा'ब स्वय इस तलाश मे होगी कि अमरिया ने फूलां का पत्र गलाल को दिया या नही ?

आखिरकार वह तीसरे दिन पचलासा के लिए रवाना हुआ। रास्ते मे प्रण किया—'अब तो अमरिया तुमने जिस प्रकार फूलां से अंतिम विदा ले ली है, ठीक उसी प्रकार से बापू को भी यह पत्र सौपकर पहला और अंतिम जय-रघुनाथ कर लो। बड़े लोगों की आखो से चढना भी बुरा है और उनकी आखो में स्थायी रूप से बसना तो कई बार मृत्यु का कारण बन जाता है, मेरे भाई !'

पर इसके साथ ही वह पत्र की विषय-वस्तु और गलाल का नाम-पता प्राप्त करने की तीव्र इच्छा को स्मरण कर, स्थिति के उजले पक्ष को भी देखने लगा ! कहता है—'पत्र देखते ही गलाल बापू खुशी से उमड़ न पड़े तो मुझे याद करना मेरे दोस्त ! अरे गले मे से तुरंत हार निकाल कर दे देंगे।'

फिर तो उसने यह योजना भी बना ली कि गलाल बापू के साथ किस प्रकार से बातचीत करूंगा। जैसे नारियल और कुआ टूटने की बात मालूम ही नही हो इस ढंग से बापू से कहूंगा कि बापू ! ईश्वर ने ही आपकी मनोकामना देखकर यह गठबंधन आयोजित किया है। घूमते-घूमते मेरा कडाणा पहुंचना और दासी द्वारा यह पत्र दिया जाना, केवल

ईश्वरीय इच्छा का ही परिणाम हो सकता है। बापू ! मेरे प्रण की भी रक्षा हो गई और नाम-पता जानने की आपकी इच्छा भी पूरी हो गई।

फिर भी पचलासा के सिवान पर पहुचते ही उसने अपनी पूर्वनिश्चित योजना के अनुसार मन को पुनः सुदृढ बना लिया—'अब तो बस यह पत्र देकर जल्दी ही कही लुप्त हो जा ! आगे की सारी बात कडाणा, कुआ बापू और फूला जाने। तू तो जैसे इस सारी ऊहापोह के सबंध मे कुछ जानता ही नही है। तू तो जैसे माजी सा'ब को भी नही पहचानता है। और बस, चला जा गुजरात के अदर···दूर तक अदर ही अंदर चला जा···पीठ-धंबोला होकर माडली के रास्ते से आगे बढ जा। कहते हैं मालपुर का राजा गावदी है ! वहा से फिर मोडासा होकर···'

वह अभी पचलासा मे पूरी तरह प्रविष्ट भी नही हुआ था कि कानों में विभिन्न प्रकार की भयंकर बाते सुनाई पड़ने लगी। कडाणा पर आक्रमण के विषय मे लोगों में यह चर्चा थी इसी के साथ यह बात भी थी कि बापू गणेश बैठते ही डूगरपुर चले गए हैं। उसने यह भी सुना कि माजी सा'ब और बापू एक-दूसरे के विरुद्ध हो गए है।

और अमरिया पुनः उलझन मे फस गया। उसने पत्र रूपी बला को माजी सा'ब के हाथों मे सुपुर्द करने का निश्चय किया। दरबान की अनुमति से ड्योढी-द्वार में प्रवेश किया।

बेचारे अमरिया को क्या पता था कि चार दिन पहले अपने ही रसोईघर मे भोजन कराने वाली और साढनीसवार देने वाली माजी सा'ब स्वयं ही नही, अपितु उनके साथ-साथ उनकी सारी की सारी दुनिया ही बदल गई है।

भला हो उस दासी का जिसने माजी सा'ब से मिलने की अनुमति मांगने वाले इस जोगी को हाथ के इशारे से ही समझा दिया कि जिन पैरो से आया है उन्ही से लौट जा। फिर तो उसे दरबारगढ (गढी) का वह सारा वातावरण जैसे काटने लगा। उसी रफ्तार से गढी के मुख्य द्वार से निकलकर सीधे ठाकरडा जाने की इच्छा प्रबल हो उठी। पर पत्र की बला उससे इस कदर लिपट गई थी कि देता तब भी दुख था

और न देता तब भी दुख ही दुख था।···फाड़-वाड डालू और कही मांजी सा'ब ने माग लिया तो? आखिर झगड़ा तो मां-बेटे का है न? लाठी मारने से पानी अपनी दिशा नही बदलता, हां जोगी! घडी-भर में पुन: मेल-मिलाप भी हो सकता है और फिर उन्हें पता लग जाए कि मैंने बापू को पत्र नही दिया है, तो? तब तो बेचारी तेरी गर्दन सीधी उनकी तलवार के नीचे! नही?'

अंत मे वह शक्ति माता का स्मरण करता हुआ दरवाजे के चबूतरे पर बैठकर डूंगरपुर से बापू के लौटने की प्रतीक्षा करने लगा। बैठे-बैठे मन मे उमड़-घुमड रहे अनेक उपायो मे से एक उपाय यह भी था—'बापू से कहूंगा कि कडाणा पर आज जो आक्रमण करने वाले हैं वह तो जैसे देवताओं का कार्य है! पर ध्यान रखना, कही कालूसिह की तराजू पर फूलकुंवर को मत तौलना! और अंत में कहूंगा कि फुलकुंवर की मां और कालूसिह के बीच अनबन और विरोध है···।' इस अंतिम निर्णय के बाद वह बापू की प्रतीक्षा करने लगा।

पर बापू ने तो आते ही जोगी का अभिवादन स्वीकार भी किया तो ऐसे कि वह अस्वीकार के बराबर था। अमरिया को शक भी हुआ कि शायद घिरते हुए अंधेरे के कारण उन्होंने उसे पहचाना ही न हो!

सईस को घोड़ा सिपुर्द कर बापू जैसे ही अदर गए, वकता भाई सीधे अमरिया के पास आए। उनकी आंखों मे सख्ती थी। सवाल किया, "क्यो बे जोगी, दो बार तो मौत के मुह से बचा है और फिर तूने गढी के चक्कर काटना शुरू कर दिया, हरामी!"

एक हिसाब से अमरिया को वकता भाई और वक़ता भाई का सवाल दोनो ही पसंद आए। अंगरखे की जेब में हाथ डालता हुआ दबी आवाज मे कहने लगा, "बापू, मेरे पास एक पत्र है। दू तब भी दुख है और न दू तब भी दुख ही दुख है। लो बावजी! आप ही इसे बापू को दे देना!"

"किसका है?"

अपनी गीत-पुस्तिका मे प्राणों की तरह सुरक्षित पत्र, वकता भाई को देते हुए कहा, "कडाणा की दासी ने दिया है, बापू।"

कडाणा का नाम सुनते ही वकता भाई का दिमाग उखड़ गया। कहता है, "फिर कडाणा का नाम लिया, सूअर ? याद रखना, इस बार तो मैं तुझे बंदीगृह में डाल दूगा !"

वक़्ता भाई अपने इन अनायास निकले हुए शब्दों पर खुश था। मन में हुआ भी सही कि अरे हां ! इससे तो कडाणा के परकोटे और राजमहल के संबंध में बहुत सी सूचनाएं मिल सकती हैं। और अमरिया द्वारा रखे हुए पत्र को उठाते हुए सिपाही को हुक्म दिया, "इस जोगी को उस कमरे मे ठूस दो।" साथ ही पीठ फेरते ही पुनः कुछ याद आने की वजह से अमरिया की ओर मुडा।

अमरिया हाथ में साफा और आखो मे आंसू लिए भयवश कुछ बोल भी नही पा रहा था। ज्यों-त्यो करके बोला, "बापू ! बापू ! इतना गुनाह…"

"चोप्प सूअर ! तुझे मारना नही है मुझे। तुझसे एक काम लेना है। तू भाग न जाए, इस दृष्टि से कमरे में बंद करवा रहा हूं। पर देख…"

"अन्नदाता ! मै आपके राज्य से भागकर कहा जाऊंगा ? आपका काम आधी रात को भी करने को तैयार हूं।"

अमरिया की सूरत और आवाज ही ऐसी थी कि सहृदय वकता भाई को उस पर दया आ गई। पूछा, "बोल, दो दिन बाद यहा उपस्थित होगा, बोल ?"

"आप कहो, उस दिन और उस स्थान पर हाज़िर हो जाऊंगा, बापू !"

"बराबर ?"

"मेरे इस रामैये की सौगंध, बापू !"

वक़्ता भाई खुश हो गया। उसे तो मालूम था कि रामैये की सौगंध यानी यह आदमी कच्चे धागे से बंध गया ! कहा, "ठीक है, बैठ अभी ! पहले यह पत्र देख-पढ़ लू, फिर बात…।" जाते-जाते सिपाही को भी हुक्म दिया, "ध्यान रखना, यह जोगी पहरे में से जाने न पाए।"

अपने कमरे में जाकर वक़्ता भाई ने दीपक के प्रकाश मे खड़े-खड़े ही पत्र पढा। अंतिम शब्द 'आलिगन' पढ़कर तो उसकी आत्मा को सकोच

के साथ-साथ थोड़े भय का भी एहसास हुआ कि जैसे कडाणा की वह कमनीय राजकुमारी और गलाल बापू आलिंगनबद्ध स्थिति में है और वह स्वयं उस स्थान पर जा टपका है ·!

बेचारे वकता भाई को क्या पता था कि गारासिंग ने कडाणा की जिस कुवरी के पत्र का ज़िक्र किया था वह यही पत्र है। वह तो यही समझ रहा था कि कडाणा की कुवरी ने बापू के नाम यह दूसरा पत्र लिखा है। इस पत्र के साथ ही वकता भाई को बार-बार पत्र भेजने वाली इस फूला की मनोकामना का ठीक-ठीक अनुमान मिला। दूसरी ओर उसे गलाल बापू धन्य-धन्य प्रतीत होने लगे।

परंतु कुछ ही पल बाद वह स्वयं भी अमरिया की भांति दुबिधा में पड़ गया—'बापू को यह पत्र दू या न दू ? यो तो बापू समझदार होने की वजह से पीठी चढी हुई सादरवाडा की कुवरियो को विलखते नहीं छोड़ेगे—पर विवाह कर आने के बाद···बाद···!'

कडाणा पर आक्रमण करने के लिए नगाड़े बज रहे है। रावलजी की फूला पर आख है और इधर गलाल बापू ऐसा पत्र पढकर क्या करेंगे और क्या नही करेंगे ? वकता भाई को बिल्कुल समझ में नही आ रहा था कि इस परिस्थिति मे क्या किया जाए ?

ऐसी विषम स्थिति मे वकता भाई पत्र देने की हिम्मत ही नही बटोर पाए। एकबारगी तो हुआ कि उस सूअर को ही वापस दे दू···पर··· और वकता भाई को अमरिया पर इतना गुस्सा आया, वे उस पर इतने जलभुन गए कि तुरत सिपाही को बुलाकर हुक्म दिया, "उस सूअर को अभी कोठरी में ठूस दो और कोतवाल से कह देना कि सुबह सागवाडा के बंदीगृह में भेजना है और वहां सेना के अधिकारी को कहना कि कडाणा पर कूच का वक्त आने पर इस जोगी को साथ लेना न भूलें।"

और फिर अपनी पगडी के पेच में पत्र को छुपाता हुआ वकता भाई बड़बडाया—'देखता हूं, जैसा सुयोग ! ठीक लगेगा तो कल, अन्यथा बाद में···बाद में···!'

पनोती

उधर पियोली मां भी अमरिया को पत्र देने के बाद की बदली हुई परिस्थिति मे यह समझ नही पा रही थी कि जोगी ने गलाल को पत्र दिया या नही ? देना ठीक है या न देना ठीक है ?

अमरिया को पत्र देकर कडाणा भेजते समय तो पियोली यही सोच रही थी कि यदि कडाणा से नारियल न भी आए तब भी गलाल इस पत्र को पढकर और नाम-पता जानकर पछताएगा तो सही कि मैने मा का कहना न मानकर सांदरवाड़ा के नारियल स्वीकार करने में व्यर्थ ही इतनी शीघ्रता की। इसके अतिरिक्त यदि नारियल आ जाता है तो पियोली का पलड़ा भारी हो जाएगा और बेटे को यह जूता मारने का मौका भी मजे से हाथ मे आ जाएगा—'अरे मै क्या अकारण ही सादर-वाडा के नारियल लेने से मना कर रही थी ? मा का कहना न मानकर सादरवाडा की दो स्त्रियों को गले लगाया है तो भोग अब उस उतावली का नतीजा और खा जूते···! तीन-तीन औरतें इकट्ठी कर एक तो रनिवास में खटराग पैदा किया और मान लो कि उस खटराग की परवाह न भी करे तब भी इससे तो इनकार नही किया जा सकता कि नारी के उच्छ्वासों का शाप लगेगा ! अब जीवन-भर भोगता रह यह त्रासदी !'

लेकिन पियोली की ये सारी प्रतिशोधात्मक कल्पनाएं क्षार-क्षार हो गईं। नारियल भेजने के बदले कालूसिह ने तो कुआं लूट लिया ! पियोली ने अनुमान लगाया कि जोगी से संदेश मिलते ही कुवरी ने अपने पिता को कहलाया होगा। पर कालूसिह, परमार राजपूत है और ढेबर वाला उसका सबंधी भी परमार है। इसलिए उस वैर के कारण या जो भी कारण रहा हो, यह निश्चित है कि कालूसिह ने नारियल भेजने के स्थान पर यह कदम उठाया है !

इस निष्कर्ष की कल्पना के साथ ही काल-ज्वाल से पियोली ने अविलब अपनी उंगली काटकर गलाल को यह रक्त-संदेश भेजा कि कडाणा से तत्काल इस वैर का बदला लो !

पर यह देखकर पियोली के आश्चर्य, दुख और क्षोभ की सीमा न

रही कि कडाणा को विध्वस्त करने मे हर प्रकार से समर्थ और तेजस्वी गलाल ने, स्वयं उसके ही पुत्र ने, पत्रादेश की अवहेलना कर जगत् के समक्ष उसकी हंसी उडाई है ! अपमान का घट अभी पूरी तरह से भरा नही था सो ठंडे कलेजे से घर लौटा, गणपति-पूजन संस्कार मे बैठा, मेरी ही छाती पर विवाह के मंगल-गीत गवाए और अब बाजे भी बज-वाने लगा है !

सचमुच आहत पियोली की उद्विग्नता और क्षोभ सीमाहीन हो उठा था। गलाल के डूगरपुर जाने के बाद तो उन्हे लगा कि जाकर गणेश और नारियल वगैरा सब कुछ फेंक दू कुएं मे !

ठीक उसी समय सागवाड़ा के नगरसेठ दयालचंद और जागीर के दूसरे अग्रगण्य प्रजाजन विवाह के आनंदोत्सव में शामिल होने के लिए पचलासा आ पहुंचे ।

पियोली मां की रीस के बारे मे सुनकर दयाल सेठ और उनकी पत्नी ने पियोली मां को वस्तुस्थिति समझाते हुए कहा, "बापू ने भले ही आपकी अनुमति के बिना नारियल स्वीकारा हो, पर इस समय तो वह विवाह करने बैठे है, सो भी युद्ध की गणना करने के बाद ही, माजी सा'ब !" अस्पष्ट रूप से जोड़ दिया, "मांजी सा'ब ! आप कुछ भी कहे पर युद्ध युद्ध ही है। कोई भी आदमी चाहे छोटा हो या बड़ा, शूरवीर हो या नामर्द, पर भविष्य को कोई भी नही टाल सकता ! अतः पीठी चढी हुई कन्याओ से विवाह किए बिना मुक्ति नही है..."

गलाल को भाई कहकर बुलाने वाली दयाल सेठ की पत्नी तो करुण स्वर मे दुख का गीत ही गाने लगी, "मांजी सा'ब ! यह भी कोई आनंदोत्सव का सुख भोगना है ! कौन कहेगा कि यह विवाहोत्सव है ? यह तो समझो कि एक प्रकार से मस्तक पर से बोझ उतारने की रस्म अदा करनी है ! दूज के दिन तो वर विवाह करके घर लौटेगा और फिर तुरंत ही रावल जी के अभियान मे शामिल हो जाएगा ! आप ही बताओ, कौन इसे लग्न कहेगा ?"

पियोली मां ने आखिरकार अपने आवास-गृह का द्वार खुलवाया। डूंगरपुर से लौटने पर गलाल ने देखा कि मां के आवास-गृह के द्वार खुले

हुए हैं और वह अपने कक्ष में इधर-उधर घूमती हुई भी दिखाई दे रही है।

इसके बाद तो पियोली मा ने विवाह की सभी विधियो, लोक-परिपाटियो एवं रस्मो मे भी पूरी दिलचस्पी से भाग लिया। परंतु उनकी यह दिलचस्पी विवाह की पूर्व-तैयारी में नही अपितु पुत्र को झटपट युद्ध मे भेजने की पूर्वपीठिका के रूप मे थी।

पर गलाल के मन मे भी विवाह को लेकर कौन-सी हुलास या उत्साह था! इतना ही नही, वह सादरवाड़ा शादी करने गया सो भी जैसे अंग पर चढे संसार के रंग को उतारने के लिए! वस्तुत: उसके मन में उत्साह-उल्लास के सभी झरने सूख गए थे। विवाह की रस्मों में भी वह एक निरी औपचारिकता का यत्रवत् निर्वाह कर रहा था। और तो और, लग्न-मंडप में भी गलाल का मन छटपटा रहा था। उसने लग्न-विधि संपन्न कराने वाले ब्राह्मण से एक बार कहा भी सही, "पुरोहित जी! संक्षिप्त विधि से निबटा दो न। मेरी गणना के अनुसार तो सुबह के लग्न थे और तुमने तो साझ के लग्न रखे है!"

कुंवरियो के पीछे बैठी हुई सास के लिए गलाल की यह जल्दबाजी असह्य हो उठी। जब से बारात आई थी, लगता था जैसे वह घोड़े पर ही सवार है! लग्न-मंडप में भी गलाल को उतावली करते देखकर सास को कहना पड़ा, "कुंवर सा'ब! पुरुष तो हर लग्न के बाद कुआरा का कुआरा ही बना रहता है—पर नारी तो अपने जीवन में एक ही बार परिणय-सूत्र में बंधती है!" परंतु सास को गलाल की इस उतावली का कारण मालूम था, अत: जोड़ दिया, "यदि ऐसी जल्दी थी तो कडाणा-विजय को निबटाकर ही लग्न रखने चाहिए थे!"

गलाल मूलतः वाद-प्रतिवाद में उतरना पसंद नहीं करता था और फिर इस समय तो प्रतिपक्ष मे सास खड़ी थी। इसके सिवाय यों भी बहस करने में कोई तुक नहीं था। अतः मूक व्यग्रता लिए वह निरुपाय-सा बैठा रहा।

कुछ भी हो, गलाल ने प्रतिपदा के दिन प्रयाण का निर्णय ले रखा था, पर उसके स्थान पर यहां तो दूज भी आ उपस्थित हुई और उसमें

भी फिर वर-कन्या को बिदा देते समय रथ का पहिया छिड़कने की विधि संपन्न करते-करते साझ की वेला में ही प्रस्थान संभव हो सका।

दूज की सांझ को तो उसे रावल जी की सेना में जा मिलना था, जबकि बारात बडी मुश्किल से चतुर्थी की मध्याह्न वेला मे पचलासा की सीमा मे प्रविष्ट हुई।

दूज की सांझ बीतने के बाद से तो पियोली मां की अकुलाहट और गुस्से का अंत नहीं था।

ऊपर से चौथ की सुबह को रावलजी का हुक्म लेकर एक सूबेदार घोड़े पर चढ़कर आ खड़ा हुआ।

पियोली ने आदेश पढा। रावलजी द्वारा हस्ताक्षरित और मुद्रांकित उस पत्र मे लिखा था :

"गलालसिंहजी,

दूज की चौथ हो गई। क्या बात है ? या तो अपने सैनिकों सहित अविलंब आ मिलो अन्यथा डूगरपुर की सीमा छोड़ दो। चतुर्थी से पंचमी नही होनी चाहिए।"

पियोली के जलते हृदय में किसी ने जैसे बारूद छिड़क दिया। कुड़-बुड़ाने लगी—'मेरा गलाल यहा से तो पीठी रूपी अशुभ दशा उतारने गया है, पर सांदरवाड़ा की औरतों के अश्लील गीत सुन-सुनकर वहीं का वहीं घरजंवाई बनकर रह गया है!'

वक़्ता भाई के दफ्तर में गद्दी तकियो पर लेटा हुआ सूबेदार उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था। समाचार मिला, "बारात आ रही है।"

क्रोध के दावानल मे झुलसती हुई पियोली ने आदेश दिया, "भट्ट पुरोहित को तुरंत बुलाओ।"

बेचारा पुरोहित भी पूजा-सामग्री की पोटली सहित बारात की ही राह देख रहा था। पियोली का आदेश सुनते ही हड़बडाया हुआ पुरोहित अंदर आया।

पियोली ने प्रश्न किया, "गृह-प्रवेश का मुहूर्त कब आता है, महाराज ?"

राजा-महाराजाओं की आज्ञा के अनुसार मुहूर्त निकालने में पटु, भट्ट

पुरोहित मांजी सा'ब के आदेश से उतना नहीं घबराया था जितना उनकी तीक्ष्ण कर्कश आवाज से। सिर की पगड़ी ठीक-ठाक करके, मिरजई में से पंचाग निकालता हुआ कहने लगा, "मुहूर्त मांजी सा'ब ? आज सोमवार है इसलिए अग्नि-कोण मे काल···"

"अगर अग्नि-कोण मे काल है तो फिर पश्चिमाभिमुख द्वार में वर-कन्या कैसे प्रवेश कर सकते हैं ?" तुरंत जोड दिया, "काल तो सदैव पीठ पर होना चाहिए न ! कैसा मुहूर्त निकालते हो जी ?"

और मट्ठ पुरोहित ने भी तुरंत रजवाड़ी चाल पकड़ ली, "मै भी यही कह रहा हूं, अग्नि-कोण मे काल होने से आज तो प्रवेश हो ही नही सकता।"

"और कल भी कैसे होगा ?"

"हां, माजी सा'ब ! कल भी नही हो सकेगा। जब तक काल पीठ के पीछे नही आ जाता तब तक गढी में प्रवेश हो ही नहीं सकता !"

ठीक है।" पियोली के कानों में वाद्ययंत्रों की आवाज पड़ते ही उसने कोतवाल को बुलाकर हुक्म दिया, "बारात को अदर मत आने दो। उनसे बोलो कि अतिथिशाला में ठहरें, अभी मुहूर्त नही है, ब्राह्मण 'नही' बोलता है।" और इसके साथ ही मट्ठ पुरोहित की ओर देखा। कहा भी सही, "तुम भी जाओ, कह दो जाकर।"

पर ब्राह्मण के पीठ फेरते ही पियोली को फिर याद आया। मट्ठ पुरोहित को बुलाकर कहा, "और देखो मट्ठ पुरोहित ! यदि गृह-प्रवेश का मुहूर्त नही है तो फिर 'मींढल' (मदनफल) भी कैसे छूटेगा ?"

"नही छूटेगा, मांजी सा'ब ! गणपति-स्थापना के सम्मुख ही छोड़ना पडेगा न ?" मट्ठ पुरोहित के मस्तिष्क में अब बुद्धि और दिशा का प्रवेश हो गया था।

"तो फिर यही बात जाकर वकता भाई से कहो न; और हां, ठहरो जरा !" पियोली ने मट्ठ पुरोहित के हाथ में पाच स्वर्ण-मुहरे रख दी।

स्वर्ण-मुहरें देखकर मट्ठ पुरोहित का दिमाग खिसकने वाला था। परंतु तुरंत ही जैसे मुहरों को पहचाना ही न हो यों उसने उन्हें अपनी

पगड़ी के आंटे में इस प्रकार छिपा लिया कि मानो आंखों में मुहरें चढ जाएं तो मस्तिष्क भी फिर जाता है। और वह तेज कदमों से चलता बना।

पियोली भी खिड़की मे खडे-खड़े बारात को दरवाजे से अतिथिशाला की ओर मुडती हुई देखती रहीं। उनकी आत्मा ने एक अजीब रक्त-सने हिंस्र आनंद का अनुभव किया। दासी को बुलाकर रावलजी का पत्र हाथों-हाथ गलाल को देने का आदेश दिया और वह भी इस वाक्य के साथ कि "बापू को घोड़े से उतरते ही तुरंत दे देना।"

अतिथिशाला गढ़ी की बगल मे थी। पियोली यदि चाहती तो उस ओर का द्वार खोलकर वहां की स्थिति का अवलोकन कर सकती थी। पर उन्हे तो अब दूसरा-तीसरा देखना ही क्या था?

दासी द्वारा दिया गया रावलजी का पत्र पढ़कर गलाल की एक बार तो पलभर के लिए इच्छा हुई कि रकाब में पैर वापस रख दे, पर न जाने क्यों वह गम खा गया। अपमान का यह जहरीला घूट पीकर भी उसने स्वय को नियंत्रित रखा। अपना आत्य-संयम का बांध नहीं टूटने दिया। वक़ता भाई को बुलाकर उसे पत्र दिया।

पत्र पढते ही वकता भाई सूबेदार से मिला। पूछने पर पता लगा कि रावलजी की फौज पीठ-धंबोला छोड़कर आगे बढ गई है।

"कोई चिंता नही। मैं आज ही अपने सैनिकों को रवाना कर रहा हूं और कल्र सवेरे मैं और गलाल बापू प्रस्थान करेंगे; और साझ पड़ते-पडते तो रावलजी की फौज को पकड़ लेंगे।" पूर्वोक्त सूचना के साथ उसने सूबेदार को रवाना किया।

इसके बाद वक़ता भाई ने सागवाड़ा सवार भेजकर अपने प्रतीक्षारत सैनिको को आदेश दिया कि इसी पल पीठ-धंबोला की दिशा में कूच कर दो। उसने सवार को विशेष रूप से याद दिलाया कि जोगी को साथ ले जाना न भूले, यह बात विशेष रूप से कह देना।

पूर्वोक्त सभी कार्य निपटाकर वक़ता भाई जब अतिथिशाला में लौटा तो गलाल मट्टु पुरोहित से पूछ रहा था, "खैर, गढ़ी मे प्रवेश करने का मुहूर्त तो नहीं है, पर मीढल छोड़ने का तो है न, पुरोहित?"

मट्टु ब्राह्मण हंसने लगा। कहता है, "बापू ? मीढल तो वहीं छूटता है जहां गणपति की स्थापना की जाती है ?"

"कब छूटेगा ?"

"मुहूर्त देखकर बताता हूं, बापू !" मट्टु ब्राह्मण अपना पंचांग उलटने-पलटने लगा। पर वह भी बेचारा क्या करता ? मस्तिष्क को तो पगड़ी में से शनि की दशा ने दबा लिया था। फिर मुहूर्त कैसे पकड़ मे आता ? वह पन्ने उलटता गया और उंगलियों के पोर गिनता रहा। इसके बाद पुनः दिवस और दिशाए गिनने लगा, "अग्नि, दक्षिण, नैऋत्य और पश्चिम; सोम, मगल, बुध और गुरु।" गलाल के सामने देखकर कहता है, "बापू, गुरुवार को प्रातःकाल मे शुभ मुहूर्त तो अवश्य है, पर उसके पीछे रोग मुहूर्त पड़ा हुआ है; अतः मध्याह्न ढलते ही लाभ और अमृत दोनों मुहूर्तो के बीच मे गृह-प्रवेश और मीढल छोड़ने की विधियां एकसाथ कुशलपूर्वक निपट जाएंगी और अस्ताचल के बाद तुरंत ही अमृत-मुहूर्त में 'मुह-दिखाई' की विधि होगी अन्नदाता।"

मट्टु ब्राह्मण ने अंत मे जो 'अन्नदाता' शब्द का प्रयोग किया उसकी पृष्ठभूमि मे मूछों पर ताव देते हुए गलाल बापू के चेहरे पर उमड़ती हुई छटपटाहट, घुटन और आकुल अधीरता भी हो सकती है !

मट्टु ब्राह्मण इस कदर बेचैनी महसूस करने लगा कि जैसे वह अलाव के ताप से जल रहा है। झटपट पचाग समेटकर जैसे ही उठने को हुआ कि गलाल गद्दी पर से यकायक उठ खड़ा हुआ। खूटी पर लटकती तलवार की ओर हाथ बढ़ाते ही···

यह अच्छा ही हुआ कि गलाल तलवार लेते समय वक़ता भाई को लक्ष्य कर कह रहा था, "चलो वकता भाई, तैयार हो जाओ।" अन्यथा उस वक्त मट्टु ब्राह्मण बोलने ही वाला था, 'बापू, बापू ! मुहूर्त निकालने को तैयार हूं !' और बच जाने पर राहत की सांस छोडता हुआ मट्टु ब्राह्मण बापू की आंख बचाकर चंपत हो गया।

गलाल के चेहरे पर व्याप्त उत्तेजना, उसकी आंखें, उसका अंग-प्रत्यंग इतना तनावमय था कि वकता भाई को भी यह पूछने की हिम्मत नही हुई कि "कहां ?" मात्र यही कहा, "अच्छा बापू, जैसी आपकी

मर्जी !"

"साईस से कहो कि लीलागर को तैयार करे।" सेवक से कहकर अपने महल से तीर-कमान और भाला आदि मंगवाए। खुद भी बगल वाली घुडसाल की ओर चल दिया।

अल्पकाल में ही विद्युत-गति से चारों ओर यह समाचार फैल गया कि बापू मीढल छोड़े बगैर ही युद्ध के लिए प्रयाण कर रहे हैं! सागवाडा से आए हुए नगरसेठ और अन्य अग्रगण्य महानुभावों को भी पलभर मे ही इसकी सूचना मिल गई।

एक ओर से नगरसेठ की पत्नी आई तो दूसरी तरफ से गाव के अन्य प्रतिष्ठित नागरिक भी आ पहुंचे। सबके सब उसे एक ही बात समझा रहे थे, "आज की रात रुक जाओ, बापू ?"

गलाल को एक ओर यदि हंसी आ रही थी तो दूसरी तरफ वह चिढ़ भी रहा था। इन सब स्वजनों से वह यह तो कैसे कहता कि आज रात ठहर जाने का भी कोई अर्थ नही है। जब मीढल छोड़ने का ही मुहूर्त नही है तो फिर 'मुख-दर्शन' या दूसरी-तीसरी बातों का तो सवाल ही कहां पैदा होता है? तथापि उसने उद्विग्नतावश इतना तो कह ही दिया, "दयाल सेठ! धर्मशाला में रात गुजारी भी तो क्या और नही गुजारी भी तो क्या ?" और हास्य के आवरण में हृदय का गहन विषाद छिपाकर वह तुरंत घोडे पर आरूढ हो गया!

तभी पादरडी की अपनी जागीर पर से गलाल बापू की लग्नपत्रिका के अनुरूप, बहन के रूप में वर-वधू का द्वार-प्रवेश रोकने के लिए आई हुई मावा पटेल की पत्नी रुखी को अपने पचलासा स्थित घर में खबर मिली कि गलाल बापू अश्वारूढ़ होकर युद्धभूमि के लिए प्रयाण कर रहे हैं।

दो घड़ी पूर्व तो रुखी अतिथिशाला में ही थी। पर यह जानने के बाद कि गृह-प्रवेश का मुहूर्त नही है, अतिथिशाला के दो कक्षो में भाभियों के लिए व्यवस्था करके वह अपने एक साल के बेटे को स्तन-पान कराने के लिए वापस घर गई थी।

पूर्वोक्त समाचार मिलते ही गोद के शिशु को पालने में सुला दिया

और साड़ी का छोर खोंसती हुई वह घर से बाहर निकल पडी। रोते हुए शिशु का ध्यान रखने के लिए सेविका को सूचित किया, पर वह भी जाते-जाते! अभी गाव से थोड़ी ही दूर गई होगी कि सामने से लीलागर पर गलाल आता हुआ दिखाई दिया। वकता भाई का तीतर-वर्णी घोडा भी पीछे-पीछे आ रहा था।

गलाल ने गांव और गढी के बीच का यह मार्ग तय करते-करते, न केवल घर का अपितु रानियों का मोह भी आधा कर डाला था। परंतु ठीक उसी समय जबकि वह घर और रानियो के मोह-पाश से स्वयं को अर्द्ध-मुक्त कर चुका था, रुखी बहन बीच राह में खड़ी दिखाई दी। कछुए की पीठ-सा कठोर हृदय बहन को देखते ही उमड़ पड़ा! उसका हृदय क्षणभर में ही कोंपल-सा कोमल और हल्का हो गया। तीस वर्षीय, घर की सुखी-संपन्न रुखी का गेहुआं चेहरा इतना मधुर, आकर्षक और पावन था कि देखने वाले के मन में सहज रूप से ही उसके प्रति बहन का सा भाव उमड़ पड़ता था।

गाव से बाहर आते ही घोड़े की लगाम ढीली छोड़ने को तड़पते हुए गलाल के हाथ, लगाम खीचकर घोड़े को रोके बिना न रह सके।

"कहां के लिए निकल पड़े, बापू?" रुखी ने घोड़े की लगाम थामते हुए स्नेहभीगे दुलारमय स्वर मे प्रश्न किया।

"रण के लिए बहन," गलाल बोला। वह बराबर हंसने की कोशिश कर रहा था।

"मीढल छूटे बिना ही?" रुखी की ममतामयी आखो में एक मधुर-मधुर शिकायत का भाव था।

"उसका मुहूर्त बहुत देर से है और रावलजी के पत्र के विषय में तो तुम जानती ही हो!"

"जानती हूं, बापू! पर बिना परछना के यदि दूल्हा युद्धभूमि के लिए प्रयाण कर दे तो आपसे तो कोई कुछ नही कहेगा, पर बाद में दुनिया हमसे क्या कहेगी? मीढल छोड़कर युद्धभूमि में जाना शुभ है, पर बिना छोड़े युद्धभूमि में जाना बुरा है, है न?" और रुखी ने घोड़े को अपने घर की ओर ले जाने का प्रयास किया।

"नहीं बहन, एक बार रण के लिए प्रयाण के बाद अब लौटना असंभव है !"

"मै जानती हूं कि युद्धभूमि की ओर अभिमुख योद्धा वापस घर नही लौटता है, पर बहन का रोका हुआ भाई तो वापस लौटता है, बापू । रुखी की आवाज जितनी अकंपित थी उतनी ही रुदन-भीगी भी थी। लगाम खीचती हुई बोली, "युद्ध कही भाग नही रहा है। राजपूत का यदि एक पाव रण मे होता है तो दूसरा रनिवास में भी होता है, बापू ! रावलजी की फौज तो अभी घर से बाहर भी नही निकली है···अपने ही भूभाग में आगे बढ रही है। फिर भी यदि तुम्हारे यह रावलजी दंडित करें तो उस दंड को यह रुखी बहन सह लेगी ! अब तो ठीक है न ?" और रुखी पुन· घोडे की लगाम अपने घर की ओर खीचने लगी।

गलाल को वक़ता भाई की ओर गर्दन मुडाते देखकर रुखी ने कहा, "वक़ता भाई के सामने देखो या न देखो ! पर मैं इस लीलागर की लगाम छोडने वाली नहीं हूं ?"

दरअसल वकता भाई रुखी की इस धृष्टता पर मन ही मन सीमा-हीन हर्ष अनुभव कर रहा था। फिर भी उसने गलाल को जो परामर्श दिया वह लाचारी के स्वर मे था : "बापू ! बहन के हाथ को हटाया नही जा सकता।"

"तो फिर चल। मींढल ही छोड़ना हो तो ब्राह्मण को झटपट बुला ले।" गलाल ने घोड़े को उसी दिशा मे मोड़ते हुए कहा।

"ब्राह्मण को बुलाकर क्या करना है ! बहन और ब्राह्मण दोनों बराबर होते है; होते है न ?"

"तू जो कहे, वही सही। पर देख, जल्दी करना।"

आगे-आगे चलती हुई बहन थम गई। बोली, "जल्दी-वल्दी कुछ नही बापू ! मींढल छूटेगा, पर साथ ही मुंह देखने की रस्म भी अदा होगी और इसके बाद मुर्गे की पहली बाग हमारी और दूसरी तुम्हारी बापू ! क्यो वक़ता भाई ? ठीक है न ? बोलते नही !"

वक़ता भाई ने गलाल की ओर देखकर कहा, "क्यों बापू, पहले भी तो हमने यही तय किया था न ? यदि हम जल्दी सबेरे निकल जाएं

तो भी रावलजी की फौज तो हमे कल पकड़नी है, सो उसे तो पकड़ ही लेंगे !"

"पकड़ने की बात तो ठीक है, पर अगर उधार लाए हुए प्राण कल कहीं दे देने पड़े तो···बहन का आग्रह है तो लाओ···"

"ऐसा ना बोलो, बापू !" बीच में बोलती हुई रुखी का चेहरा रुआंसा हो उठा।

और फिर अपनी उदास बहन को खुश करने के लिए गलाल ने सच्चे हृदय से स्वीकृति दी, "तू जैसा कहेगी, वैसा होगा; बस ? मुर्गे की पहली बांग तुम्हारी और दूसरी हमारी, ठीक है न वकता भाई ?"

और सुहागरात मनाने की गलाल की इस परोक्ष स्वीकृति से, रुखी और वक्रता भाई दोनों ही आप्तजन इतने अधिक प्रमुदित हो उठे कि भयानक प्रतीत होने वाली गलाल की 'पनोती' (शनि-दशा) में से जैसे तीन-चौथाई भीषणता घट गई, मिट गई···।

सुहागरात और उल्कापात

गलाल और वकता भाई, कडाणा तथा माही नदी से संबंधित एक दंतकथा को नही जानते थे और शायद यदि जानते भी थे तो उसे मानते नही थे। परंतु सीधे-सरल स्वभाव की रुखी को तो, जब से उसने सुना था कि गलाल कडाणा पर आक्रमण करने वाला है, हर रोज और हर क्षण वह कथा याद हो आती थी।

वैसे तो दंतकथा का पूर्व-इतिहास लंबा है,,पर उसका सार यह था कि सुदूर अतीत में, कडाणा के एक राजा की पूजा-अर्चना और भक्ति से प्रसन्न होकर, माही नदी स्वयं सदेह प्रकट हुई थी और राजा को वरदान दिया था कि कडाणा पर चढ़ाई करने वाला आक्रमणकारी चाहे कितना ही पराक्रमी क्यों न हो, कडाणा से जीवित नहीं लौट सकेगा।

इस दंतकथा की पुष्टि करने वाले एक-दो ऐतिहासिक प्रमाणो से भी रुखी परिचित थी। इसलिए मीढल छोड़ने की विधि के बाद रुखी ने

वकता भाई को तो यह कहकर अतिथिशाला भेज दिया कि वहा जाकर वर-वधू की मुह-दिखाई की तैयारी करो, और वह स्वयं, गलाल को कडाणा जाने से रोकने के लिए मनाने लगी। रुखी ने गलाल को खूब समझाया और अत मे उसने दंतकथा मे वर्णित वरदान की बात भी कह सुनाई। इस पर भी गलाल जब टस से मस नही हुआ तो हारकर कहा, "फिर भी यदि तुम युद्ध में जाना ही चाहते हो तो भले जाओ, पर शर्त यह है कि रावलजी के पीछे-पीछे!"

रुखी की इस सीख पर गलाल हसने लगा। कहा, "सुन बहन! गलाल आत्मश्लाघा मे कतई विश्वास नहीं करता। परंतु सत्य यह है कि रावलजी ने कडाणा पर आक्रमण करने का साहस तेरे इस भाई के बल पर ही किया है। इसलिए यदि पीछे रह गया तो पियोली मां लज्जित होगी और साथ ही गलाल की यह प्यारी बहन भी लज्जित होगी। नही? और फिर लाख बातों की एक बात यह है कि जो चीज दूसरों के लिए युद्ध है, वह तेरे इस भाई के लिए तो रंगपंचमी है, बहन!" और इसके साथ ही वह खड़ा हुआ, "उठ बहन, रात बीत रही है, मुह-दिखाई की रस्म पूरी करनी ही हो तो करा डाल।" खूटी पर से तलवार उठाते हुए कहा, "मेरा शरीर यहा है, पर मेरी आत्मा तो जैसे इस पल में भी कडाणा के परकोटे के चारों ओर परिक्रमा कर रही है!"

गलाल घोडे पर बैठा और बहन पीछे-पीछे चलने लगी। अच्छा ही हुआ कि मीढल छोड़ने की विधि निबटने के बाद वकता भाई अतिथि-शाला पर पहुच गया और 'मुख-दर्शन' की रस्म की तैयारी के लिए दासियों की मार्फत रानियो को कहला भेजा; अन्यथा अपशकुन के भय से रुदन रोके हुए, आशा-प्रतीक्षा से परिपूर्ण दोनों रानियां अपनी फूटी तकदीर पर इतनी अधिक दुखी थी कि बस सुबक-सुबककर रोने भर की ही देरी थी।

जिस क्षण रुद्ध रुदन का बाध टूटने वाला था उसी क्षण वक़ता भाई से शुभ संवाद लेकर दासी आ टपकी। कहती है, "उठिए बाई सा'ब! शृगार कीजिए। कुवर साहब अभी बस आने ही वाले है।"

बड़ी रानी झाली ने आनंदोल्लास के साथ प्रश्न किया, "लड़ाई समाप्त हो गई क्या ?" उसके मन में तो यही था कि जो पति विवाह-मडप मे भी युद्ध मे जाने के लिए पैर पछाड़ रहा था, लगता है वही युद्धोन्मादी पति इतने अर्से में युद्ध समाप्त हो जाने से वापस लौट आया है।

दासी को तो इस विषय मे ज्यादा जानकारी नही थी, पर सतर्क स्वभाव की दूसरी रानी मेतलाणी समझती थी कि लड़ाई समाप्त नहीं हुई है, पर कदाचित् किसी के रोकने से पति वापस लौट आया है। बोली, "अब युद्ध की बात ही मत करो दीदी; अब तो सुहागरात से ही जीवन-कटोरा भर लो !" मेतलाणी उल्लास से जितनी बावली थी, झाली भी उसी अनुपात में निश्चिंत हो उठी !

फिर तो पीहर से आया हुआ सारा सामान उलट-पुलट होने लगा। एक संदूक खुलने के बाद दूसरा आधा-अधूरा संदूक खुलने पर पता लगता कि जिस चीज की जरूरत है वह उसमे नही है और तब वह अधखुला ही बाजू में ठेल दिया जाता।

पीहर से आई हुई दो-दो दासिया भी हर्षातिरेक से इतनी बौरा गई थी कि घाघरे के स्थान पर तकिये का गिलाफ ले आती थी और एक तो साडी के बदले पलंग पर बिछाने की घुंघरूदार चादर ही उठा लाई थी।

वस्तुतः इसमे दासियो का भी कोई दोष नही था। खास पीहर में ही सामान रखते समय और इसके सिवाय स्वय विवाह-मडप मे ही जल्दी जाने की इतनी हड़बड़ी मची हुई थी कि 'सासरवासा'[1] रखने और भरने के दौरान भी यह हडबडी बाधक बन गई थी। परिणाम-स्वरूप, इस मुंह-दिखाई की रस्म के समय भी वही हड़बड़ी और उता-वली हाथ धोकर पीछे पड़ी हुई थी !

पूरा करने की दृष्टि से साज-सजावट का काम भी कुछ कम नहीं था। उदाहरण के लिए संदूकों में से सुहागरात के लिए निर्मित ज़री के

१. बिदा के समय बेटी को दिए जाने वाले गहने, कपड़े इत्यादि।

परिधान ढूढने थे, पलंग पर बिछाने की चादर भी···

फिर भी घडी-दो घड़ी मे ही पतंग की तरह चक्कर काटती हुई चारों दासियों ने अतिथिशाला के कक्षों को इत्र-दीपकों से सुवासित और प्रकाशित कर दिया। आलोकित कक्ष झिलमिला रहें थे और चारों तरफ से खुशबू की लहरें उठ रही थी। दोनों कक्षों में पलंग भी बेलबूटों से चित्रित, चादी के घुघरुओं वाली रेशमी चादरे ओढ़कर जैसे मधुर-मधुर स्मित बिखेरते हुआ मंद-मंद गूजने लगे थे। सुहाग-कक्ष और पलगों को सजाने के लिए इतने सारे फूल तो खैर कहां से आते, पर रसिक दासियों ने रग-बिरंगी पताकाओ को फूलों का आकार प्रदान कर जैसे टोड़ो पर तोरण बाध दिए थे।

नई नवेली दोनो दुलहिनें भी पलभर में ही अप्सराओं को भी लज्जित कर दें ऐसी सजधजपूर्वक तैयार हो गईं। अरुण-अरुण मेंहदी-रंगे पैरों की आभा जैसे कम थी सो पैरों में नूपुर कांबियां थिरक रही थी। लहंगे पर टंके हुए घुघरुओं की मीठी झनकार पद-नूपुरों की मधुर झनकार से होड लगा रही थी; तो लचकती हुई नाजुक कमर पर झूलता हुआ और फिर झीने-झीने लहंगे को दबाकर पृष्ठभाग को उभारता हुआ मोतियो का कंदोरा भी आचल के छोर पर स्थित नितंबों पर थिरकते-मटकते घुघरुओ कें झुमके से टकरा-टकराकर ताल दे रहा था, कुहू-कुहू कर रहा था। गहरी सुगठित बुनावट के रेशमी घाघरे पर चांदनी-सी चमचमाती हुई चमक, बारीक ओढनी से आंख-मिचौनी खेल रही थी। और वह आत्म-मुग्ध झिलमिलाती हुई कंचुकी महीन साडी में से ताक-झांककर रही थी और स्वयं पर झूलते हुए हीरे-मानिक के हार केकानों में जैसे अंतरतम की कोई रहस्यमय गोपन बात कह रही थी। दोनो कर्णफूलों मे से निकली हुई मोती की लडियां अरुण-अरुण गुलाबी कपोलों और नयन-कोरों पर एक मीठी गुदगुदी पैदा कर रही थी। मध्य मे संवारी हुई मांग पर झूलता हुआ हीर-कनी से मंडित सोने का 'बोर' (माग-टीका) जगमग करता हुआ, दिपदिपाता हुआ, रूप यौवन की अंबार-सी यौवन की मदभरी आकांक्षाओं से आप्लावित उन कुंवारियों के प्रतीक-सा सुशोभित हो रहा था।

सिर्फ घड़ी-दो घडीभर के लिए लौटे हुए युद्धाभिमुख पति की आकुल भाव से प्रतीक्षा करती हुई इन दो नवयौवनाओं के हृदय में न जाने कौन से इंद्रधनुषी स्वप्न करवटें ले रहे थे ? कहना कठिन है कि उनके हृदय-सागर में कैसे-कैसे स्वप्नों के ज्वार उठ रहे थे ! !

इत्र-दीपकों की महक से बौराये हुए उस वातावरण का सौंदर्य और ऐश्वर्य ही कौन कम था, सो ऊपर से रुखी की सहेलियों ने सुहागरात के प्रेमगीतो से छलकते हुए मधुकलश एक के बाद एक खोलने आरंभ कर दिए । सारा वातावरण मधुर-मधुर वासना और प्रणय के मलयानिल से प्रकंपित हो उठा—हवा मे जैसे यौवन-मदिरा की मधुर तरंगे हिलारें ले रही थी !

मोरां अजन आंज्या नेण !
राज बच्चे आप री गेंडा ढालरु (नु) गजुं नहि
में कयां कर घूघट खोलु जी !

(मेरे कजरारे ये नैन ! राजन् ! बीच में आपकी यह गेंडा ढाल है । घूंघट कैसे खोलू ! मुझे डर लगता है। घूघट खोलना मेरे सामर्थ्य से परे है !)

और ठीक उसी समय जबकि समस्त वातावरण नववधू बन गया था, दासियों ने भीतर आकर शुभ संवाद सुनाया, "कुवर सा'ब पधार रहे है।"

शौकीन स्वभाव का गलाल युद्धभूमि में भी यों प्रवेश करता था जैसे बारात में जा रहा हो, फिर आज तो···

केवल रातभर के लिए ही उसने अपने युद्धप्रिय स्वभाव को युद्ध-परिधान के समान ही परित्यक्त कर दिया था । उसने अवसरानुकूल कुर्ता और मखमख की नाजुक मोजड़ियां पहन रखी थी । रुखी बहन द्वारा संवारे हुए गलमुच्छो पर इत्र की मधुमय महक उठ रही थी । मूछें जितनी फूली हुई थी उनके सिरे उतने ही पतले-नुकीले थे । गले में सुशोभित हीरे-मोतियो के हार के साथ-साथ, उंगलियो पर भी नगजडित छल्ले थे और झिलमिलाते प्रकाश की चकमकाहट भी जैसे लुका-छिपी का खेलखेल रही थी । दोनों हाथो के पहुंचों में सोने के पतले-पतले कड़े थे

तो बायें पैर मे भी सोने का वजनदार कड़ा पहन रखा था। और जनेऊ की भांति लटकी हुई झाली भाभी की कटार तो जैसे गलाल की हर पल की संगिनी थी।

दासी के पीछे-पीछे जैसे ही गलाल ने झाली रानी के कमरे मे प्रवेश किया, दासी धीरे से द्वार बंद कर बाहर निकल गई। धड़कते हृदय-सहित पति की प्रतीक्षा करती हुई इस आत्ममुग्धा दुलहिन ने जिस क्षण दासी के मुख से प्रियतम के आगमन का संवाद सुना था, उसी क्षण तय कर लिया था कि वह स्वयं ही प्रियतम का स्वागत करेगी, 'पधारो नाथ!'

इसके अतिरिक्त 'मुख-दर्शन' की विधि के संबंध मे भी उसने बहुत कुछ सोच रखा था। परंतु जैसे ही उसने कमनीय कृष्ण-से प्रियदर्शी सुदर्शन प्रिय को देखा—लाज लौर संकोच के कारण पलकें भारी हो उठीं, नयन झुक गए! इतना ही नही अपितु वह अभिसारमय संपूर्ण यौवन लज्जा की मार से जैसे छिप जाने की कोशिश करने लगा।

यद्यपि रुखी ने उसे 'मुख-दर्शन' की संपूर्ण विधि समझा दी थी, पर सुहागरात की उत्सुकता मे अधीर बना हुआ गलाल सब कुछ भूल गया और लाजवंती लता-सी पलग के पास खड़ी हुई वधू के पास तुरंत पहुंच गया। कंकण-चूड़ियो से शृंगारित, हर प्रकार से सुंदर लगने वाले उस हाथ को पकड़कर वह उसे सीधा पलंग के पास खींच ले गया और बगल मे बिठाकर तुरत पूछने लगा।

"आपका नाम?"

"झाली, स्वामी!"

"और छोटी का?"

"मेतलाणी।"

"कहा है वह? उसे भी यही बुला लो न!" गलाल स्वयं उठने जा रहा था पर झाली उसके पहले ही उठ खड़ी हुई। बीच का द्वार खोलकर इशारे से मेतलाणी को बुलाया। सखियों के समान दोनों बहनें उछलते हुए आवेगों को थामती हुई गलाल के सम्मुख आ खड़ी हुईं।

हालाकि घूघट तना हुआ था, पर मानो वायु से निर्मित बारीक ओढ़नी के आर-पार संपूर्ण मुख-छटा झिलमिला रही थी। और क्षत्राणी

के लंबे-लंबे नयन तो ऐसे लगते थे जैसे ओढनी की आड़ में तिरछे-तिरछे तीर तने हुए हैं। उस सौदर्य से अभिभूत और विस्मय-विमुग्ध गलाल मुख-दर्शन की सारी रस्में भूल गया और उसने दोनों के घूघट एकसाथ फट से खोल दिए। उसे लगा कि पावस के दो बादल एक-दूसरे से टकरा गए है, या संध्या के दो तारे दूर-दूर से पास आ गए है, या दो-दो दीप-शिखाएं शलभ जलाने आई है !

उस अपूर्व सौदर्य-शशि से विमूर्छित गलाल ने न केवल घूघट अपितु दोनों की साड़ियां भी खीच ली। साड़ियां एक तरफ फेंकते हुए उसने दोनो को दोनों हाथो से निकट खीचकर अगल-बगल बिठा लिया। और दोनो के गले मे हाथ डालकर···

स्वयं गलाल को ही पता नहीं था कि उसके चारो ओर श्रेष्ठ किस्म के इत्रों की महक फैली हुई थी अथवा भरे-भरे अंगों वाली नयी नवेली दुल्हनों की यौवन-मजरी की सौधी खुशबू से सारा परिवेश महक-महक रहा था।

महज़ लहंगा-कचुकी के कारण लज्जाभार से दबी जा रही दोनों कुंवरियो के गले में हाथ डालकर उसने तीनो मुख एकाकार कर लिए। कहा, "चूमो अब बारी-बारी से ! पहले मै चूमता हूं !"

और इस प्रकार गलाल ने मुख-दर्शन की रस्म की जगह चुंबन-वर्षा की रस्म अदा की और तुरंत ही पलंग पर ढल गया। कुवरियां अब भी उसके बाहुपाश मे सिमटी हुई थी, दोनों अगल-बगल मे। फिर दोनों को ही अपने प्रशस्त वक्ष·स्थल पर गिराकर कहने लगा, "झाली नाम मुझे बहुत प्रिय है···बहुत !" और फिर दूसरी की ओर एकटक देखते हुए कहा, "पर मेतलाणी भी कम प्रिय नही है, है न ?"

ठीक उसी क्षण गलाल के कानों में पियोली मां की आवाज झन-झना उठी निम्न कुल की लुगाइयों के पास राजपूतों के धर्म का ज्ञान कहा से होगा ?'

पियोली मा जैसे विक्षिप्त हो गई थी। जब से उनके कानों मे यह समाचार पहुंचा था कि युद्ध के लिए निकला हुआ गलाल गांव के नुक्कड़ से वापस लौट आया है, उनमे एक विशेष प्रकार का पागलपन भड़क

उठा था। और फिर ऊपर से पियोली मा ने देखा कि अतिथिशाला दीपों से जगमगा रही है और इत्र की महक से पियोली का भवन भी गंधायित हो उठा है। कुछ कमी थी सो युवतियों ने गीत की झड़ी लगाकर पूरी कर ली थी।

पियोली ने बवंडर खड़ा कर दिया। वे मूर्तिमान भूकप बन गईं। उनके अपने सोचने के अनुसार, उनकी अब कोई भूल नही थी। जब तक कुवरियों की चढी हुई पीठी कुआरी थी तब तक तो पियोली मा ने सब कुछ सहन कर लिया। पर वही बेटा जब सुहागरात मनाने के लिए ठहर गया तो इसका आशय पियोली मां के मन में सुबह की धूप-सा स्पष्ट हो गया···रक्ताक्षरो से लिखित मां के आदेश को पुत्र ने तुच्छ समझ लिया है! स्वयं महारावल के अपमानजनक उपालंभ को भी वह स्त्रियों के पीछे अधा बनकर पी गया है। वासना ने उसे इस कदर अंधा बना दिया है कि न तो उसे मां की गरिमा का ध्यान है और न महारावल की चेतावनी की परवाह है!

विक्षुब्ध पियोली हवेली का मध्यद्वार खोलकर सीधी अतिथिशाला में घुस गईं। चहारदीवारी पर रखे हुए मिट्टी के दीपकों को अपने ही हाथो से बुझाने लगीं। नौकर-चाकरों को भी डाटने लगी, "जिसके राज्य में गोले कार्यकर्ता हों उस राज्य में क्षत्रियत्व कहां से होगा?" एक कोने मे पड़ा हुआ अशोक-वृक्ष का एक झाड़ू हाथो में आ गया। उस झाड़ू को लेकर अतिथिशाला के अग्रभाग की ओर वह दौड़ पड़ीं। पियोली मां अभी-अभी उदित कृष्ण पंचमी के धुधले उजाले मे पिशाचिनी-सी भयायक लग रही थी।

रुखी द्वारा गाव मे से आमंत्रित युवतियां तो पियोली मां की गर्जन-तर्जन सुनकर इस प्रकार छिटक गईं जैसे बिल्ली को देखकर चूहे भाग जाते हैं। और तो और, दयाल सेठ की पत्नी भी भाग खड़ी हुईं। रुखी भी सामने आने का साहस नही कर सकी, जबकि दास-दासिया तो खोजने पर भी मिलने मुश्किल थे।

झाड़ू से चौक तथा बरामदे के दीपक बुझाती हुई तथा अशोक वृक्ष के पत्तों से निर्मित तोरण आदि तोड़ती हुई पियोली मां सुहाग-कक्ष तक

आ पहुंची। वहां पर भी अगले द्वार की दीपमाला का तो वही अंत रहा। उसकी दृष्टि बंद द्वार पर स्थिर हो गई। ऊपर की खिडकियों मे से झरता हुआ प्रकाश और चंदन की सुरभि इतनी तीव्र थी कि बड़बड़ाती हुई पियोली ने पागल की तरह द्वार खटखटाना आरंभ कर दिया। उसने गलाल को लक्ष्य कर कहा, "विधवा के बेटे गलाल ! पूरबिया राजपूत का पुत्र होकर युद्ध की राह से वापस लौट आया ? एक तरफ रणवाद्य बज रहे है और दूसरी तरफ तू लुगाइयों की बगल में छिपकर बैठा है ? क्या दो टके की भी लाज नहीं रही ? रावलजी ने जो पत्र लिखा उसका भी तुझ पर कोई असर नही हुआ जो तू अभी तक बेशर्मी से पचलासा में पड़ा हुआ है ?"

कुछ समय के लिए तो गलाल मूर्तिवत् निःस्पंद बना रहा। वक्षःस्थल पर झुकी हुई दोनों कुवरियों को भी उठने का होश नही रहा। होश आते ही गलाल खड़ा हो गया—कुवरियां भी।

गलाल ने लहंगा-कंचुकी पहनी हुई और अंग-अंग में उमंग-भरी उन कुंवरियों को बारी-बारी से निहारा। यह कहना मुश्किल है कि गलाल की उस दृष्टि में क्या था और क्या नही था ! दो-चार पल की चुप्पी के बाद एक निःश्वास छोड़कर कहा, "जाऊं ?" और इसके साथ ही वह पलंग से नीचे उतरा।

झाली ने कुरते का छोर पकड़कर अश्रुप्लावित नयनों और रुंधे हुए गले से ज्यों-त्यों कर कहा, "कहा ?"

मेतलाणी की अनबोली टुकुर-टुकुर ताकती हुई, छलकती आंखों मे भी यही प्रश्न उभरा हुआ था।

"कडाणा," गलाल ने कहा। उसके हाथ ही नही उसकी आखें भी कटार पर केंद्रित थी।

विवाह-मंडप से ही जिस पति ने कडाणा-कडाणा की रट लगा रखी थी और फिर भी जो रावलजी और पियोली मां के अत्याचारों से पीडित था उस मासूम पति पर झाली का हृदय पसीज गया। करुणा-भरे स्वर में कहा, "यदि कडाणा की इतनी चाह थी तो लौटकर विवाह रखना चाहिए था, स्वामी !"

पर गलाल तो इस समय चेतना-शून्य-सा हो गया था। उसे कतई होश नही था। एक द्वार बंद देखकर दूसरे द्वार की ओर जाती हुई पियोली 'गोली के पेट का' एवं 'औरत का भूखा' आदि अपशब्द इस प्रकार बोल रही थी कि चेतनाशून्य गलाल के लिए झाली के शब्दों का आशय समझना कठिन था। उसने तो केवल यही समझा कि आशा-आकांक्षाओं से अनुप्रेरित पत्निया निराश होकर युद्ध-प्रयाण के विरुद्ध शिकायत कर रही है। झाली पर एक कड़ी नजर डालकर गलाल कहता है, "लौटकर विवाह करता तो मेरे पीछे सती कौन होती?" और तेजी से द्वार की ओर बढ गया।

गलाल के मुंह से यह टेढ़ी और अशुभ बात सुनकर तथा स्वयं के प्रति उसकी नाराजगी देखकर, झाली घबराहट के कारण इतनी सन्न हो गई कि न तो वह उसके सामने आ सकी और न अपना बचाव कर सकी।

द्वार खोलकर तेज कदम से जाते हुए गलाल ने, आंसू बहाती हुई, बिलखती हुई पत्नियों की तरफ एक बार पीछे मुड़कर भी नही देखा।

पीड़ा और अपमान मे जैसे कुछ कमी रह गई थी सो द्वार खुलने की आवाज सुनकर इस तरफ आती हुई पियोली ने द्वार के भीतर नजर डाली। पियोली मां की ईर्ष्याभरी निर्मम दृष्टि ने, मात्र लहंगा-कंचुकी पहनी हुई इन कुवरियों को जैसे अपनी स्थिति का बोध कराया। "सिर पर कुछ ओढ़ लो, लुगाइयो!" और फड़ाक से किवाड़ बंद कर अर्गला भी चढ़ा दी। पियोली मां जैसे इर्द-गिर्द के उस निर्जन वातावरण को सुनाकर कह रही थी, "खबरदार! यदि किसी ने द्वार खोला तो उसे उल्टे कोल्हू मे पिसवा दूगी!"

परछाईं की भांति साथ लगा रहने वाला वक़ता भाई इस समय भी निकट ही था और इस त्रासदी के मूक साक्षी की तरह बिन अश्रुओं के रो रहा था। गलाल को उसने जब युद्ध-वेश धारण करते देखा, तब भी वह कुछ नहीं कह सका। जब सात्वना के दो शब्द निकलने भी दूभर थे तो रोकने का तो प्रश्न ही कहां उठता था! न तो उसमें गलाल को रोकने का साहस शेष था और न ही रोकने का ही अर्थ दिखाई देता था। और तब वह स्वयं को भी शस्त्र-सज्जित करने लगा।

तभी एक दासी ने आकर धीमे स्वर में रोते-रोते कहा, "मांजी सा'ब ने दुल्हनो को कमरे मे कैद कर रखा है !"

"हूं ?" वकता भाई की आवाज सहसा फट गई। अब यों भी उसके मन मे पियोली के प्रति न केवल घृणा बल्कि क्रोध भी इतना चढा हुआ था कि वह तनकर सीधा खड़ा हो गया। दासी के पीछे-पीछे जाकर झट मे अर्गला खोल दी। लौटने ही जा रहा था कि परदे-मुलाहिज़े की चिंता किए बगैर झाली ने वकता भाई के सम्मुख उपस्थित होकर एक विनती की, "कुवर साहब हमसे भी बहुत बुरा मान गए है किंतु···" अकुलाहट और रुलाई के कारण वह आगे कुछ बोल भी न पाई। उसके शब्द सिसकियो मे खो गए।

वकता भाई को अचरज हुआ। पूछा, "आपके प्रति नाराज होने का कारण ?"

झाली ने संक्षेप मे समझ फेर की बात बताई। अंत मे विनती की, "विदाई से पूर्व हम उनसे मिलना चाहती है··· "

"जरूर, जरूर। बस घोड़े पर सवार होने की ही देर है—वो आए !"

वकता भाई ने आगे बढकर गलाल की गलतफहमी एक ही वाक्य द्वारा दूर कर दी, "बापू, मां का गुस्सा रानियों पर ? आपको हर तरफ से परेशान देखकर बेचारी झाली रानी ने तो दुखी होकर यह कहा था कि···"

गलाल को यह स्पष्टीकरण तुरंत जंच गया। बड़बड़ा उठा, "ओ, सच्ची बात !" और वकता भाई के कहे अनुसार उसने घोड़े को उस दिशा में मोड दिया।

एक तरफ से अश्वारूढ़ गलाल आया तो दूसरी तरफ से सीढ़ियां उतरकर झाली और मेतलाणी नीचे आई। वे गलाल का रकाब मे रखा हुआ पैर सहलाने लगीं।

मेतलाणी तो जैसे आसू गिराने के लिए ही उपस्थित थी।

किंतु झाली रानी अब साहस बटोरकर पति को विदाई देने लगी। आखिर थी तो वे दोनों राजपूत बालाएं ? अब उन्हें इस बात का तनिक

भी परिताप नही था कि उनका पति युद्ध मे जा रहा है। दुख था तो केवल इसी बात का कि वह उन पर भी कुपित होकर''।

किंतु गलाल ने स्वयं पहल करके कहा, "झाली रानी ! मुझसे भूल हो गई। मैंने तुमको समझा नही !"

गलाल का हाथ अपने हाथ मे लेती हुई झाली बोली, "मै धन्य हो गई, स्वामी !" मेतलाणी भी जोश मे आकर कुहूक उठी, "हा स्वामी !" और झाली बराबर गलाल के हाथ से खेलती रही और बोलती रही, "स्वामी ! आप अपने प्राण संभालना और हमसे मन निकालकर युद्ध में पिरोना !"

गलाल ने मेतलाणी की ओर देखा। ठुड्डी उठाकर सोल्लास पूछा, "और आप ?" डबडबाई हुई आखों से गलाल को एकटक निहारती हुई बोली, "और गनोरा की विजय से भी सवाई विजय का सेहरा बाधकर शीघ्र ही घर लौटना !"

इन शब्दो के साथ ही गलाल अश्व पर से झुका। दोनों के अरुण-अरुण कपोलो को बारी-बारी से चूमकर बडी मुश्किल से कहा, "जीवन-मरण का जुहार (अभिवादन) रानियो !" और इसके साथ ही उसने लीलागर को एड़ मारी।

दोनो रानिया अश्रुप्लावित नयनो से पति के पीछे ताकती रही और पति के अश्रुओं से भीगे हुए अपने कपोलों को पोछती रही। पंचमी का चद्र आकाश मे काफी चढ़ गया था। वे उसे ईश्वर-स्वरूप मानती हुई अंतर्मन मे प्रार्थना कर रही थी—'प्रभु ! हमारे पति को रण मे विजय देना और शीघ्र ही दर्शन कराना !'

रानियो के कमरे में बंद करने के उपरांत हवेली की शीर्ष मजिल पर खड़ी-खडी पियोली मा गलाल के प्रयाण की प्रतीक्षा कर रही थी। गलाल और वकता के अश्वों को अतिथिशाला से निकलते देखकर अपनी जीत पर हर्षित होती हुई, अस्ताचल दिशा से उठती हुई घोडो की टापों पर कान धरे हुए वह कितनी ही देर तक वही खडी रही'''खडी रही'''।

संतोष की सास खीचते हुए बडबडा भी रही थी—'इतना उत्पात न किया होता तो वह लुगाइयों के मोहपाश से छूटने वाला थोडे ही था !'

और खुले द्वार में से देखी हुई उन अर्द्ध-निरावरण दुलहिनों की याद आते ही जोड़ दिया—'ये पत्निया तो ऋषि-मुनियों की भी तपस्या भंग कर दे ऐसे साचे मे ढली हुई है···।'

और पियोली पुन हवा में कान लगाकर इस प्रकार के आह्लाद सहित कि जैसे जीवन मे कोई निराली और अभूतपूर्व सिद्धि हाथ लग गई है, टापो की क्रमशः क्षीण होती हुई प्रतिध्वनि को सुनती रही··· सुनती रही···!

प्रेम-पाती माही के तट पर

झाली और मेतलाणी को बिलखता छोड़कर, जब गलाल पचलासा से वकता भाई के साथ रवाना हुआ तो कृष्ण-पक्ष की पंचमी का चद्रमा आकाश में काफी ऊपर उठ चुका था। गजी सफाचट टेकरियो वाली उस राह पर दोनों घोडे तूफानी वेग से तहलका मचाते हुए भाग रहे थे। नाल जड़ित टापें पत्थरों से टकरा-टकराकर, राह पर चिनगारियां उड़ाती जा रही थी।

गलाल ने जब पहली बार यह सुना था कि युद्धभूमि की ओर प्रयाण करते समय चूड़ावत को रह-रहकर अपनी रानी की याद सताती थी, तब वह न केवल अपने मन में अपितु वकता भाई के आगे भी इस मोह-जन्य दुर्बलता की हसी उडाया करता था।

आज उसे पुन: चूडावत-सरदार की कहानी याद हो आई। पर इस बार वह हंस नही सका। उसने वकता भाई के समक्ष भी अपनी भूल स्वीकार की। उसने कहा, "जीवन में आज पहली बार जाना कि नारी का आकर्षण क्या होता है?" उसने वकता भाई के प्रति आभार भी प्रकट किया, "यह अच्छा ही हुआ कि तुमने झाली रानी के मन की बात मुझे समझा दी, अन्यथा मेरे हृदय मे मिथ्या ग्रंथि के आधार पर उनके प्रति रोष बना रहता और इस प्रकार अपने अज्ञान के कारण पाप का भागी-दार बनता।"

चूड़ावत की भाति गलाल भी रानियों के प्रति ऐसा अदम्य आकर्षण

अनुभव कर रहा था कि उस आकर्षण के समक्ष वियोग का दुख भी छोटा लगता था। यदि दुख था तो केवल इस बात का कि आशा, उमंग और उल्लास से भरी हुई दोनों कुवरिया सुहागरात मनाने बैठी थी और ठीक उसी क्षण···

शब्दो के बदले उसके चित्त मे उस समय का जीता-जागता चित्र ऊभर आया—तकिये का सहारा लिए वह पलग पर लेटा हुआ है और वक्ष:स्थल पर कमल के दो बड़े-बडे फूलों के समान झाली और मेतलाणी छाई हुई है···

गलाल की युद्धोन्मादी आखे आंसुओं से डबडबा आई। आवाज में से रुदन की शैवाल को एक ओर धकेलते हुए वह बोल पड़ा, "बीच ही में माया छोडनी पडी वकता भाई !"

बीच ही में माया भले छोड़नी पडी हो बापू, पर चिंता की कोई बात नही है। कडाणा को जीतना कोई ज्यादा दिनो का काम नही है। अधिक से अधिक चार दिन लग जाएंगे।"

"क्या कहा, चार दिन ? अरे एक दिन और बहुत हुआ तो दो दिन ! तीसरा दिन तो हरगिज नही लगेगा," और जैसे घोड़े के पंखों पर उड़कर कडाणा पहुंच जाना हो यों लीलागर की लगाम खीचकर बोला, "दौड़ो···रावलजी को दातुन नही करने देना है···!"

वकता भाई ने इस बार गलाल में एक बात विशेष रूप से लक्ष्य की थी। सिर्फ इस वक्त ही नही, वरन् जब से उसने कडाणा की धृष्टता का किस्सा सुना था, उसमें बराबर एक विचित्र प्रकार का उतावलापन ही नही अपितु बेचैनी से ओत-प्रोत एक अभूतपूर्व अधीरता परिलक्षित होती थी। लगता था जैसे एक दुर्निवार अप्रतिरोध्य नियति उसे उद्वेलित किए हुए है, कि उसे अपनी ओर तेजी से खींच रही है। जबकि पूर्ववर्ती युद्धों के दौरान उसमें तत्परता और तेजी तो थी, किंतु फिर भी वह उस सारी प्रक्रिया के दौरान स्वस्थ और धैर्यवान् प्रतीत होता था। कहा, "मेरी एक बात सुनो बापू ! कहावत है कि दर्जी का बेटा जब तक जीता है तब तक सीता है। ठीक इसी प्रकार राजपूत के बेटे का जब तक जीवन है, उसे लड़ाइयां ही लड़नी हैं। इसलिए मेरा निवेदन यह है कि

व्यर्थ की उतावली मत करो।" फिर तुरंत जोड़ दिया, "और सुनो, गलत भार भी अपने सिर पर नही लेना है, बापू !"

"भार तो वकता भाई, सिर पर लेना ही पडेगा। देखो न, एक दिन के विलब में ही रावलजी कितने कुपित हो गए है !"

"होने दो कुपित। कुपित भी हो जाएं तो भी हमारे बगैर उनका काम चलना नही है।"

"इसीलिए तो हमें पहल करके यह भार उठना पड़ेगा !" नही ? और चुपचाप और जोड दिया, "यह क्यो भूलते हो कि वे हमारे जीजाजी है !" इसके साथ ही गलाल ने वकता भाई की ओर मुह फेरा। घोडे को भी थोड़ा धीमा किया। उसकी आवाज मे भी परिवर्तन लक्षित होता था। कहा, "रावलजी ने पत्र मे लिखा कि फौरन आ मिलो, वरना डूगरपुर की सीमा छोड दो ! पढ़ते ही मैं आपाद-मस्तक जल उठा वकता भाई ! और उसी क्षण 'तारी धरती नो तु धणी' (तेरी धरती का तू स्वामी है। उसे अपने पास रख) कहकर प्रयाण करने को था। पर मुझे लगा कि खैर, वह कुछ भी लिखें, पर हम उनको बीच कुएं मे उतारकर रस्सी नही काटेगे !"

एक-दो बास सूर्य चढने पर गलाल और वकता ने दूरस्थ दृष्टि डालने पर देखा कि करगसिया तालाब की पाल पर रावलजी के सैन्यदल की ध्वजाएं फहरा रही है।

वक़ता भाई ने गलाल को सीख दी, "रावलजी यदि उद्विग्नतावश कोई आडी-टेढी बात बोल भी दे तो एक कान से सुनकर दूसरे से निकाल देना। है न बापू ?" जोड़ दिया—"कुछ भी हो, आखिर वे हमारे जीजाजी है !"

"और क्या, इसीलिए तो वक़ता भाई ?"

रावलजी ने गलाल को जो तीखा पत्र लिखा था उसकी पृष्ठभूमि मे उनकी स्वय की अकुलाहट की अपेक्षा सरदारो का उत्तेजन कई गुना अधिक था। एक अति बातूनी मुह लगे सरदार ने तो कह भी दिया था, "हम एक गांव की जागीर वाले आपका हुक्म होते ही आ खड़े हुए हैं, पर आपका साला जो कि पचास हजार का पट्टा भोग रहा है, परम उत्साह

के साथ विवाह रच रहा है !"

"दूज की साझ की जगह चतुर्थी आ गई, फिर भी उनकी पगड़ी की कही झलक तक नही दिखाई देती हुजूर !"

यही अपराध कौन कम था सो पत्र-वाहक सूबेदार ने गत रात्रि को शिविर मे आकर समाचार दिया, "बारात तो दोपहर में ही आ गई थी, पर गलाल बापू रातभर रुककर कल निकलेंगे !"

यह समाचार मिलना था कि सामंतगण अंदर ही अंदर हंसी-मजाक करने लगे। उन लोगो ने रावलजी को परोक्षतः उत्तेजित कर दिया। सूबेदार को छुट्टी देते हुए रावलजी ने सिर्फ यही कहा, "ठीक है, कल देखेंगे।"

और गलाल जब प्रातःकाल की बेला में आ पहुंचा तो रावलजी ने यह भी नही सोचा कि यदि गलाल पचलासा मे सुहागरात मनाने को रह गया होता तो पच्चीस कोस की दूरी तय कर सुबह-सुबह इस वक्त यहा कैसे पहुच सकता था ? पर रावलजी इस प्रकार से सोचकर अपनी बुद्धि फिजूल मे ही नष्ट करे ऐसे भोले न थे। इस समय भी, गलाल के आ जाने के बावजूद, वे गत रात्रि के रोष से सुगबुगा रहे थे। न तो उन्होने गलाल के सामने देखा और न ही उसका मुजरा स्वीकार किया। कठोर स्वर मे सिर्फ इतना कहा, "मैंने तो सोचा कि सांदरवाड़ा में घरजमाई रह गया !"

क्रोध के मारे गलाल मन मसोसकर रह गया।

पल-दो पल के भारी मौन के बाद रावलजी ने पुनः कहा, "मेरी सेना तो मृत्यु-मुख में प्रवेश कर रही है और तुम वहां राजमहल में रंग-रेलियां मना रहे थे !"

"ऐसी बात नही है हुजूर, मैने तो अभी 'मोड'[१] तक नही छोडा; और 'मीढल' भी बिना मुहूर्त के रास्ते में ही छोड़ दिया है।"

काश ! रावलजी ने उस क्षण मे गलाल को देखा होता। वह

१. विवाह के मागलिक अवसर पर दूल्हा दुलहिन के सिर पर पहनाया जाने वाला एक प्रकार का मुकुट।

विवाह के गहनों-कपड़ों से आवेष्टित ऐसा लगता था जैसे अभी सीधा विवाह-मंडप से ही उठकर आ रहा है।

परंतु गलाल के स्पष्टीकरण के बावजूद जब रावलजी के कान पर जू तक नही रेंगी तब उस पर ध्यान देने या उसे देखने का तो प्रश्न ही कहां उठता था। कहने लगे, "क्यो नही, क्यो नही ! तुमने सोचा कि पीछे से लडाई मे शामिल हो जाऊंगा ! लड़ाई मे शामिल होना भी मान लिया जाएगा और साथ ही प्राणो का खतरा भी नही रहेगा ! क्यों ?"

गलाल नख से चोटी तक जल उठा। कहा, "आपके कितने सैनिक कट मरे हुजूर ? फिर भी अब देख लेना। अभी तो पीछे हू पर कल देखना कि कौन आगे है और कौन पीछे है ? कल कडाणा के मोर्चे पर स्पष्ट हो जाएगा !" और अपमान से उबलते जलजले की तरह तंबू से बाहर निकल गया।

गलाल की सेना अभी तक पहुंची नहीं थी। उसने रावलजी की सेना को कूच कर जाने दिया और अपनी सेना की राह देखता हुआ धीरे-धीरे बढने लगा और वकता भाई के साथ मार्ग इत्यादि से परिचित होने लगा।

दोपहर तक गलाल की सेना आ गई। रोटी-पानी से निबटने के बाद उसकी सेना ने एक छोटे रास्ते से प्रयाण किया और साझ होते-होते तो वह रावलजी की सेना से आगे निकल गया। रावलजी की सेना से पुकारने पर आवाज सुनाई पडे उतनी दूरी पर उसने अपनी सेना का अंतिम पड़ाव डाला।

कडाणा इस स्थान से अधिक दूर नही था। बीच मे एक बियाबान जंगल भर था। गलाल ने वकता भाई को अपने निर्णय से अवगत किया, "चाहे कुछ भी हो, कडाणा पर पहला प्रहार हमे करना है।"

वकता भाई इस बार भी चुप ही रहा।

भोजन से निवृत्त होकर गलाल वकता भाई के साथ लड़ाई की व्यूह-रचना करने लगा।

वक़ता भाई ने लक्ष्य किया कि इस विषय में गलाल पूरा-पूरा रंग में

आया हुआ था और उसकी सैनिक प्रतिभा अपने चरम उत्कर्ष पर थी। इस व्यूह-रचना से संबंधित विचार-विमर्श के दौरान वकता भाई को अमरिया का स्मरण हो आया। उसने पहले से ही सोच रखा था कि उसके पास से कडाणा के परकोटे, द्वार और महल आदि की जानकारी प्राप्त करनी है। लेकिन संप्रति वह जानकारी प्राप्त करने की बात स्थगित कर एक दूसरे ही विचार मे उलझ गया था। वह सोच रहा था—'बापू को उस पत्र की बात कहूं या न कहू ? स्वयं पत्र देना उचित रहेगा या जिसके पास से लिया है उसी की मार्फत देना उपयुक्त रहेगा ?' जिस तरह बिल्ली घर-घर बच्चे को लेकर घूमती है वैसे ही वकता भाई पत्र को एक पगडी से दूसरी पगडी में स्थानातरित करता रहा था। अतिथि-शाला में उतरने के बाद अंतिम बार नई पगडी बाधते समय उसके मन में यकायक प्रश्न भी उठा था—'पियोली मा नें रक्ताक्षरों से पत्र लिखा और कडाणा की राजकुमारी ने प्रेमाक्षरों से, दोनों मे कौन-सा बढकर है ?'

इस समय भी पत्र पर विचार करते समय उसके मन में इसी प्रकार का भाव था। पता नही क्या बात थी कि उसे यह पत्र एक जीती-जागती शक्ति-सा प्रतीत होता था और उसके विषय में निर्णय लेते समय वह यों सतर्क रहना चाहता था जैसे सात-सात कपड़ों से छानकर पानी पीना चाहता हो !

और वह गलाल के पास से आहिस्ता-अहिस्ता उठ खड़ा हुआ, "आप विचार करो, मैं अभी आता हूं," कहकर वह रावटी के बाहर निकल पडा।

पहरेदार से पूछा, "कौन तैनात है ?" प्रहरी के उत्तर देने के पहले ही पास में बैठे हुए चार-पांच सैनिको में से दो-तीन हाजिर हो गए।

"धीरसिंह के कब्ज़े में एक जोगी है, उसे मेरी रावटी में हाज़िर करो।"

वह अपनी रावटी में बैठकर फूलां पर रावलजी के डोरे, पत्र और दंतकथा आदि प्रकरणों को एक सूत्र मे पिरोने की कोशिश करने लगा।

थोडी ही देर मे अमरिया हाज़िर हुआ। हालाकि उसके पास झोला तो नहीं था, पर रामैया इस वक्त भी मौजूद था।

उसके हाथों में रामैया देखकर वकता भाई को किंचित् हंसी आ गई। कहा भी सही, "क्यों रे, हिरासत में है फिर भी हाथ में रामैया!"

इतने दिनों से सैनिको के बीच रहने के कारण दरअमल उसका भय दूर हो गया था। वस्तुतः वह सैनिकों के पहरे मे था भी नही। सत्य यह है कि सैनिकों का मनोरंजन करते रहने की वजह से वह सर्वप्रिय और विश्वासपात्र बन गया था। पर यह सुनते ही कि वकता भाई ने बुलाया है, वह पुनः भयभीत होने लगा था। फिर भी वह शात स्वर मे उत्तर देने लगा, "रामैया तो बावजी···यू समझ लो कि राजपूत की तलवार और जोगी का रामैया···सदैव हाथ में ही रहते है न!" वह इसलिए भी थोडी तान में था कि अभी-अभी ही वह सैनिकों की मंडली के आगे से गाकर आ रहा था। बल्कि 'बावजी' का बुलावा सुनकर तो उसके मन के एक कोने मे यह क्षीण आँशा भी जगी थी कि हो सकता है 'बावजी' ने गीत सुनने के लिए ही बुलाया हो!

परंतु इस क्षीण आशा के विपरीत वकता भाई ने गंभीर स्वर मे आदेश दिया, "ठीक है, बैठ यहां।" वक़ता भाई ने जैसे ही पैरों के पास बैठने को कहा कि अमरिया समझ गया, जरूर उस पत्र का प्रसग छेड़ेंगे।

अपेक्षा के अनुरूप वकता भाई ने भी सचमुच वही बात आरंभ की। अमरिया को अपेक्षित चेतावनी देने के वाद उसे सियाड तक की पैदल यात्रा, स्वप्न-गीत, पत्र और कडाणा की कुंवरी आदि के बारे में सारी बातों को सच-सच कह देने की आज्ञा दी। क्षणभर थमकर भारी श्वास लेते हुए कहा, "आखिर इसका अत कहा है अमरिया?"

इन शब्दों ने अमरिया को चिंता में डाल दिया। जो भी हो वकता भाई की बात में स्वीकृति का स्वर भरते समय अमरिया का लहजा भी जैसे वक़ता भाई के उदास हृदय की ही प्रतिध्वनि बन गया, "ऐसा बापू!"

"हां जोगी!"

"तो फिर कह दू सारी बात? अब तो मैं सौगध-मुक्त हूं, इसलिए आखिर तक की सारी बात कह देने की राह में कोई रुकावट भी नहीं है।" तुरंत जोड़ दिया, "पर बात थोड़ी लंबी है बावजी!"

पता नहीं अचानक वक़्ता भाई के हृदय मे क्या हुआ कि वह तकिये का सहारा छोड़कर एकदम सीधा हो गया। कहा, "ऐसा कर, ठहर जा। मैं तुझे वह पत्र देता हूं।" पगड़ी मे से पत्र निकालकर अमरिया को देते हुए कहा, "ले यह पत्र। बापू को देना और अगर बापू पूछें तो वह गीत वाली सपूर्ण बात कह सुनाना। पर सुन, इस पत्र की बात बीच मे मत लाना, कहना कि यह पत्र लेकर सीधा कडाणा से आ रहा हू।"

"कोई नई आफत तो नही उठ खड़ी होगी सा'ब ?" बापू के नाम के उच्चारण के साथ ही अमरिया के हृदय मे एक भय जुड गया था।

"घबराता क्यो है ? मैं जो तेरे साथ हू !" वक़्ता भाई ने खड़े होते-होते उसे संक्षेप में आश्वस्त किया।

वक़्ता भाई जब गलाल के तंबू के पास पहुंचा तो वह किसी को कुछ निर्देश दे रहा था। अमरिया को बाहर खड़ा रखकर वह भीतर गया।

निर्देश देने के लिए बुलाए हुए उन दो सैनिकों को जाने की अनुमति देकर गलाल ने वकता भाई से कहा, "तीन-चार ऊंटों पर के वजन के बराबर तेल, आस-पास के गावो से कुप्पों मे भरकर मंगवाया है।"

"तेल किसलिए बापू ?"

"तेल की जरूरत है इसलिए। देखना, कडाणा में तेल अपना खेल दिखाएगा !" गलाल सचमुच बहुत प्रसन्न मुद्रा में था।

वक़्ता भाई ने मूल प्रसग पकडा। बोला, "वह जोगी बाहर खड़ा है।"

"कौन सा ?···अच्छा···वह···माही के किनारे वाला ? बुलाओ··· बुलाओ···ठीक समय पर आ पहुचा···मुझे वह स्वप्न-गीत सुनना है··· प्रथम और अतिम बार !" गलाल के इस आनंद मे थोड़ा बावलापन था।

अमरिया ने डरते-डरते द्वार मे प्रवेश किया। झुककर अभिवादन किया, "जय रघुनाथजी बापू !"

"तू कैसे आ टपका रे कडाणा में ?"

"याचक हूं, अन्नदाता ! मांगता-मांगता निकल आया हू !"

"क्यो रे, माही के किनारे से कहीं बध तो नही गया ?" तुरंत जोड़ दिया, "तुझे देखकर माही का किनारा याद हो आता है।"

'ऐसा ही है बापू !" और अमरिया जैसे आख बंद कर कुएं में कूद पड़ा। अंगरखे की जेब मे हाथ डालता हुआ बोला, "बापू, एक पत्र लाया हूं," डायरी मे से निकालकर कापते हाथो से वकता भाई की ओर बढ़ा दिया। वकता भाई पत्र लेकर गलाल को देता हुआ खड़ा हो गया। पास मे से दीपक लाकर गलाल के पार्श्व मे रख दिया। लौ को भी जरा तेज किया। पत्र खोलते हुए गलाल ने प्रश्न किया, "किसका पत्र है रे ?"

"कडाणा से लाया हूं, अन्नदाता !"

"कडाणा से ?" गलाल चौका। वह सतर्क होकर बैठ गया, कडाणा से है, पर किसका है ?" उसे तो भ्रम था कि कडाणा के दरबार (नरेश) ने भेजा होगा।

"हुजूर ! कडाणा की बाई सा'ब ने दिया है।"

"ओ···" गलाल की इस 'ओ' मे कितने ही प्रश्न और भाव कुलबुला रहे थे। रावलजी की बात याद आते ही, खुला हुआ पत्र आंखों के आगे ले जाने के बजाय उसे दूर करते हुए पूछा, "किसको लिखा है जोगी ?"

"आपको लिखा है बापू," और इसके साथ ही अमरिया ने गलाल बापू के हृदय पर पडे हुए ढक्कन को भी चट से खोल दिया, "अन्नदाता ! सपने के गीत वाली कुमारी ही कडाणा की राजकुमारी है !"

क्षणभर के लिए गलाल काल और स्थान से अतीत हो गया। उसके हृदय में एक ऐसा ज्वार उठा, एक ऐसी ऊर्जस्वित चेतना लहराने लगी कि अपनी बाईस वर्ष की आयु मे ऐसा स्फुरण, ऐसा कंपन उसके हृदय मे पहले कभी नही हुआ था। यह अनिर्वचनीय उभार उसके अनुभूतिलोक से परे का था। ऐसी अनुभूति तो उसे पहले कभी नही हुई थी। जब झाली और मेतलाणी की ओढ़नी खीच ली थी तब भी नहीं। इस शब्दातीत, अर्थातीत, अव्याख्येय अनुभूति से द्वद्व करती हुई उसकी चेतना वर्तमान के धरातल पर आ खडी हुई। दीपक के आगे पत्र रखकर अक्षर पढने की कोशिश करने लगा। कलम से लिखे हुए बड़े-बड़े अक्षर

वैसे तो सुपठनीय थे, पर एक तो वे धुंधले और फीके पड़ गए थे और स्वयं गलाल का मस्तिष्क भी अपने स्थान पर नहीं था।

कल की ही तो बात है जब रात को लगभग इसी वेला मे भरपूर यौवन-भार से लचकती-लरजती हुई और समर्पण भावना से सराबोर उन कुवरियो के साथ गलाल प्रणय-गोष्ठी मे डूबा हुआ था। और आज इस पल माही-तट की स्मृति के रूप मे उर मे जड़ी हुई तलवारधारिणी कुंवरी का प्रेम-पत्र पढता हुआ गलाल आनद-सरोवर में तैर रहा था ! कहना कठिन है कि दोनो में से अधिक हर्ष-बावरा गलाल कौन-सा था !

'स्वामीनाथ' शब्द पढते ही गलाल के मनोलोक मे एक चित्र सजीव हो उठा—दोनों हाथो से तलवार के दोनो छोर पकडकर एक युवती लज्जा-भार से झुकी-झुकी पलकों सहित लाज से गड़ी जा रही है, कि लड़के के वेश में अपेक्षाकृत और भी अधिक नमित प्रतीत होने वाली वह नवयौवना जैसे आंखो के द्वारा उसे संबोधित कर रही है ! क्षितिजो से संभाषण करने वाली उन कजरारी आखों का मौन निमत्रण, सागर-से लहराते वे गहरे-गहरे नयन, अपने मे खोई-खोई सदा सपना देखने वाली वे भादों के मेघो की रिमझिम-सी तरल आंखें, सहसा उसके स्मृतियों के आकाश में दिप-दिप करने लगी···। उसका अंतर्मन उस युवती के स्मृति-दीप से जगमगा उठा···

और बाद की पंक्तियों के इस वाक्य ने कि "हम तो ब्याह कर बैठ हैं" आनद और उल्लास की उस सुहानी झील मे और भी हिलोरें उत्पन्न कर दी। पर अंतिम शब्द 'फूला का आलिंगन' पढकर तो गलाल का हृदय जैसे दिव्य से दिव्यतर एवं दिव्यतम आह्लाद की धुरी पर घूमने लगा···घूमने लगा···।

पत्र समाप्त हो गया। पर उसके शब्द और स्मृतिया अभी भी गूज रही थीं। दो-चार पल तक तो वह बोल भी न सका। उसकी मन:स्थिति कुछ इस प्रकार की थी कि जैसे माही के उस किनारे से बिछुड़ने के बाद से वह उसी की तलाश मे भटक रहा था। ईडर-गनोरा की विजय और ढेबर जलाशय का निर्माण-कौशल महज उसी तलाश-पथ की अप्रासंगिक महत्त्वहीन घटनाएं थी। उसकी आत्मा के सूर्य को युग-युग से, जन्म-

जन्मातर से जिस उषा की तलाश थी वह उसे अब मिली है···

और इतने लबे सफर के बाद, जिसकी उसे तलाश थी उसका पद-चिह्न मिल जाने का भाव जैसे स्पष्टतया उसके चेहरे पर उभर आया था—'जीवन ने जो चाहा वह उसे मिल गया है, कि जिसकी अंतहीन तलाश मे मेरी आत्मा भटक रही थी वह स्वर्ण-किरण अंततः मिल गई है !'

उसने अमरिया से अनुरोध किया, "चल, अब मुझको सारी बात विस्तार से कह सुना !" तकिये पर ढलते हुए स्वगत-सा जोड़ दिया, "भवानी का आदेश होगा तो कल स्वप्न सत्य मे बदल जाएगा।" अमरिया की ओर आत्मीय दृष्टि से देखते हुए कहा, "तूने सियाड मे गीत समाप्त करते समय कहा था न कि स्वप्न साकार करना बापू !"

बापू की इस याद से अमरिया न केवल खुश हुआ अपितु स्वयं को धन्य अनुभव करने लगा। और फिर अमरिया ने काव्यात्मक शैली में अपनी कहानी आरंभ की···

माही नदी के तट पर अपनी ही आंखों से देखे हुए घोड़ों के उत्पात के दृश्य से लगाकर फूल कुवर से मिलन एवं परिचय तथा उसका दिया हुआ आदेश आदि पहले कह सुनाया फिर उसके द्वारा आरंभ की गई तलाश और दादागुरु से प्राप्त जानकारी के बाद, कडाणा के अंतःपुर की भेंट एवं स्वप्न-वार्ता के आवरण में फूलां ने किस प्रकार अपना हृदय खोल-कर रख दिया था आदि सभी प्रसंगों का रससिद्ध वाणी मे वर्णन करते हुए अमरिया सियाड आ पहुंचा। इस स्थल की कथा कहते हुए अमरिया ने रहवाल चाल से आगे बढ रही जलधारा-सी तीव्रगामी कथा को घोड़ी की लगाम की तरह सहसा खीचकर रोक दिया···।

"रुक क्यो गए जोगी ?"

अमरिया तो जैसे सौ मन सूत में उलझ गया था। उसकी आत्मा एक अव्यक्त घुटन से कराह रही थी। अब तक तो वह सत्य की पगडंडी पर अप्रतिहत गति से चलता रहा था, परंतु पत्र और पियोली का प्रसंग आते ही वह सोचने लगा, "मैंने अभी-अभी ही तो बापू से कहा है कि सीधा कडाणा से पत्र लेकर आया हूं और वास्तव में पत्र तो···"

और तो सब कुछ ठीक था पर सच्ची बात कहने में सम्मुख बैठे हुए वकता भाई की उपस्थिति बाधक बन रही थी और अमरिया ने वकता भाई की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि डाली। धीरे से पूछा भी सही, "पत्र की बात ?"

वकता भाई ने उस दृष्टि का मर्म समझ लिया। बोले, "कह दे जोगी, जो भी घटित हुआ है वह सबका सब कह दे।" जैसे स्वयं को सबोधित कर रहा हो ऐसे लहजे मे कहने लगा, "पहली बात तो यह कि हम युद्ध करने जा रहे हैं और फिर माही तट पर बैठकर तुझे कोई भी बात छिपाने की जरूरत नहीं है। पत्र के संबंध में भी सच्ची-सच्ची बात कह डाल जोगी !"

और बंधन-मुक्त अमरिया ने अभयदान प्राप्त कर पुन अपनी वाणी को सत्य पथ पर प्रवाहित किया। उसने पियोली मा द्वारा दी गई धमकी, पत्र का सबूत और यमराज के समान भयंकर गारासिंह द्वारा दी गई रामैये की कसम आदि सभी घटनाएं कह सुनाईं। वहां से फिर पगलांजी पर बापू के कोप, मांजी सा'ब द्वारा बुलाकर दिया गया यह पत्र, कडाणा जाकर दी गई बधाई और नारियल भेजने की जगह पर कुआं ध्वस्त किए जाने के संशय की बात भी उसने कालूसिंह और फूलां की मा के मध्य विद्यमान कलह के आधार पर सप्रसंग कह सुनाई। और अंत में गढी के द्वार पर पत्र देने की प्रतीक्षा में स्वयं के बैठे रहने एवं डूंगरपुर से आते ही बापू को मुजरा करने की बात कहकर अमरिया ने हंसते हुए कहा, "और शेष बात बावजी कहेगे बापू," और वह पुन: वकता भाई के सामने देखकर ठकुर-सुहाती हंसी हंसने लगा।

"तू तो बिना घबराए सब कुछ कह डाल," वकता भाई ने उसे आश्वस्त किया। तुरंत जोड दिया, "मुझे तेरी तरह बात कहना नही आता !" वकता भाई को विश्वास ही नही था, बल्कि वह प्रत्यक्षत: देख रहा था कि बापू अब बीती बातो को याद नही रखेंगे।

वकता भाई का अनुमान बिल्कुल सही था। गलाल न केवल चेहरे से अपितु भीतर-बाहर से पूर्णतया बदला हुआ लगता था। अतीत की स्मृतिया चाहे कितनी ही अप्रिय क्यों न हों, वे उसके इस आनंद-कोष बने हुए प्रफुल्ल चेहरे को मलिन नहीं कर सकती थी।

अमरिया ने वकता भाई द्वारा पत्र छीन लिए जाने के प्रसंग के बाद अंत में कहा, "पर शायद इस पत्र की नियति यही थी बापू कि वह आपको माही के किनारे पर कडाणा की सीमा पर ही मिले···! इसीलिए तो बावजी पत्र छीनकर मुझे आपके पास ले आए हैं···।"

अमरिया ने कथा-समाप्ति के पूर्ण विराम के रूप मे जैसे ही जमीन पर माथा टेककर अभिवादन किया, गलाल उठ खडा हुआ। उसने वकता भाई की ओर डग भरा। वकता भाई पलभर के लिए सहज झिझकवश अटका न अटका कि वास्तविक स्थिति का बोध होते ही दुगुने आवेश के साथ गलाल से लिपट गया। गलाल कह रहा था, "तुमने तो मुझे सही अर्थो मे शुभ पर्व के क्षणो मे धन्य-धन्य कर दिया है, वकता भाई !"

वकता भाई के बाहुपाश से मुक्त होकर गलाल ने अमरिया को कलाई से कडा उतारकर देते हुए कहा, "दूसरा मिलेगा, स्वप्न के सत्य होने पर। अब तू जा सकता है।"

"जाएगा कहां ? अभी तो उससे सूचना प्राप्त करनी है।" वकता भाई ने कहा। और फिर उसने गलाल को स्मरण कराया कि रात काफी बीत चुकी है और उसे सो जाने की सलाह दी। इसके बाद वह अमरिया के साथ अपने तंबू की ओर चल पडा।

गलाल वही, उसी गदले पर लेट गया। उससे भले ही स्पष्ट शब्दो मे न कहा हो पर उसका अतर्मन यह अवश्य अनुभव करता था कि अब तक सहन की हुई लड़ाइयों, संघर्षो, क्लेशों और अतर्द्वद्वो का जैसे एक-साथ ही अत आ गया है। भार-मुक्ति की अनुभूति के फलस्वरूप उसका मन हलकापन महसूस कर रहा था। उसे लगा कि जीवन-व्यापी संघर्षों, विडंबनाओं और पीड़ाओ का अंत आ गया है। फूलां से अतर्मन की सतह पर तो साक्षात्कार हो ही चुका था, अब तो केवल आत्माओं के महा-मिलन की बाह्य औपचारिकता शेष थी और उसमें भी कौन सी देर थी ! सिर्फ सुबह होने भर की ही तो देर थी !!!

कडाणा टूट गया पर…

गहरी नीद मे खोए हुए गलाल के कानो में रणभेरी गूज उठी। इस पल वह स्वप्न-लोक मे विहार कर रहा था…वह फूला के बाहुपाश में बंधा-बंधा, प्रणय के क्षीणसागर मे नौका-विहार कर रहा था। सहसा रणभेरी झनझना उठी। स्वप्नविष्ट-सा वह उठ खडा हुआ। पर फूलां अंतर्धान हो गई थी। एक-दो पल तक तो वह बांहो मे से अंतर्धान फूलां को पकड़ने की निष्फल चेष्टा करता रहा, पर जो टूट गया सो टूट गया। टूटे हुए स्वप्न कभी जुडते नही है ! निरुपाय व निराश-सा वह पलकें झपकाता रहा। पर शीघ्र ही वर्तमान के जागरण-बोध ने उसके मस्तिष्क को अपने नियंत्रण मे ले लिया। वह गद्दी पर से उठ खड़ा हुआ। आखे मिचमिचाता हुआ बोला, 'अरे, सबेरा हो गया क्या ?"

पहरे पर तैनात सतरी भी इस असमजस के साथ द्वार के सम्मुख खडा था कि बापू को जगाऊं या नही ? पर ठीक उसी समय उसने बापू को बोलते सुना। बापू की आवाज सुनकर वह भी बोल पड़ा, "रावलजी की छावनी में कूच के नगाड़े बज रहे है। इसका अर्थ है, महाराजा ने हमको भी कूच का आदेश दिया है।"

"वाह-वाह !" गलाल फिर से युद्ध की तरंग में था।

दातुन-पानी करके हथियार सजाते-सजाते उसने वकता भाई के तंबू का एक चक्कर काटा। वकता भाई दीपक के आगे दर्पण रखकर पगड़ी बाध रहा था। गलाल ने साश्चर्य कहा, "मेरा मन तो इधर कडाणा-कडाणा रटता है और तुम यहां निश्चित होकर पगड़ी बांध रहे हो ?"

वकता भाई के पास पगड़ी बांधने का कारण था। गत रात्रि को फूलां का पत्र निकालते समय भीतर से एक पेच बाहर निकल आया था। पर बचाव करने के बजाय एक दूसरा वास्तविक कारण पेश किया, "बापू ! अभी सबेरा होने मे काफी देर है। सप्तमी का चंद्रमा अभी-अभी ही उगा है। मुझे ज्यादा उतावली नही है।"

"पर क्योंकि रावलजी ने उतावली की है, हमें भी करनी पड़ेगी।"

"थोड़े समय के लिए, बैठ जाओ। इस बीच में पगड़ी भी बांधता

रहूंगा और कडाणा के महल का विवरण भी दे दूगा ।"

गलाल ने अन्यमनस्क भाव से तकिये का सहारा लिया ।

वक़ता भाई ने अमरिया से कडाणा की सेना और विशेष रूप से कालूसिंह और उसकी रानी के बीच विद्यमान अनबन के विषय मे जो सूचना प्राप्त की थी वह कह सुनाई । अंत मे कहा, "आपकी आज्ञा हो तो कुवरी को संदेश भेजूं कि हमारी सेना जिस समय सामने की दिशा मे घूम जाएगी उस समय वह अपने आदमियों द्वारा भीतर से द्वार खुलवा दे ।" उमड़ते स्वर मे जोड़ दिया, "बस सीधे राजमहल पर हमला !"

गलाल ने अपने सुदीर्घ मैत्री-काल मे पहली बार वकता के प्रति विरक्ति अनुभव की । फिर भी उसने ज्यादा तीन-पांच न करते हुए मात्र यही कहा, "वकता भाई ! कुवरी इस प्रकार से कभी द्वार नही खोलेगी ।"

"आप सच कहते है, परंतु गलाल बापू का नाम सुनकर अवश्य खोलेगी ।" दीपक के धुंधले उजाले मे गलाल के चेहरे पर के विरक्ति-भाव को पढकर वकता भाई ने कहा, "बापू ! युद्ध के दौरान सभी उपाय जायज है । ऐसा करने से कई लोगों की जानें बच जाएंगी ।"

गलाल एकाएक खडा हो गया । रुष्ट आवाज मे विनोद का पुट मिला-कर कहा "वकता भाई ! तुमने भाग-वांग तो नही खा रखी है ? कुवरी की नजरो में गलाल का यही मूल्य आकने का निश्चय कर लिया है क्या ? महलों में बैठकर वेद पढने की बात भूल गए क्या ? हमारी इस गणना को वह जड़मूल से उखाड फेकेगी ।"

"ऐसी बात है तो फिर शीघ्रता मत करो । रावलजी की फौज को आ जाने दो !"

"असंभव ! रावलजी से हम कहकर आए हैं !" वकता का चेहरा उतर गया था । वह असहाय-सा गलाल की ओर टुकुर-टुकुर देख रहा था । गलाल ने वक़ता की ओर देखकर हंसने का प्रयत्न करते हुए कहा, "रावलजी ने हम पर ताना कसा था कि हम महज दिखावे के लिए लडने को निकले हैं । तुमने भी तो बाहर खड़े-खड़े वह ताना सुना ही होगा, नही ?" इसके बाद उसने पीठ फेर ली । जाते-जाते कहा, "शीघ्रता करो । हमें तो कडाणा के राजमहल मे जाकर ही पगड़ी बांधनी है !"

अतत: वकता भाई तैयार खडी हुई सेना को दो घड़ी बाद कूच का आदेश देकर ही राहत का अनुभव किया।

मंज़िल दर मंजिल तेजी से आगे बढती हुई गलाल की फौज कडाणा की सीमा पर पहुंची ही थी कि एक गुप्तचर से खबर मिली कि रावलजी की फौज तो अभी तक रवाना भी नहीं हुई है ! न केवल वकता भाई अपितु गलाल भी समझ गया कि आगे पडाव करने वाली हमारी सेना को धोखा देने के लिए ही रावलजी की फौज मे युद्ध-दुंदुभि बजवाई गई थी।

वक़ता भाई ने रावलजी के सैन्यदल की प्रतीक्षा करने का परामर्श दिया, पर गलाल अब कहां मानने वाला था !

जैसे सिर पर तिरछी पगड़ी रखी हो यों आकाश के मस्तक पर सप्तमी का तिरछा धुधला-सा चाद माही की नील जलराशि को रुपहला बनाने में लगा हुआ था और उधर कडाणा में पहला मुर्गा बांग पर बांग दिए जा रहा था।

गलाल ने माही के थाले में अपने सरदारों की एक सभा बुलाई। एक ओर कसुबा (अफीम-द्रव) तैयार करवाया तो दूसरी ओर वह सैनिक टुकड़ियों के सूबेदारों को रणनीति के विषय में मार्गदर्शन देने लगा। तरल अफीम का दौर चल रहा था। तभी नगारची ने कहा, "बापू, कालूसिंह ने अपनी दौलत सात जगह छिपा रखी है। इनमें से एक जगह तो परकोटे के बाहर है, ऐसा मैंने अत्यंत विश्वसनीय सूत्रों से सुना है।"

"तो करें श्रीगणेश ?" गलाल बोला। प्रश्न किया, "परकोटे के बाहर किस स्थान पर है, कुछ खबर है ?"

"यह तो नहीं मालूम कि वह कहां है, पर लगता है वह जगह कहीं आस-पास ही होनी चाहिए।"

गुप्त खजाने की चर्चा चल ही रही थी कि इतने में खबर मिली कि युद्ध की संभावना देखकर कडाणा की दासियां राजमहल की पिछली खिड़की में से होकर पौ फटते ही नदी तट पर पानी भरने आई हैं।

"ठीक है, उन लौडियों को पकड़कर उनसे खज़ाने के विषय में जानकारी प्राप्त करो। कौन जाएगा ?"

"हमें स्वयं जाना चाहिए," वकता भाई ने कहा। वस्तुतः इस क्षण भी वह तो यही सोच रहा था कि यदि रानी की दासियां मिल जाएं और वे गलाल बापू का नाम सुन ले तो शायद उनका जाना फलदायक भी सिद्ध हो जाए। और लगभग पच्चीस सैनिकों की एक टुकड़ी, वकता भाई तथा नगारची के साथ गलाल उस दिशा में रवाना हो गया।

पानी भरती हुई सातो दासियां पकड़ ली गईं, पर उनमें से एक भी दासी रानी की न थी। नगारची द्वारा पनिहारिनों को तंग किए जाने पर पता लगा कि नगर के बाहर बाबों वाले मठ में धन होने की पूर्ण संभावना है। मठ की ओर घोडा घुमाते हुए गलाल ने निर्देश दिया, "दासियां वापस न जाने पाएं।"

गलाल का अभिप्राय कदापि यह नहीं था कि उन्हें मार डाला जाए। पर सैनिकों ने इस निर्देश का यही अर्थ निकाला कि मार डालो। इस संभावना से इनकार नही किया जा सकता कि ऐसा अर्थ निकालने के पीछे सैनिक के मन मे संभवतः यह आशका रही होगी कि खजाना लूटने में वे कहीं पीछे न रह जाएं। और इसीलिए उन सैनिकों ने माही माता के जल में उन सातों पनिहारिनों की बलि चढा दी हो तो यह पूर्णतया शक्य है।

मठ की ओर चलने के पहले गलाल ने धीरसिंह और वलमजी को बुलाकर निर्देश दिया था कि तीरों पर बड़ी बत्तियां बांधने के बाद उन्हें जलाकर नगर पर उनकी वर्षा आरंभ कर दी जाए। यह भी समझा दिया था कि दरवाजों पर सैनिक टुकड़िया किस प्रकार तैनात की जानी चाहिए।

इसके बाद वह अपनी टुकड़ी सहित मठ पर जा पहुंचा। बंदूकों की आवाज से द्वार खुलवाया। अंदर जाने पर देखा कि चारों ओर के भवनों के बीच एक विशाल चौक है। चौक के मध्य में एक धूनी धधक रही है। धूनी के इर्द-गिर्द लगभग दस साधु केवल लंगोटी पहने बैठे हुए हैं। प्रत्येक का डील-डौल इतना हृष्ट-पुष्ट और भारी था कि दो-दो शेरों का पेट भर सकता था और उनके शरीरों पर भरपूर राख मली हुई थी। जैसे तप के बल पर भस्म कर देना चाहते हों वैसे क्रोध के साथ वे गलाल

के सैनिकों को घूरने लगे।

नगारची साधुओं से पूछने लगा, "धन बताओ, वरना आज धूनी माता को तुम सबकी बलि चढा दूगा।"

ठीक उसी समय गलाल ने जिसकी दृष्टि प्रवेश-द्वार पर टिकी हुई थी, एक आदमी को फरार होते देखा। गलाल ने तुरंत घोड़ा घुमाया। उसे थोडी-सी दूरी पर ही पकड लिया। तलवार हवा मे घुमाकर उसे मारने ही जा रहा था कि वह आदमी आर्तनाद कर उठा, "मुझे मत मारो, बावजी! यदि धन की ही चाह है तो धूनी के नीचे घडे भरे पडे है!"

"वापस मुड़ो!" गलाल ने कड़कते स्वर में आदेश दिया। विवश होकर उसे गलाल के आगे-आगे चलना पड़ा।

गलाल ने पूछा, "कौन हो तुम?"

"भेरो चाकर।"

नाम सुनते ही नगारची बोल पड़ा, "कालूसिह का खास आदमी है बापू! यह सब कुछ जानता होगा।"

"ठीक है, लेकिन पहले इन मुस्टंडों से नदी का पानी मंगवाओ और धूनी शीतल करो। पहले धन निकालेंगे, बाद मे दूसरी सूचनाएं प्राप्त करेंगे।"

सूचनाओं के नाम पर अब शेष भी क्या था? अमरिया ने बताया था कि आधी पगार पर काम करने वाली कालूसिह की सेना का अधिकांश भाग तो अभी फसल की कटाई का मौका देखकर अपने-अपने घर भाग गया होगा। बहुत सारे गैर-खेतिहर सैनिक भी दीवाली का त्यौहार मनाने घर चले गए होगे। इसके सिवाय खास सूचना यह थी कि कालूसिह खुद डरपोक है। इतनी उम्र में वह एक बार भी शत्रु के आमने-सामने लड़ाई नहीं लडा है। इससे अधिक सूचना की जरूरत भी क्या थी?

धूनी शीतल हो जाने पर उसमे से यज्ञ-कुड जैसा लोहे का एक भारी कड़ाह निकाला। मशाल के उजाले मे देखा तो सिर डूब जाए इतनी गहराई के तहखाने मे कई घडे नजर आए। फिर तो घड़ों में से धन उडेलने के काम में भी उन्ही मुस्टंडो को लगाया।

दूसरी ओर भेरो ने खबर दी कि माही के सामने के किनारे पर बनकोडा

के ऊंट चरने के लिए आए हुए है, सो वे कहीं आस-पास ही बैठे होगे।

कुछ सैनिक ऊटों को पकडने के लिए निकल पडे। वे कुछ ही समय मे दस ऊंट पकड़ लाए। धन के बोरों से सात ऊंट भर गए।

धन से लदे उन सात ऊंटों को रवाना करते समय गलाल ने एक विश्वासपात्र अगुआ सैनिक को बुलाकर उसे विस्तार से सारी बात समझाई, "एक ऊंट डूगरपुर ले जाना बहन के लिए। दूसरा रावलजी की सेना को राहखर्च के तौर पर भेंट करना। तीसरा सागवाडा की सेठानी बहन को देना और चौथा पादरडी में रुखी बहन को देना और कहना कि इसे मीढल छुड़वाने के उपहार-स्वरूप एक साडी समझना। दो ऊट मेरी रानियो को और अंतिम पियोली मा को देकर उन्हें प्रणाम करते हुए कहना कि आपके गलाल का उधार लाया हुआ जीवन आज क्षमरिया द्वारा लाए गए पत्र की पुडिया में बंद हो गया है। इसलिए जीवत रहा तो किसी दिन जुहार भेजूगा और यदि मृत्यु हो जाए तो क्या फर्क पड़ता है मा! उधार मागकर ही तो जीवन लाया था!!"

और गला साफ करके कलाई द्वारा डबडबाती आखों के कोर साफ करते हुए गलाल ने लीलागर को कडाणा की दिशा मे उडने को छोड़ दिया···

झाडियों में से बाहर आते ही देखा कि कडाणा में जगह-जगह आग लगी हुई है। नगर धू-धू कर जल रहा है। घोड़ा रोककर कडाणा की ओर आंखे गडाए पीछे-पीछे आ रहे वकता भाई से युद्ध-बावरे गलाल ने कहा, "वकता भाई, देख लिया न? कडाणा में तेल क्या खेल खेल रहा है?"

नगर में से विविध प्रकार की इतनी आवाजे उठ रही थी कि दोनों पक्षों में बजती नौबतों और रणसिंघो की आवाज के कारण हाहाकार के उस वातावरण में यह पहचानना मुश्किल था कि इसमे से कौन-सी आवाज वीरों की हुकार है और कौन-सी मृत्यु की चीख है?

कडाणा-नरेश को रावलजी के सभावित आक्रमण की सूचना कल ही तो मिली थी। इतने सीमित समय में बिखरी हुई सेना को एकत्रित करना एक दुस्साध्य कार्य था। अतः नगर से बाहर निकलकर आमने-सामने

लड़ाई का तो सवाल ही नही उठता था। उसने परकोटे के अंदर रहकर लड़ने की तैयारी कर रखी थी। पर शाम को जब खबर मिली कि गलाल-सिंह की सेना रावलजी की सेना से आगे-आगे आ रही है तो बाप-बेटे का रहा-सहा होश भी उड गया। गनोरा और ईडर-विजय के कारण इन लोगों के मन मे यह धाक जम गई थी कि गलाल तो जैसे कोई एक बावला बौखलाया हुआ बर्बर प्रेत है! फिर भी परकोटा रूपी रक्षा-कवच, कडाणा का पहला वरदान था और इसीलिए हिम्मत थोड़ी टिकी हुई थी।

पर कालूसिंह ने कब सोचा था कि हिकमतबाज गलाल बाहर से तीरों की अग्नि-वर्षा करेगा! प्रजा नहीं अपितु सैनिकगण भी किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गए थे, कि पहले आग बुझाए अथवा परकोटे पर से गोलियों और तीरों की वर्षा करें?

कडाणा की विपत्ति का घट मानो अभी भरा नहीं हो यों वलमजी ने एक युक्ति का प्रयोग किया। विपरीत दिशा मे हुंकार लगवाकर वह एक द्वार के पास दो-चार आदमियो के साथ लुकता-छिपता आ पहुंचा। फिर तेल से सने गूदड-चिथड़े यथाशक्य शरीर पर लपेटकर, द्वार के पार्श्व में खड़े एक जीर्ण-शीर्ण पीपल की डाल के ऊपर वह चढ गया। शीघ्र ही कोट के पास उतरकर उसने गूदड़-चिथड़ो को द्वार के नीचे ठूस दिया और चकमक से उन्हें प्रज्वलित कर सावधानीपूर्वक पुनः पीपल के पेड़ पर चढ गया। जैसे ही वह उस डाल पर से होकर नीचे कूदा कि उस भीमकाय द्वार के आधे हिस्से में आग की लपटें पहुंच चुकी थी।

जरा-सी देर में द्वार अरअराहट करता हुआ जमीन पर आ गिरा। पर इसके बाद वलमजी की टुकड़ी दुबिधा मे पड़ गई। दरवाजा तो तोड़ दिया पर प्रश्न यह था कि आग के उस दरिया को कैसे पार किया जाए?

ठीक इस अनिर्णय के क्षण मे गलाल अपनी टोली के साथ वहां आ पहुंचा। हालत देखते ही उसने उपाय भी ढूढ लिया। कहा, "चार-पाच ऊटों को काटकर द्वार पाट दो!"

और अग्नि के उस ढेर पर मृत ऊंटों के बिछ जाते ही उस पार जाने का रास्ता तैयार हो गया। गलाल के अन्य सैनिक भी आ पहुंचे और द्वार मे से शहर मे घुसकर तलवारें नचाने लगे!

सूर्योदय हो गया था। उधर रावलजी की सेना का अभी तक कोई पता न था। अब तक केवल हवा में तलवार नचाने वाले कडाणा के सैन्यदल को भी पहली बार शत्रु से आमने-सामने युद्ध करने का अवसर मिला।

भारी शोरगुल मचा हुआ था। एक भयानक युद्ध जारी था।

नगर के चौक में आते-आते नगारची धराशायी हुआ। वकता भी बुरी तरह से घायल हो गया था। किंतु कडाणा की सेना पीछे हटने लगी थी।

परबडी[1] से आगे जाते ही वलमजी गिरा। पर गलाल को कतई होश नहीं था। दोनों हाथों में तलवार घुमाता हुआ वह प्रेत की तरह घूम रहा था और अग्नि-सागर-सा लहराता हुआ, थपेड़े मारता वह तेजी के साथ महल की दिशा में निरंतर आगे धंस रहा था।

ड्योढ़ी का प्रवेश-द्वार देखते ही बचे-खुचे सैनिक भी नौ दो ग्यारह होने लगे। यह दृश्य देखकर धीरसिंह और गलाल के अन्य सैनिको का उत्साह द्विगुणित हो गया। एक ओर तो सेना राजमहल के ड्योढी-द्वार से टकराई और ठीक दूसरी ओर वकता भाई ढल गए। घायल गलाल को इसकी जानकारी न थी। तभी उसके कानो ने एक चिर-परिचित आवाज सुनी, "बापू! गलाल बापू!" गलाल ने देखा कि वकता भाई घोडे पर से लुढक रहे है; घोडा भी जैसे लहू की नदी तैरकर आ पहुंचा!

वकता भाई को पकडकर वह सीधे बिठाने की कोशिश करने लगा। वक़ता भाई बोल उठे, "मुझे छोड़ दो बापू! और अब तुम वापस लौट जाओ! हमें कडाणा ध्वस्त करना था सो कर लिया···कालूसिंह बिना मौत मारा गया है···अतः लौट जाओ···"

'वापस' कहने के पहले वे घोड़े से लुढक गए। गलाल मर्माहत हो उठा। उसका रोम-रोम काप उठा। दो-चार क्षण तक तो वह स्वय को निराधार महसूस करता रहा, लगा कि जैसे पैरों तले से धरती खिसक

१. पक्षियों को चुग्गा डालने के लिए एक ऊचे खंभे पर बनाई हुई चारो ओर से खुली छतदार बुर्जी

गई है। रुदन से भी अधिक हृदयविदारक और करुण स्वर मे वह जैसे वक़ता भाई से कहता हो यो एकालाप करता हुआ स्वयं से कहने लगा—'किसके पास जाऊं वकता भाई ? अब तो जीऊं अथवा मरूं, पर इतनी दूर से आया हूं तो आलिंगन लेकर ही वापस जाऊंगा···अपनी तो गिरस्ती सभी कुछ उस कडाणा के झरोखे मे प्रतीक्षा कर रही है···!' और इसके साथ ही रनिवास के उस जालीदार झरोखे में गलाल ने एक नजर डाली। इसके उपरांत उसने महल के परकोटे पर विहगम दृष्टि डाली। ऊंचाई देखकर लगा कि लीलागर की सहायता से इसे लांघना उचित नही होगा। यकायक याद आया, अमरिया ने कहा था, 'यह सोचकर कि दीवार के सामने खडे-खड़े ही नदी के दर्शन हो सकें, उस ओर की प्राचीर शुरू से ही कम ऊंची रखी गई है।'

गलाल पुन: जोश से भर उठा। प्राचीर के समानातर आगे बढा। जैसे ही यह स्पष्ट हो गया कि महल की प्राचीर और गलाल की सेना के बीच कडाणा की सेना शिकजे मे फंसने ही वाली है, कडाणा के सैनिकों के नाम पर वहां एक चिडिया भी नजर नही आ रही थी ।

गलाल ने देखा कि नदी की तरफ की दीवार सचमुच गले तक ही ऊंची है। यों तो उस दीवार को फादना लीलागर के लिए एक मामूली बात थी, परतु एक तो वह क्षत-विक्षत हो गया था और सामने चढ़ाव था। गलाल ने उसे पुचकारते हुए कहा, "युद्ध का अंतिम मोर्चा है, बेटा !" सबसे बड़ी दिक्कत यह थी कि लीलागर के पास दौड़ लगाने के लिए आवश्यक दूरी भी नही थी। जितना पीछे ले जा सकता था उतना पीछे ले जाकर गलाल ने घोडे को एड मारी। दीवार आते ही लीलागर कूद पड़ा।

लीलागर ने दीवार तो सुगमता से लांघ ली, पर उस पार गिरते समय जमीन पर बिछाए हुए लोहे के बडे-बड़े काटे उसके पैरों मे घुस गए।

लीलागर के बजाय अन्य कोई घोड़ा होता तो तत्क्षण गिर जाता। पर लीलागर तो जैसे अपने स्वामी के उतरने की राह देखता हो यों आगे के घुटनों पर बस टिका रहा।

यथार्थ स्थिति समझते ही गलाल लीलागर की पीठ से नीचे उतर

पड़ा। उस पल वह यह भी भूल गया कि वह महल में है और खतरे के बीच खड़ा है। वह लीलागर की गर्दन से लिपटकर टप-टप आसू बरसाता रहा···रोते-रोते कह रहा था, "वकता भाई के जाने से हाथ टूट गए और लीलागर के जाने से तो गलाल के जैसे पांव भी टूट गए है···!"

एक ही वार में चार टुकड़े

घायल लीलागर मरणांतक पीडा के कारण छटपटा रहा था। किंतु मृत्यु-पूर्व के उन अतिम क्षणों में भी वह वफादार घोड़ा अपने स्वामी के अंतिम दर्शन के लिए जैसे गर्दन उठाने की भरपूर कोशिश कर रहा था। लीलागर की यह पीड़ा गलाल से देखी नही गई। उसकी यह मरण-वेदना उसके लिए असह्य हो उठी। गलाल ने अपना मन मजबूत करके तलवार उठाई। अपने अंतर्मन में इस जीवन-साथी से क्षमायाचना करते हुए गलाल ने एक ही झटके में इस परम प्रिय मित्र का मस्तक धड से जुदा कर दिया।

लीलागर की मृत्यु ने उसे इतना विह्वल बना दिया था कि वह उसका मस्तक सीने से लगाकर उसे चूमना चाहता था। पर अब तक उसे स्थान और समय का बोध होने लगा था। उसकी अर्ध-मूर्च्छित चेतना अब सचेत होने लगी थी।

उसकी आखों के आगे राजमहल खडा था। वह महल की ओर डग भरने लगा। अब वह पूर्णतया सचेत था। इस क्षण वह आधा योद्धा और आधा प्रणयी लग रहा था।

फूलां के महल मे वैसे भी कम अंगरक्षक थे और जो थे वे भी महल के अग्रभाग की रखवाली कर रहे थे।

नगर-पतन के समय से ही महल तो दास-दासियों से चूहों की तरह भर गया था। फूलां और फूलां की मां दोनों को यह समाचार मिल गया था कि गलाल कडाणा का ध्वंस करने के लिए आ रहा है। इस समाचार के मिलते ही गतरात्रि को फूलां के मन में एक विचार आया था। उसने साहसपूर्वक इस विचार को मां के आगे भी प्रकट किया,

"पिताजी यदि सहमत हों तो गलालसिहजी को मै मनाने का प्रयास करू।"

पर मां ने तो उलटे फूला को ही चेतावनी दी, "फिलहाल तू इस किस्म की बात मत छेड़ना, तेरे पिता का क्या भरोसा ? यह सोचकर कि इस सारी विपत्ति की जड़ तू है, वे शराब के नशे में होश गंवाकर बेटी-हत्या या स्त्री-हत्या का पाप भी कर सकते है !"

इसके अतिरिक्त उस पुरातन दंतकथा के आधार पर फूला की मां यों भी कडाणा को अपराजेय मानती थी। उन्हे तो यह चिंता हो रही थी कि कही गलाल इस युद्ध का नेतृत्व न संभाल ले और परिणाम-स्वरूप उसे कही पुत्री के हृदय-भंग का दुख न देखना पड़े !

किसी भी विधि से इष्टदेव से प्रार्थना करने का एक भी उपाय न सूझने पर फूला की मां पूजाघर मे बैठ कर प्रार्थना करती हुई अनुनय-विनय करने लगी, "प्रभु ! तुमसे सर्व शुभ-मंगल की कामना करती हू !"

मां की प्रार्थना अनसुनी रह गई। सूर्योदय भी नही हुआ था कि रानी को समाचार मिला, "कडाणा का दुर्ग-द्वार टूट गया है।" घड़ी-भर बाद सूचना मिली, "कडाणा का सैन्य दल कट रहा है…भागने लगा है…और…"

खुद कालूसिह और अनूप भी कंधों पर भंदूक लिए घबराहट के मारे दौड़ते हुए अपना महल छोड़कर रानी के महल की ऊपरी मंजिल मे, रानी के अंतःपुर में घुस आए थे। कालूसिह तो अब दरअसल गलाल से सुलह करने को बेचैन था।

रनिवास मे शरण लेने के कई कारण थे। पहला कारण तो यह कि रानी की ईश्वरपरायणता और पवित्रता को ये पिता-पुत्र ढाल के समान मानते थे। दूसरा कारण देवी थी और तीसरा कारण यह था कि जब नारियल की बात पूछने के लिए रानी का कामदार आया था, उस समय कालूसिह ने नारियल वापस लौटने और परमार-कुल का अपमान होने की दहशत प्रदर्शित की थी। इस दहशत-भरी दुःसंभावना के उत्तर मे काम-दार ने कहा था कि इस मुद्दे पर आप बेफिक्र रहिए…गलालसिह बापू से रानी साहिबा का पर्याप्त संपर्क है ! अतः इस आधार पर कालूसिह

और अनूप ने सोच रखा था कि ज्यों ही गलाल युद्ध करता हुआ महल के प्रवेश-द्वार पर उपस्थित होगा, रानी की दासी को सुलह का झंडा लेकर भेज देंगे और···

बल्कि अनूप ने तो इसी सिलसिले में पिता के समक्ष एक सुंदर प्रस्ताव भी रखा था। उसने कहा था, "और महल मे प्रवेश करते ही फूलकुंवर गलाल के गले में वरमाला डाल देगी!" पुत्र की इस सूझ पर कालूसिह इतना हर्षित हो उठा कि उसे जीवन बच जाने का शत-प्रतिशत विश्वास होने लगा था।

और लड़ाई जब ड्योढी-द्वार तक आ पहुंची तो कालूसिह पूजाघर में जप-साधना में रत रानी के उठने की प्रतीक्षा में छटपटाने लगा। शत्रु-सेना को बाहर ड्योढी-द्वार जलाने की तैयारी करते देखकर अनूप के प्राण भयाकुल हो उठे। उसने आनंद-विभोर फूला से विनती की, "फूलां! तू मा से जाकर कह न कि शत्रु द्वार जलाने की तैयारी कर रहे हैं, सो अब क्या करना है!"

फूला के हर्ष की सीमा न थी। वह तो आज पहले से ही हर्ष-बावरी हो रही थी। अपनी जाली मे से उसने महल की तरफ आने वाले राज-मार्ग पर देखा था कि दोनो हाथो मे दो तलवारें लिए गलाल शत्रुदल को यूं काट रहा था जैसे वह सैनिको को नही, बल्कि 'थूहर' काट रहा हो।

वैसे तो रक्तरंजित गलाल को फूलां शायद मुश्किल से ही पहचान पाती, पर फूला को अच्छी तरह याद था कि अमरिया ने ईडर-युद्ध का वर्णन करते समय गलाल की, युगल-हाथों मे दो तलवार उठाए लड़ने की विशेषता का वर्णन किया था।

अनूप तथा पिता की उद्विग्नता देखकर यदि एक ओर वह आनंदित हो रही थी तो दूसरी तरफ वह उनके प्रति दया-द्रवित भी हो रही थी। अनूप के अनुरोध की वजह से जब वह पूजाघर मे मां के पास जाने लगी तो महल के पिछले गवाक्ष में से एक वृद्ध दासी, डर के कारण लड़खडाती हुई भीतर आकर चीखने लगी, "बावजी, दौड़ो···बापू दौड़ो ···बाई सा'ब के महल की दीवार तोड़ दी है···घोड़ा कुदाकर···"

अनूप और कालूसिंह ने भी कापते पैरो से फूला के पीछे-पीछे दासी का अनुसरण किया। जाली मे से देखते क्या है कि एक तरुण योद्धा जमीन पर पड़े हुए अपने घायल घोड़े पर आसू बहा रहा है, उसे प्यार कर रहा है। फिर उसने इतनी जोर से घोडे की गर्दन पर तलवार चलाई कि फूला तो यह जानते हुए भी कि वह गलाल है, बस चीखने ही वाली थी। कालूसिंह तथा अनूप घबराहट के मारे छिपने की कोशिश करने लगे। वे दोनो भी समझ गए कि यह कार्य गलाल के सिवाय और किसी का नही हो सकता।

गलाल को महल की दिशा मे डग भरते देखकर फूलां तो खुशी का फव्वारा बन गई। फगुहारे के वेश मे मूर्तिमान सौंदर्य-सा गलाल दिव्य रूप से मनमोहक प्रतीत होता था। कुकुम-वर्णी देह वाला रक्तरंजित गलाल महल के आगन मे सूर्य-सा जगमगा रहा था।

फूलां अपने भयभीत पिता और भाई से आत्मीयतापूर्ण अदाज़ में कहने लगी, "डरो नही पिताजी, वह यहा लडने नही, मेरा वरण करने आए है!" अनायास ही फूलां समझ गई कि पिता एवं भाई इस समय मां के यानी उसके भी शरणार्थी है। इन लोगो को बचाने के मुद्दे पर वह स्वय को समर्थ अनुभव करती थी। गलाल पर उसे पूरा विश्वास था, उस पर उसकी आस्था थी। उसका अतर्मन कहता था कि माही-तट का यह चिर-परिचित मीत, युग-युगातर का प्रियतम, जन्म-जन्मांतर का साथी उसका अनुरोध अवश्य मानेगा।

गलाल और महल के बीच अभी भी पच्चीस-तीस कदम का फासला था। जाली मे से झाकते हुए कालूसिंह को, छोटे बच्चों के लिए भी सरल हो ऐसा यह अचूक लक्ष्य देखकर भीतर से एक प्रेरणा मिली—'ऐसा मौका फिर नहीं मिलेगा कालूसिंह! अगर यह क्षण चूक गया तो सीधा साक्षात् यमराज बने इस गलाल के हाथों मे होगा।' पर इस 'अभी अथवा कभी नही' षड्यंत्र को कार्यान्वित करने मे फूलां की उपस्थिति बाधक बनी हुई थी। उसने उपाय सोचा। फूला से कहा, "बिटिया, जरा दौड़कर पानी ले आ, मैं तेरा पाणिग्रहण करवा दूं!" उसने अनूप की ओर देखकर आंख दबा दी।

फूलां को कालूसिंह की बात समझ मे नही आई। पाणिग्रहण करवाने मे भला पानी का क्या काम है ? फूला का इस ओर भी ध्यान नही गया कि उसका जड़बुद्धि पिता पाणि-ग्रहण अर्थात् पानी ग्रहण समझ रहा है। उमडती हुई खुशी को रोककर फूला ने कहा, "पिताजी ! इसके लिए पानी की क्या जरूरत है ?"

अनूप ने कहा, "तू ला तो सही, अरे गलाल को नही पिलाना है क्या ?"

फूलां को लगा, "ओ ! युद्ध की वजह से वह कितना अधिक प्यासा···" और इस खयाल के साथ ही आनदविभोर फूला पानी लाने के लिए दौड़ पड़ी।

किंतु अभी उसने कमरे की देहरी भी न लाघी थी कि उसके कानों से गोली की आवाज टकराई। फूला समझ गई, "गलाल पर ही गोलिया छोड़ी गई है।" उस क्षण में फूला के पाव ही नही उसका हृदय भी जैसे टूट गया ! खिडकी मे से दृष्टि डाली, लड़खड़ाता हुआ गलाल जमीन पर लोटपोट हो रहा है ! फूला चीख उठी, "गलाल !" और चीख के साथ ही जीने पर और जीने से जैसे बिजली उतरी !

उसने देखा, गलाल की बाजू में से रक्त बह रहा है। अपनी ओढनी उतारकर उसके शरीर पर कसकर लपेट दी और फिर गलाल के हाथो से तलवार लेने का वह प्रयास करने लगी, अर्धमूर्छित गलाल ने शत्रु की आहट पाकर उठने का प्रयास किया किंतु उसे शत्रु नही, एक युवती दिखाई दी। अनायास ही तलवार पर से उसकी पकड़ ढीली पड़ गई। वह मुग्ध-भाव से, स्वप्नाविष्ट-सा निर्निमेष लड़की को निहारता रहा; फिर उसने देखा कि लडकी तलवार लेकर उसके फेरे लगा रही है। दो-तीन फेरे लगाते ही गलाल समझ गया । पूछने लगा, "तुम ! तुम यह क्या कर रही हो ?"

"गलालसिंह पूरबिया का वरण कर रही हूं !"

अशक्ति के कारण गलाल की आखें खुमारी से भर उठी। बोला, "घड़ीभर का मेहमान हूं, क्यों विवाह करके अपनी कुआरी काया को अपवित्र कर रही हो ?"

"अपवित्र नही मेरे देवता ! तुम्हारे जैसे मर्द से विवाह कर इस नश्वर काया को अमरत्व प्रदान कर रही हू !"

सात फेरे समाप्त कर जैसे ही फूलां गलाल को अपनी गोद में लेने लगी, उसने देखा कि कालूसिंह और अनूप नीचे आ रहे हैं।

हालाकि गलाल गोली लगते ही जमीन पर ढेर हो गया था तथापि ये पिता-पुत्र उससे अत्यधिक डर रहे थे।

पहली मंजिल पर खड़े-खड़े खिडकी में से झांकते समय कालूसिंह की नजर गलाल के गले में पड़े हुए हीरे-मोतियों के हार पर टिक गई थी। अनूप को आगे करने का प्रयास करते हुए कालूसिंह ने कहा, "चल उस हार को उतार लें।"

"पहले प्राण निकल जाने दो फिर उतार लेगे।" अनूप तो कालूसिंह की अपेक्षा दुगुना भयभीत था। गलाल ने घोडे पर जो वज्र-प्रहार किया था वह अभी उसकी आंखो के आगे तैर रहा था।

कालूसिंह मर्द की तरह कहने लगा, "अबे, शव से मत घबड़ा। देख न, फूलां उसे उठाने की कोशिश कर रही है, किंतु फिर भी वह उठ नहीं पा रहा है ! जल्दी कर, अन्यथा यदि उसके प्राण-पखेरू उड़ गए तो हम राजा होते हुए भी क्या मुर्दे पर से गहने उतारेंगे ?"

इसके पश्चात् पिता-पुत्र सीढ़ियों से उतरकर, चौकन्ने-से दीवार से सटे-सटे गलाल की ओर बढ़ने लगे।

गलाल को गोद में लेती हुई फूलां की दृष्टि सहसा इन दोनों पर जा पड़ती है··· गलाल को झिझोड़ते हुए वह कान में कहती है, "गलाल, दुश्मन आ गए !"

गलाल के मन-मस्तिष्क मे विस्मृति और स्मृति के मध्य, कडाणा की राजकुमारी और इस युवती के मध्य एक अनवरत द्वंद्व जारी था। तभी अचानक कानों पर प्रतिध्वनित 'दुश्मन' शब्द ने उसकी युयुत्सा-प्रियता को जगा दिया। उसने पलकें उठाईं जैसे एक सुषुप्त सिंह जाग रहा हो। पार्श्व की दीवार के सम्मुख उसने दो शत्रुओ को खड़े देखा।

फूला ने हौले से उसके हाथ में तलवार थमा दी और धीमे स्वर में कहा, "बस एक ही प्रहार के पात्र है !"

भीषण गर्जना करता हुआ, दहाड़ता हुआ गलाल इस तरह उठा जैसे जंगल में बास की गाठ फटती है ! भयाक्रात पिता-पुत्र एक-दूसरे की ओट में इस प्रकार छिपने की कोशिश करने लगे जैसे किसी मुर्दे को जीवित होते देख लिया हो। ठीक उसी पल हवा मे तलवार घुमाते हुए गलाल ने एक ही वार से पिता-पुत्र के चार टुकड़े कर दिए !

गलाल ने सिंहनाद किया, "है कोई और ?"

एक बार पुन: फूलां गलाल के इस अद्‌भुत अद्वितीय शौर्य को देखकर आतंकित-सी निर्वाक् हो रही।

गलाल के घाव में से बराबर रक्त बह रहा था। फूलां इस सतत रक्त-स्राव को देखकर क्षणभर पहले के आतंक को भूल गई। पुन: गलाल के पास जा खड़ी हुई। उसके हाथों में से तलवार लेने की कोशिश करती हुई कहने लगी, "गलाल ! अब कोई शत्रु नहीं बचा है। तलवार छोड़ दो !"

गलाल लड़खड़ाया। फूलां ने उसे थाम लिया।

भयवश इधर-उधर खिड़कियों मे से ताकने वाले दास-दासियों में से सर्वप्रथम सदा ने ही केवल वस्तुस्थिति को समझा। वह जल की झारी लिए फूलां के पास दौड़ी आई।

अब तो बस फूलां ही इस महल की, इस राज्य की स्वामिनी थी। कौन उसकी सहायता को नहीं दौड़ता ? सबके सब उसकी मदद करने को दौड़ पड़े। उन लोगों की चाल बता रही थी कि इस विजयी शत्रु का उन्हें तनिक भी भय नहीं है, बल्कि रक्त से लथपथ कालूसिंह का भय भी उनके मन से जैसे उड़ गया था।

दास-दासियां और महल के पहरेदार सबके सब जैसे फूलां की शरण में आ गए थे।

दूसरी तरफ इसके पूर्व कि रावलजी की सेना आकर म्यान में से अपनी तलवार निकालती, राजमहल पर सुलह और युद्धविराम की ध्वजा फहराने लगी थी।

फूलां ने गलाल को ऊपर ले जाकर अपनी ही शैया पर सुला दिया। राजवैद्य ने आकर गलाल की तुरंत जांच की। फूलां की मां ने

भी मूर्छित गलाल के मुख मे डालने के लिए प्रसाद-स्वरूप पानी भेजा।

दरअसल राजवैद्य को गलाल के बचने की विशेष आशा नही थी। स्वय फूला ने भी पति के बचने की आशा छोड़ दी थी। इस पल मे यदि कोई इच्छा थी तो सिर्फ एक···

गलाल और उसके बीच माही तट के प्रथम मिलन का तार अभी तक जैसा जुडना चाहिए वैसा जुड़ा हुआ नही प्रतीत होता था। और वह उस तार को जोडना चाहती थी! कडाणा की राजकुमारी की आत्मा के साथ गलाल की आत्मा को एकतार करना अभी शेष था। फूला दो आत्माओ का भव्य एवं पूर्ण मिलन-महोत्सव मनाना चाहती थी।

राजवैद्य ने गलाल को होश मे लाने के लिए कमर कस ली। उसने फूला को आश्वस्त भी किया, "ईश्वर-कृपा से मैं बापू को होश में ले आऊंगा···थोड़ी-बहुत बातचीत भी करा सकूगा···!"

एक तरफ महारावल ने ससैन्य नगर में प्रवेश किया तो दूसरी तरफ मूर्छित गलाल तनिक होश मे आया। गलाल की पलकों को खुलते-बंद होते देखकर राजवैद्य पलंग के पास से खिसक गया। कमरे में केवल दो ही प्राणी शेष रह गए—फूलां और सदा।

गलाल को पलकें झपकाते देखकर हर्ष से बौराई हुई फूलां ने स्वर में अत्यत मधुरता घोलकर प्रश्न किया, "तुम कहां हो गलाल? कुछ समझ में आ रहा है?···तुम कडाणा के महल मे हो···!"

गलाल की आंखें विस्फारित हो उठी, "कैद में हूं?" वह लीलागर के वध के बाद की घटनाओ के सिलसिले को याद करने की चेष्टा कर रहा था।

"कैद में तो हो, पर किसकी कैद में, कुछ याद है? याद करने की कोशिश करो न!···शक्ति-मंदिर···माही का किनारा···माही के किनारे पर घोडों का तूफान···याद है न?"

"हां-हां, तुम कौन हो?"

"वही हू। कडाणा की कुवरी···फूलां!"

"ओ···आलिगन!" गलाल ने ऐसी अनुराग-भरी आंखों से उसे देखा कि पगली फूलां यों धन्य-धन्य हो उठी जैसे अभिसारिका-सी वह

सुहागरात मनाने बैठी है !

गलाल कहता है, "पत्र लिखा था न ! वह पत्र कहां है, मेरी पगड़ी कहां है ?" वह उठना चाहता था पर फूलां ने उसे वर्जित किया। बदले में वह गलाल के हाथों से चिपकी रही, अपने वक्ष:स्थल पर रखकर जैसे उनका आलिंगन करती रही···।

सदा गलाल की पगड़ी में से पत्र ले आई।

हाथ मे पत्र लेते हुए गलाल ने पूछा, "यही है न ? और वह शक्ति-मंदिर में तलवार···" चेहरे पर दिव्य आह्लाद उभर आया, पर साथ ही दूसरी तरफ गलाल की शक्ति क्षीण से क्षीणतर होती जा रही थी। कहता है, "आलिंगन···लेने···आया···!"

और एकसाथ आनंद और दुख के प्रहार से जैसे फूलां टूट गई··· वह गलाल पर ढुलक गई ! गलाल के दोनो हाथ पकड़कर स्वयं के तन से लिपटाने लगी।

गलाल ने क्षीण स्वर में कहा, "अमरिया ?"

"अमरिया कवि ?" फूलां पूछने लगी।

गलाल ने सहज रूप से स्वीकृतिसूचक सिर हिलाया।

गलाल के बचे हुए सरदारों मे से धीरसिंह बाहर बैठा था। खबर मिलते ही अमरिया की तलाश मे दस-बीस आदमी···

परंतु अमरिया तो कभी से ड्योढी-द्वार पर बैठा-बैठा बाण-शैया पर लेटे हुए बापू के लिए अंतरतम से प्रार्थना कर रहा था। वह भीतर जाना चाहता था पर था तो आखिर याचक ही। उसे महल में कैसे प्रवेश मिल सकता था ? आसपास कोई पहचान वाला व्यक्ति भी नही था। और ऊपर से बापू का निमंत्रण मिलते ही पता नहीं झोला तो उसने कहां खो दिया, पर उसका रामैया अभी भी सुरक्षित था। उसका अंतर्मन भी जैसे यही कह रहा था—'बापू को अंतिम बार गीत सुना दे अमरिया !'

कमरे में प्रवेश करते ही अमरिया की आंखों से आंसुओं की निर्झरिणी प्रवाहित हो उठी। फूलां ने उसका अपने आत्मीय-स्वजन की तरह स्वागत किया। अमरिया की अश्रुधारा ने फूलां के रुद्ध रुदन को

मुक्त कर दिया···उसकी नयन-झील से आंसू का झरना फूट पडा···।

अमरिया का कुरता खीचकर, उसे गलाल के सम्मुख खडा करते हुए फूला ने कहा, "बापू तुम्हे···" और बापू के समक्ष करबद्ध खड़े अमरिया ने गला साफ करते हुए किंचित् ऊचे स्वर में कहा, "बापू !··· मैं अमरिया हू···"

गलाल की पलकें उठी···टूटी हुई आवाज में प्रयत्नपूर्वक कहा, "वह स्वप्न···माही किनारे का स्वप्न-गीत···आज फिर से गा···!"

"गाता हूं, बापू !"

फूलां ने अमरिया को इस प्रकार बिठा दिया कि गलाल की दृष्टि उस पर पड सके।

अमरिया ने रामैये पर गज को रमता छोड़ दिया···

पलंग पर बैठी हुई फूलां कभी गोद में रखे हुए गलाल के हाथ को दुलारती थी तो कभी उसके केश सवारती थी।

गलाल स्वयं भी कभी तो फूलां की ओर टकटकी लगाकर निहारता रहता था और कभी पलके बद कर लेता था।

एक ओर अमरिया का गीत आरंभ हुआ और दूसरी तरफ रावलजी ने कमरे में प्रवेश किया। उनका विचार गलाल की कुशल-क्षेम का समाचार पूछने का था। पर कमरे में निर्वेद शाति और एकाग्रता का सन्नाटा छाया हुआ था। इसके अतिरिक्त गलाल के सिरहाने पर बैठी हुई फूलां भी इतनी बेखबर और खोई हुई थी कि महारावल पलभर के लिए अचकचा गए·· अपनी उपस्थिति द्वारा उस निस्तब्धता को भंग करने का साहस नहीं हुआ···चौखट से ही वापस मुड़ गए।

और कमरे के बाहर धीरसिह द्वारा रखे गए आसन पर बैठकर वह भी उस स्तब्ध प्रशांत वातावरण मे अमरिया का दर्दभरा गीत एकाग्र होकर सुनते रहे।

महाप्रयाण

एक तरफ अमरिया की आंखों से टपटप आंसू बह रहे थे और

दूसरी तरफ वह गा रहा था···

विनवु   माता   सरसती
मने खोबले धोबले वाणा दे
वातड माडु समणां नी
समझी ने झाझु शु कहीए ?

(मां सरस्वती से प्रार्थना करता हू कि वह मुझे अंजली भर-भरकर वाणी दे ! सपने की लघुवार्ता आरभ कर रहा हूं । समझदार को यू भी ज्यादा क्या करना पड़ता है !)

अमरिया भले ही कडाणा के राजप्रसाद मे बैठा था, पर उसकी आत्मा तो इस समय भी माही के कगारो में भटक रही थी । वह बापू को अपलक देखते हुए रोते-रोते गा रहा था—

खळभळ खळभळ मही नो कांठो
कांठे फडुके मांनी धजाओ,
आवन जावन मनखा मेलो
ऊंट घोडा कोई पालखी वालो,

(माही का किनारा कलकल ध्वनि कर रहा है, गूज रहा है । किनारे पर मां की ध्वजा लहरा रही है । आने-जाने वाले मनुष्यो का मेला लगा हुआ है । कोई ऊंट पर आया है तो कोई घोड़े पर सवार होकर आया है; तो कोई कोई पालकी वाला भी है···)

गलाल को टुकुर-टुकुर ताकती हुई फूला, उसकी आंखों की भाषा पढ़ने की कोशिश कर रही थी···पर गलाल तो जैसे महासमाधि में लीन होता जा रहा था···

हणा हण घोडां !
एके लीधी वनराई माथे
ने पडघो उठ्यो मही नां कांठे

(घोड़ा हिनहिना रहा है ! उसने संपूर्ण जगल को सिर पर उठा लिया है और माही का किनारा उस हिनहिनाहट से प्रतिध्वनित हो उठा है ।)

जैसे स्वप्न मे से जगा हो यो गलाल बोल उठा, "हा अमरिया !"

अमरिया अपनी ही धुन मे लीन था। पंक्ति समाप्त करके जैसे शब्दहीन विलाप कर रहा हो यू रामैये पर धुन बजा रहा था। दर्द के कारण अथवा जो भी कारण रहा हो, एकाएक गलाल का स्वप्न भंग हुआ। फूला को निर्निमेष देखता हुआ बोला, "मैने तुझमे झाली भाभी के दर्शन किए···हा···मेरे पास एक कटार है···उसे झाली भाभी को सिपुर्द करना···"

"मैं तो आपके साथ ही हू।" फूलां के कपोलों पर दिव्य तेज की किरणें फूट रही थी, पर उसकी आवाज निष्कंप और स्पष्ट थी।

कौन जाने दर्द के कारण या अस्वीकृति के रूप में गलाल ने अपना सिर हिलाया और पुनः अपनी आत्मा को अमरिया के गीत मे विसर्जित कर दिया···। उसने उसके हाथों को दुलारती हुई फूलां का हाथ कसकर पकड़ लिया, फूलां ने भी।

केम जण्युं के
आमने-सामने
सवार ना छूपा उर ना पडधा
घोडला वाटे ऊठता नो ता ?

(तुम्हें क्या पता कि आमने-सामने खड़े घुड़सवारों के अंततंम की भावनाएं घोड़ों की राह पर प्रतिध्वनित नही हो रही थी?)

अमरिया का गीत जैसे गलाल की निर्वाणोन्मुख आत्मा को रोक रहा था! गीत की कड़ी पूरी होते ही गलाल पुनः हिला···फूला को एकटक देखता रहा···देखता रहा···। उसकी आखें सजल होती प्रतीत हुईं। बोला, "पियोली मां को प्रणाम कहना!"

"कहला दूंगी।"

रोझा रंगी घोडले बेठो
सवार छबीलो कायणगारो

(नीलगाय के वर्ण के घोड़े पर मनमोहक छबील युवक बैठा हुआ था···।)

फूला को उस समय के अलबेले मनमोहक गलाल का स्मृति-बिब असह्य हो उठा। वह सिसकने लगी···गलाल के हाथ को बार-बार

अपने चेहरे और आंखों पर फेरने लगी···

अमरिया के गीत की अन्य पंक्तिया जैसे हवा में ही कही विलीन हो गई :

पारेवडा शी घोडीए दूजो
नमणो चेहरो फूल सरीखो

(और कबूतर के रंग की दूसरी घोडी पर एक फूल सा सलोना चेहरा बैठा हुआ था···)

और इसके साथ ही अमरिया ने, जैसे उतावली में हो यो बाद की कड़ी तेजी से जोड़ दी :

धिगामस्ती घोडेलो झूज्यां
पांपण ने पलकारे झूल्यां
भान झूल्यां ए घोडलां वच्चे
सान भूल्यां
तलवार भूली ग्यां !

(घोड़े धीगाधीगी में जूझ रहे थे। वह परिदृश्य उठती-गिरती पलकों ने स्वयं मे समेट लिया। उन घोड़ो की टक्कर केबीच वह अपना होश खो बैठी···समझ भी खो बैठी···और तो और, तलवार भी भूल गई···)

पांचेक क्षण तक सांस लेकर वह आगे बढा :

ने तलवार पाछी लेतां देतां
दिल डूब्या ते···

(और बाद में तलवार का आदान-प्रदान करते समय जो हृदय डूब गया था···)

सहसा माही-तट और उस समय का परिदृश्य, स्मृति-बिंब, अमरिया के हृदय-पटल से लोप हो गया। उसके स्थान पर वह रूप और सौंदर्य की साक्षात् प्रतिमा-सी किसी देवकन्या का उस पलंग पर दर्शन कर रहा था। दूसरी तरफ उस देवी के पार्श्व में लेटा हुआ गलाल भी उसे ऐसा लग रहा था जैसे मानव-अवतार धारण कर धरती पर जीवन का खेल खेलने के लिए आया हुआ स्वर्ग का कोई देवता, रूप और शौर्य की फाग खेलकर इस धरती से अतिम बिदाई ले रहा है, उसका अंतिम अभिवादन

कर रहा है···

अबोध व्यक्ति की तरह जैसे किसी अदृष्ट प्रेरणा से गीत गा रहा हो यों अमरिया ने यहां पूर्व-पंक्तियो को दोहराया :

ने तलवार पाछी लेता देतां
दिल डूब्यां ते
आज लगी कळ वळती नथी !

(और तलवार लेते-देते समय जो हृदय डूब गया था वह आज तक अशांत है । उसे आज तक चैन नही पड़ी है···)

सांस खीचकर पुन: तेजी से गाने लगा :

डूब्यां दिल ने मंदिर मूकी
उपडी ग्यो ए सवार छबीलो
आज नो दन ने काल घडी !

(और डूबे हुए हृदय को मदिर में छोड़कर वह छबीला सवार प्रस्थान कर गया···वह लौटकर आज दिन तक नही आया···नहीं आया···वह तो जैसे चिरकाल के लिए महाप्रयाण कर गया···!)

तभी फूलां के हाथ से खेलता हुआ गलाल का हाथ शिथिल होने लगा, उसकी पकड़ शनै-शनै: ढीली होती गई ।

फूलां, महाप्रयाण-पथ पर आरूढ गलाल को इस प्रकार से निर्निमेष निहार रही थी जैसे उसने हाथ से सरकती हुई आत्मा को अनुभव कर लिया है और उसे पगडंडी पर से आगे बढ़कर जैसे अपनी पलकों में बाध रखना चाहती है···कि उसे महाप्रस्थान-पथ पर आगे बढ़ने से रोकना चाहती है ।

चार नयन क्षणार्द्ध के लिए मिले न मिले कि उनके बीच अनंत महाशून्य की दूरिया फैल गईं···

फूलां बस चीखने ही जा रही थी कि एकाएक जैसे उस मूक चीख में से एक दिव्य चेतना प्रकट हुई हो यों वह धीर-गंभीर होकर बैठ गई। पलंग पर से उठते-उठते बोलने वाली फूलां भी जैसे आज कोई दूसरी ही फूलां थी, “चिता की तैयारी करो; गलाल से मेरी दूरी बढ़ती जा रही है ।”